माणिकचन्द्र-जैन-ग्रन्थमालायाः चतुर्विंशो ग्रन्थः

अञ्जनापवनंजयं नाटकं
सुभद्रा नाटिका च

संशोधक—

वासुदेव पटवर्धन एम्० ए०

Mānikachandra Digambara Jaina Granthamālā No. 43

THE AÑJANĀPAVANAṂJAYA

AND

SUBHADRĀNĀṬIKĀ

OF

HASTIMALLA

Edited for the First Time with Variant Readings
and an Exhaustive Introduction dealing
with Hastimalla's Life and Writings

BY

Prof. M. V. PATWARDHAN, M. A.
D. E. Society, Poona

PUBLISHED BY

The Secretary, Māṇikachandra D. Jaina Granthamālā
Hirabag, Bombay 4

1950

Price Rupees Three

Table of Contents

माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थमाला, पुष्प ४३

उभयभाषाकविचक्रवर्तिश्रीहस्तिमल्लविरचिते

अञ्जनापवनंजयनाटकं
सुभद्रानाटिका च

पुण्यपत्तननिवासिना पटवर्धनकुलोत्पन्नेन वासुदेवतनुजनुषा
माधवेन संशोधिते

पाठान्तरदर्शकटिप्पणीभिरांग्लभाषानिबद्धेनोपोद्घातेन चोपेते ।

प्रकाशिका
माणिकचन्द्रदिगंबरजैनग्रन्थमालासमितिः
हीराबाग, मुम्बापुरी, ४

वीरनिर्वाणसंवत् २४७६

विक्रमाब्द २००६

मूल्यं रूप्यकत्रयम्

प्रकाशक

पं. नाथूराम प्रेमी

मंत्री, माणिकचन्द्र दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला,

हीराबाग, बंबई ४

पहली आवृत्ति. वि. सं. २००६

मुद्रक

रामचंद्र येसू शेडगे, निर्णय-सागर प्रेस,

२६–२८, कोलभाट स्ट्रीट, बंबई २

PREFACE

The present edition of two (viz. Añjanāpavanaṃjaya and Subhadrā) of the four available dramas of Hasitmalla, is being published as No. 43 of the Māṇikachandra Digambara Jaina Granthamālā of Bombay. The edition gives for the first time, the text of the two dramas, viz. Añjanāpavanaṃjaya and Subhadrā, in a printed form. The text is accompanied by foot-notes containing important variant readings from four MSS. in the case of Añjanāpavanaṃjaya and two MSS. in the case of Subhadrā (see Introduction pp. 1-5). In the Introduction an attempt has been made to put together all the available information regarding the author Hastimalla. A synopsis of the plots of the four dramas has been given, the sources have been indicated, and certain peculiarities of Hastimalla, as evidenced by the four dramas, have been noticed. In writing the Introduction I have made use of Dr. A. N. Upadhye's paper on Hastimalla published in 'A Volume of studies in Indology' presented to Prof. P. V. Kane in 1941 (Poona), as also of the material presented by Pandit Manoharlal Shastri in the Introductions to the Maithilīkalyāṇa and Vikrāntakaurava (Nos. 2 and 3 of the Māṇikachandra Digambara Jaina Grantha Mālā). I have also utilised the

information regarding Hastimalla appearing in M. Krishnamachariar's Classical Sanskrit Literature (Madras, 1937). I wish to record my indebtedness to all these scholars. I must also thank Pandit Nathuram Premi for including the present edition of Añjanāpavanaṃjaya and Subhadrā in the Mānikachandra Digambara Jaina Grantha Mālā. My obligations to my friend Dr. A. N. Upadhye of Kolhapur are more than I can express. Had it not been for the kind interest that he took from the very beginning, by supplying to me the Ms. material, by making valuable suggestions from time to time and by correcting the proofs, it would have been impossibls for me to bring out the present edition. Lastly, I must express my thanks to the Nirnaya Sagar Press, Bombay, for their courtesy and cooperation throughout.

345, Shaniwar
Poona 2
February 1950

M. V. Patwardhan

प्रकाशकका निवेदन

माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालाका यह ४३ वाँ ग्रन्थ कोई नौ सालके बाद प्रकाशित हो रहा है। महापुराणका तृतीय खंड सन् १९४२ के प्रारंभमें प्रकाशित हुआ था, तबसे अब तक प्रकाशनकार्य स्थगित ही रहा। एक तो न्यायकुमुदचन्द्र और महापुराणमें इतना अधिक धन खर्च हो गया था कि कोशमें कुछ बचा नहीं था, बल्कि ऊपरसे कुछ कर्ज भी हो गया था, दूसरे महायुद्धके कारण कागज उपलब्ध न हो सका। ग्रन्थमालाको कागजका 'कोटा'ही नहीं मिला। इसके सिवाय सन् ४२ में अचानक मेरे इकलौते पुत्रका देहान्त हो गया, जिससे मेरी कमर ही टूट गई, और मुझमें इस दिशामें प्रयत्न करनेका कोई उत्साह ही नहीं रहा।

गतवर्ष सुहृद्वर डॉ० आदिनाथ उपाध्यायने मुझे सूचना दी कि हस्तिमल्लके नाटकोंका सम्पादन-कार्य प्रो० माधव वासुदेव पटवर्धन को सौंप दीजिए, वे इस कार्यको बहुत उत्तमतासे कर देंगे। मैंने इसे तत्काल स्वीकार कर लिया और आज उन्हींके द्वारा यह नाटकद्वय सम्पादित होकर प्रकाशित हो रहा है। प्रो० पटवर्धनका संस्कृत और प्राकृत भाषाओंपर असाधारण अधिकार है। विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंमें वे हमेशा प्रथम श्रेणीके विद्यार्थी रहे हैं, और उक्त भाषाओंमें कई पारितोषिक भी उन्होंने प्राप्त किये हैं। पूनाकी डेक्कन एज्युकेशन सोसायटीके वे आजीवन सदस्य हैं, और लगभग अठारह साल तक सांगलीके विलिंग्डन कॉलेजमें संस्कृत और प्राकृतके प्राध्यापक रहे हैं। उनके जैसी तीक्ष्ण बुद्धि, विशाल अध्ययन, दीर्घोद्योग और साम्यभाव क्वचित् ही एकत्र मिल सकते हैं। ग्रन्थमालाका सौभाग्य है कि वह ऐसे विद्वान् द्वारा सम्पादित कृति प्रकाशित कर रही है।

उनकी अंग्रेजी प्रस्तावना विशेष अध्ययनकी चीज है और विद्यार्थियोंके लिए एक आदर्श निबन्ध है। हमें आशा है कि इस प्रस्तावनासे हस्तिमल्लके नाटकोंके अध्ययनमें विशेष सहायता मिलेगी।

इस ग्रन्थमालामें हस्तिमल्लके दो नाटक विक्रान्तकौरव और मैथिली-कल्याण पहले प्रकाशित हो चुके हैं, अञ्जना-पवनंजय और सुभद्रा ये प्रकाशित हो रहे हैं।

हस्तिमल्लके सम्बन्धमें लगभग नौ बरसके पहले मैंने जो लेख लिखा था, अंग्रेजी नहीं जाननेवाले पाठकोंके लिए वह ज्योंका त्यों उद्धृत कर दिया जाता है। उक्त लेखकी प्रायः सभी बातें अंग्रेजी प्रस्तावनामें आ गई है।

ग्रन्थमालाके दो और ग्रन्थ प्रेसमें हैं जो यथासंभव शीघ्र ही प्रकाशित होंगे। एक तो है, वादिराजसूरिका '**स्याद्वादसिद्धि**' नामका अपूर्ण ग्रन्थ जिसका सम्पादन पं० दरबारीलालजी न्यायाचार्यने किया है और दूसरा **जैनशिलालेखसंग्रह** (द्वितीय भाग) जिसे पं० विजयमूर्तिजी एम० ए० शास्त्राचार्यने तैयार किया है।

हीराबाग, बम्बई.
५-४-५०

विनीत
नाथूराम प्रेमी
मंत्री

CORRECTIONS.

		Incorrect	Correct
Introd.	p. 7, line 10	achivement	achievement
,,	p. 11, line 14	is hero	is the hero
,,	p. 11, line 31	subjetct matter	subject-matter
,,	p. 14, line 20	Vidyādhara	the Vidyādhara
,,	p. 22, line 30	Vidyāharas	Vidyādharas
,,	p. 23, line 2	the marriage	marriage
,,	p. 24, line 23	Vinītā,	Vinītā
,,	p. 33, line 26	तद्रूपाकृत°	तदुपाकृत°
,,	p. 35, line 1	IV	IV)
,,	p. 39, line 17	heāds	heads
,,	p. 39, line 24	(a)	a)
,,	p. 40, line 10		drop II)
,,	p. 40, line 32	गछाव:	गच्छाव:
,,	p. 45, line 14	Muni-suvrata	Munisuvrata
,,	p. 45, line 26	जैन शासन	जिनशासन
,,	p. 48, line 16	Svayambhu	Svayambhū
AP.	p. 5, line 11	°पालिका	°पालीका
,,	p. 6, line 1	मंतियदि	मंतीयदि
,,	p. 7, line 19	गम्मिअदि	गम्मीअदि
,,	p. 13, line 1	सकलराजकुमारा:	सकला राजकुमारा:
,,	p. 15, line 7	विलंबिअदि	विलंबीअदि
,,	p. 18, line 1	ट्ठियदि	ट्ठीयदि
,,	p. 19, line 10	गण्हिस्सिसि	गण्हिस्ससि
,,	p. 19, line 23	वअंपि	वअं पि
,,	p. 28, line 15	गडूणषासव	गण्डूषासव
,,	p. 30, line 7	अदिक्खिवदि	अहिक्खिवदि
,,	p. 35, line 13	आपातालतलात्	आ पातालतलात्
,,	p. 42, line 2	याति	वाति
,,	p. 42, line 13	बलव्रदु°	बलवदु°
,,	p. 43, line 7	करिअदु	करीअदु
,,	p. 47, line 21	करिअदु	करीअदु
,,	p. 48, line 15	दक्खिस्सिसि	दक्खिस्ससि
,,	p. 50, line 10	रक्षाम:	रक्षिष्याम:
,,	p. 53, line 7	प्रत्याकुलम्	पर्याकुलम्
,,	p. 53, line 15	संतप्पिअदि	संतप्पीअदि
,,	p. 54, line 5	पहिअदि	पहीअदि

*

,,	p.	59, line 12	शु	शुद्ध
,,	p.	61, line 10	ये	ए
,,	p.	65, line 9	दक्खिअदि	दक्खीअदि
,,	p.	66, foot note 1	विहन्चित°	विरन्चित°
,,	p.	72, line 1	पणमिअदि	पणमीअदि
,,	p.	72, line 16	विश्रान्तम्[6]	विश्रान्तम्[6]
,,	p.	77, line 20	कुत	कुतः
,,	p.	79, line 1	तालः	तालान्
,,	p.	81, foot note 4	Add. the word "obscure"	
,,	p.	83, line 15	२३	२३a
,,	p.	84, line 10	अज्झवसासि	अज्झवस्ससि
,,	p.	84, line 14	मार्गितुं	मृगयितुं
,,	p.	85, line 16	चिरायति	चिरयति
,,	p.	91, line 1	तदिता	तदितो
,,	p.	92, line 1	महीरुह महत्तर	महीरुहमहत्तर
,,	p.	102, line 16	जानन्त्या	जानत्या
,,	p.	105, line 16	अअं	अहं
,,	p.	105, line 18	अयं	अह
,,	p.	106, line 2 and 7	मिस्सकेसि°	मिस्सकेसी°
,,	p.	112, line 16	दक्खिअदि	दक्खीअदि
S	p.	4, line 18	°नामिगन्धि वेलावनं	°नाभिगन्धिवेलावनं
,,	p.	14, line 6	°मणुस°	°मणुस्स°
,,	p.	17, line 14	दक्खिस्सिसि	दक्खिस्ससि
,,	p.	20, line 1	पअपती	पअपंती
,,	p.	20, line 2	मुणंता	मुणंता
,,	p.	29, line 6	°णिवडिअ°	°णिव्वडिअ°
,,	p.	29, line 7	°निपतित°	°निष्पतित°
,,	p.	30, line 18	मार्गितः	मृगितः
,,	p.	32, line 2	पडिआसि	पडिआ सि
,,	p.	38, line 18	गच्छति	गच्छन्ती
,,	p.	38, line 21	उड्डिअदि	उड्डीअदि
,,	p.	40, line 19	दक्खिअदि	दक्खीअदि
,,	p.	42, line 7	अजाकृपाणीय	अजाकृपाणीयं
,,	p.	48, line 9	पिअसंहीए	पिअसहीए
,,	p.	79, line 3	देय°	देव°
,,	p.	79, line 6	व्याहृत्य	व्याहृत्य

INTRODUCTION

HASTIMALLA AND HIS PLAYS

PRELIMINARY REMARKS

Out of the five dramas supposed to have been composed by Hastimalla, only four have been recovered so far: viz. 1) Maithilīkalyāṇa (MK), 2) Vikrāntakaurava (VK), 3) Añjanāpavanaṃjaya (AP) and 4) Subhadrā (S), nothing being known so far about the remaining one viz. Arjunarājanāṭaka. Of the four available plays of Hastimalla, two viz. MK and VK were published in the Māṇikacandra Digambara Jaina Grantha Mālā as Nos. 3 and 5 in 1915 and 1916 A. D. respectively, both edited by Pandit Manoharlal Shastri. Both are accompanied by brief introductions in Sanskrit, giving details about the author Hastimalla and his works The text is accompanied by Sanskrit rendering of Prākrit passages in the footnotes, as also, very rarely, by explanations of difficult words. A number of misprints have crept into these printed editions of the two plays rendering the understanding of the text at times very difficult. The remaining two plays viz. AP and S are being now edited in the same series.

CRITICAL APPARATUS

The following MS. material has been used for the present Edition of Añjanāpavanaṃjaya.

A: Devanāgarī Transcript of Palm-leaf MS. in Kannaḍa Script (No. B 250, Oriental Library, Mysore). Transcript prepared by H. P. Venkata Rao, Copyist, Government Oriental Library, Mysore 16-12-1937. 133 foolscap folios, thick, glazed, ruled, mill-made paper,

written on one side only, lines being breadthwise to the pages. Sanskrit chāyā in the case of Prākrit passages is given first in the body of the text, followed by the Prākrit original, written in red ink in rectangular brackets.

This MS. shows certain orthographical and other peculiarities: 1) Short and long vowels especially in Prākrit passages are not often disinguished. 2) *t* and *ḍ*, *d* and *dh*, and *l* and *ḷ* are not often distinguished. 3) Visarga followed by *s* is uniformly written as s. 4) Conjunct consonants in Prākrit passages involving duplication of a surd or sonant aspirate are often written with these consonants doubled and joined together. 5) Sandhi rules are not strictly and uniformly observed in the Sanskrit passages and in chāyā. 6) There is no numbering for the stanzas. 7) Every stanza is preceded by the letter *s'lo.* (=*s'loka*) or *vṛ.* (=*vṛtta*) or by these complete words. 8) Daṇḍas are irregularly used, particularly in the Prākrit portions. 9) Scribal errors are quite common.

B. Devanāgarī Manuscript. Size 9″ × 5″. Thick, glazed, hand-made paper. 77 folios, written on both sides, with 8 lines on every page, written legthwise to the page. This also appears to be a transcript of some Kannaḍa MS.

It has its orthographical and other peculiarities: 1) There is no Sanskrit chāyā for Prākrit passages. 2) The prose passages and stanzas are written in continuous lines without being distinguished from one another. 3) Stage-directions are written without being enclosed in brackets, and as forming part of the Text itself, with a *daṇḍa* after every stage-direction. 4) Names of characters are written in abbreviated form, e. g. Sūtra. (=Sūtradhāra), Pava. (=Pavanaṃjaya), Vidū. (=Vidūṣaka) etc. 5) Short and long vowels are not often distinguished. 6) Long vowels

are sometimes written as short vowels with a curling hook on top[1]. 7) Conjuncts in Prākrit involving duplication of a consonant are written with the latter member alone of the conjunct consonant preceded by an anusvāra on the previous syllable, e. g.

दंख = दक्ख, एंथ = एत्थ; मेंतिए = मेत्तिए; वणुंदेसा = वणुद्देसा.

Sometimes a letter with an anusvāra on it is represented with the consonant in that letter or the vowel itself duplicated, e. g.

कह्हिं = कहिं; मह्हिद = महिंद; अम्ह्हाण्ण = अम्हाणं; पउअ = पअं; ब्बिदु = बिंदु; अविल्लबिअ = अविलंबिअं.

Sometimes the consonant in the following syllable is duplicated e. g. झक्कार = झंकार. The MS. ends thus:

शके १८३८ अनलनामसंवत्सरे मार्गशीर्षशुक्लपक्षे ६ यां गुरुवासरे लिखितम्.

This would mean that the MS. was copied in 1906 A. D.

C: Devanāgarī MS. extending only upto the end of Act III. 33 folios, foolscap, thin, unruled, mill-made paper, written on one side only, lines being written breadthwise to the pages. This too appears to be a transcript of some Kannaḍa MS. The prose passages and stanzas are properly distinguished and stage directions enclosed in round brackets. Names of characters are written in full. There is no chāyā for Prākrit passages. Orthographical representation of conjuncts in Prākrit is the same as described under MS. B above.

D: This is a palm-leaf MS. (No. 205 from the Maṭha of Śrī Lakṣmīsena Bhaṭṭāraka, Kolhapur). It contains three plays of Hastimalla. Some of the folios are of a size different from that of others. Folios 1–52 Sītānāṭaka (=Maithilīkalyāṇaṃ); then folios 1–30 Subhadrānāṭikā

---

1 e. g. असदियम् = असदीयम्; प्रतोलि = प्रतोली etc.; a hook resembling ç is written on दि and लि.

and further folios 1–78 Añjanāpavanaṃjayam. Though the paper label includes the title Sulocanā, its leaves are not there in the bundle. The folios of AP measure roughly 14 inches by slightly less than two inches. The portion of the MS. containing Sītā. is separate and the handwriting also is different. Confining ourselves only to AP, the script is old Kannaḍa. The names of the characters are written in their shortened forms: Vidū., Prati. etc. The *daṇḍas* are irregularly put, more so in the Prākrit portion. Single and double *avagrahas* are sometimes used The Sanskrit chāyā presents few variant readings. Of course Sandhis are not regularly and uniformly observed in the chāyā. Generally *ḷ* is written for *l* in the Prākrit portion; *d* and *dh* are not often distinguished. Consonants conjoined with *r* as the first member of a conjunct group (in chāyā) are written double. The Prākrit conjuncts are indicated with a fat zero before the consonants to be doubled. At times the short and long vowels are not distinguished. The Sanskrit chāyā is written on the lower, left-hand and right-hand margins, and at times near the string-holes. The number of scribal slips is pretty large. But they are less frequent in the Sanskrit chāyā.

The following MS. material has been used for the present Ed. of Subhadrānāṭikā:

A: Devanāgarī transcript of Palm-leaf MS. in Kannaḍa script (No. ? Oriental Library, Mysore). Transcript prepared by H. P. Venkata Rao, Copyist, Governmant Oriental Library, Mysore, 1–3–1939. 105 foolscap folios. Thin, glazed, mill-made, ruled paper, written on one side only; lines beadthwise to the pages. In the case of Prākrit passages, the original Prākrit is given first, followed by the Sanskrit chāyā, in round

brackets. Orthographical representation of Prākrit Conjuncts is generally speaking the same as noted under MS. B of AP above. Scribal errors are quite numerous.

B. Devanāgarī Manuscript, belonging to Śrī Jaina Siddhānta Bhavana, Arrah. 38 folios. Size 13″ × 7″. Thick, glazed, hand-made paper, written on both sides, 14–15 lines per page, written lengthwise to the page. Sanskrit chāyā is given at the bottom of each page.

HASTIMALLA : THE AUTHOR

The dramatist Hastimalla, whose four plays (viz. Añjanāpavanaṃjaya, Subhadrā, Maithilīkalyāna and Vikrāntakaurava) form the subject of the present essay, was the son of Govinda, who is mentioned in the prologues of all the four dramas and in the colophons of the various Acts of the same, with the honorific prefix Bhaṭṭāra or Bhaṭṭāraka or suffix Bhaṭṭa or Svāmin, indicative of his great learning, which is also borne out by the complimentary reference in the prelude to the MK.[1] From the Praśasti stanzas appearing at the end of the VK(pp. 163-164) under the caption 'Granthakārasya Praśastiḥ,' we learn that this Govinda was a non-Jain in the beginning and that he became a convert to Jainism as a result of his hearing the Devāgamanasutra (=Devāgamastotra) of Samantabhadra.[2] It is said that this Govinda belonged to the Vatsagotra.[3] According to the Praśasti stanzas mentioned above, he belonged to the succession of pupils of the

1 निखिलशास्त्रतीर्थावगाहपवित्रीकृतधिषणस्य, मध्यमलोकधिषणस्य, निःशेषनिपीतधर्मामृतरसायनस्य, सरस्वतीविस्मयनीयोपायनस्य (?) भट्टारगोविन्दस्वामिन'... । p. 2.

2 गोविन्दभट्ट इत्यासीद्विद्वान् मिथ्यात्ववर्जितः । देवागमनसूत्रस्य श्रुत्वा सद्दर्शनान्वितः ॥ अनेकान्तमतं तत्त्वं बहु मेने विदां वरः ॥ Stanzas 10, 11.

3 वि. कौ. L. 40: श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्टप्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात् । गोपभट्ट = गोविन्दभट्ट.

great monk Guṇabhadra (author of Uttarapurāṇa), who glorified the 63 Śalākāpuruṣas of Jain mythology, and who was himself a beloved pupil of the great monk Jinasena, author of Ādipurāṇa. Jinasena's spiritual teacher was Vīrasena, well-versed in the scriptures and a great logician. Vīrasena himself belonged to the spiritual lineage of the two great worthies Śivakoṭi and Śivāyana, who were pupils of the great Samantabhadra, author of the commentary called Gandhahastin on the Tattvārthādhigama-sūtra and of Devāgama (Sūtra or Stotra). Thus we see that the spiritual ancestry of Hastimalla goes back to Samantabhadra, Hastimalla's father being a remote disciple of Samantabhadra.

Hastimalla was one of the six sons of Govindabhaṭṭa, being the fifth in order among them. The Praśasti at the end of the VK (st. 12) says that all of them were residents of South India (*dākṣiṇātyāḥ*) and that all of them were poets and scholars.[1] Their names are mentioned as follows: Śrī Kumārakavi, Satyavākya, Devaravallabha, Udayabhūṣaṇa, Hastimalla and Vardhamāna. The preludes to AP and MK and the colophons at the end of all the four dramas, also give the same information about Hastimalla and his brothers. It is said that all of them owed their greatness to the favour of Svarṇayakṣī.[2] We do not know anything so far about the writings of the brothers of Hastimalla, except that Satyavākya (according to the prelude to MK p. 2) was the author of Śrīmatīkalyāṇa and other works.[3]

1 कवीश्वरा: (st. 13). The prologue to MK speaks of them as सुभाषितरत्नभूषण.

2 वि. कौ. प्रशस्ति, stanza 12.

3 श्रीमतीकल्याणप्रभृतीना कृतीनां कर्त्रा सत्यवाक्येन. Here a stanza composed by Satyavākya is cited wherein he pays a glowing tribute to Hastimalla's poetic ability.

Regarding the name Hastimalla, we are told that our author got it as the result of a very successful encounter with a mad elephant let loose on him by the Pāṇḍya king at Saraṇyāpura. It seems that Hastimalla subdued the infuriate elephant by his spiritual power. Stanza 40 of the first Act of VK, which seems to be out of place there and hence looks rather suspicious, says that our author was honoured and glorified in the royal assembly by the Pāṇḍya king, with a hundred stanzas in recognition of his great achivement in the encounter with the elephant.[1] One of the stanzas occurring at the end of the Arrah MS. of S mentions this great exploit of Hastimalla and states how he obtained his name on account of the subjugation of the mad elephant let loose upon him at Saraṇyāpura in order to test his *samyaktva*[2] (firmness of faith in Jainism). Thus 'Hastimalla' appears to be a nickname of our author.[3] We do not know what his real name was prior to his encounter with the elephant. This inicident is also mentioned by Ayyapārya, in his Jinendrakalyāṇacampū.[4] Here we are told how in Saraṇyāpura the Pāṇḍya king had set a mad elephant upon Hastimalla in order to test his *samyaktva* and that as the elephant assailed him he

1 हस्तियुद्धात् । नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहीश्वरेण श्लोकैः शतैः सदसि सत्कृतवान् बभूव ।

2 सम्यक्त्वस्य परीक्षार्थं मुक्तं मत्तमतंगजम् । यः सरण्यापुरे जित्वा हस्तिमल्लेति कीर्तितः ॥

3 The word Hastimalla occurs in AP III. 3. Perhaps the author is referring to his own name and has used the word there intentionally.

4 M. Krishnamachariar, Classical Sanskrit Literature p. 641; Dr. Upadhye, Kane Commemoration Volume, p. 528; see also Premi: Jaina Sāhitya aura Itihāsa pp. 260–271

tamed and subdued it by means of a stanza.[1] Not only that, but he also tamed a certain scoundrel (*s'ailūṣa*) who was posing as a Jain monk (Jinamudrādhārin) and hence got the appellation Madebhamalla or Hastimalla. In the Pratiṣṭhātilaka of Nemicandra (or Brahmasūri? Dr. Upadhye, l. c., p. 527) we are told that Hastimalla was a lion in the matter of crushing the elephants in the form of opponents.[2] This raises the suspicion that perhaps Hastimalla got his queer name, not as the result of taming a mad elephant, but as a consequence of vanquishing eminent disputants in public debates.

Brahmasūri (or Nemicandra?), the author of Pratiṣṭhātilaka, who belonged to the family of Hastimalla, tells us that Hastimalla had a son by name Pārśva Paṇḍita,[3] Manoharlal Shastri[4] says that according to Rājāvalīkathā, Hastimalla had several sons of whom Pārśva Paṇḍita was the eldest and that he had a disciple called Lokapālārya. For some reason Pārśva Paṇḍita migrated to the town of Chatratrayapurī[5] in the Hoysala Territory and lived there with his relatives. He had three sons Candrapa, Candranatha and Vaijayya. Candranātha and his family stayed at Hemācala, while his other brothers migrated else-

1 सम्यक्त्वं सुपरीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे चास्मिन् पाण्ड्यमहीश्वरेण कपटाद्धन्तुं स्वमभ्यागते । शैलूषं जिनमुद्रधारिणमपास्यासौ मदध्वंसिना श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः ॥ Stanza quoted by Manoharlal Shastri in the Introductions to जै. क. and वि. कौ., p. 3.

2 परवादिहस्तिनां सिंहो हस्तिमल्लस्तदुद्भवः । गृहाश्रमी बभूवार्हच्छासनादिप्रभावकः ॥ Quoted by Manoharlal Shastri, Indro. p. 4.

3 Dr. Upadhye, l. c. p. 527.

4 Introduction p. 2.

5 Pt. K. Bhujabali identifies this with Dvārasamudra or present Haḷebiḍ, once the capital of Hoysaḷas.

where. **Brahmasūri** was the grandson of **Candrapa**[1], who himself was the grandson of Hastimalla.

Hastimalla speaks of himself in highly complimentary terms in the Prastāvanās of some of his dramas. He speaks of himself as the self-chosen consort of the muse of Poetry and Learning and as the best of poets[2], in the Prastāvanā of VK. Stanzas 5 and 6 of VK, Act I, pay tribute to the author's eminence as a poet and dramatist. In the Prastāvanā of MK, he is described as the creator of dramas AP and others.[3] In that very Prastāvanā he adduces the compliment paid to him by his elder brother Satyavākya, author of Śrīmatikalyāṇa and other works. Satyavākya calls him *kavitā-sāmrājya-lakṣmī-pati* (MK 1. 2.). At the end of AP, there occurs a stanza (*iti Hastimalla* etc.) wherein the author is called *kavicakravartin*. Stanza 1 of the Praśasti printed at end of MK (p. 96) speaks of Hastimalla as *vijita-dhiṣaṇa-buddhi*, *sūkti-ratnākara* and *dikṣu prathita-vimalakīrti*. Stanza 2 says that Hastimalla had acquired the by-name *S'rīsūktiratnākara*. Ayyapārya[4] speaks of Hastimalla as *as'eṣakavirājakacakravartī*. All these references clearly show in what great esteem Hastimalla was held by his contemporaries and by those who lived after him.

The four dramas of Hastimalla are called by the following names: Añjanāpavanaṃjaya, Maithilīkalyāṇa (also called Sītānāṭaka), Subhadrā and Vikrāntakaurava (or Kauravapauravīya, Colophon Act II, or Sulocanā,

1 Dr. Upadhye, l. c. p. 527.

2 सरस्वतीस्वयंवरवल्लभेन महाकवितल्लजेन etc. p. 3.

3 अंजनापवनंजयप्रमुखाणां रूपकाणां प्रवर्तकेन p. 2.

4 In his जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय, quoted by Manoharlal Shastri, Introd. p. 1.

Colophon Acts III, IV, V). In the Prastāvanā of MK (p. 2), we get a reference to AP–pramukha Rūpakas, which shows that AP and other dramas were already composed by the time that MK was being staged. This would show that AP was composed first and MK was composed last. The remaining two plays viz. S and VK were composed between these two. The absence of self-complimentation in the Prastāvanās of AP and S, also lends support to the priority of these two plays in relation to the remaining two (VK and MK).

According to Aufrecht (Catalogus Catal. p. 764), Hastimallasena (i. e. our author Hastimalla) is credited with the authorship of the following works; 1) Arjunarājanāṭaka (Oppert II. 316); 2) Udayanarājakāvya (Oppert II. 421); 3) Bharatarājanāṭaka (Oppert II. 327); 4) Megheśvaranāṭaka (Oppert II. 326); 5) Maithilīpariṇayanāṭaka (Oppert II. 327). Besides these, other poems and plays of Hastimalla are reported by Aufrecht as being in existence, though they are not mentioned by name. M. Krishnamachariar[1] mentions the following works too as having been written by Hastimalla, in addition to those mentioned above: 1) Ādipurāṇa; 2) Purucarita; 3) Subhadrāharaṇa; 4) Añjanāpavanañjaya; and 5) Vikrāntakaurava. One more work 6) Śrīpurāṇa is attributed to Hastimalla. Dr. Upadhye says (l. c. p. 526) that MSS. of this work exist in the Jain Maṭhas of Mudabidri and Varanga in South Kanara. The Śrīpurāṇa, as intimated to Dr. Upadhye by Pt. Premi after personally inspecting its transcripts at Benares (his letter of 6–12–'44), is a Sanskrit work. It is divided into

1 Classical Sanskrit Literature, Madras 1937, pp. 641, 1114.

ten **Parvans** and contains about one thousand verses. One can easily detect that it is heavily indebted to the **Ādipurāṇa** of Jinasena. One copy contains at its close the following verse:

श्रीपुराणसमाम्नातमाम्नातं हस्तिमल्लिना ।
तरण्डं सर्वशास्त्राब्धेरखण्डं धारयत्वमुम् ॥

It is necessary that the contents of this work should be closely compared with the Kannada Ādipurāṇa of Hastimalla which is noticed below and was published from Kolhapur (1943), edited by Prof. K. G. Kundangar.

On comparing Aufrecht's list with that of Krishnamachariar, it seems that very probably **Bharatarājanāṭaka** is the same as Subhadrāharana i. e. Subhadrānāṭika (of which Bharata is hero). Similarly **Megheśvaranāṭaka** seems to be another name for Vikrāntakaurava (of which Megheśvara is the hero). We do not know anything so far about Arjunarājanāṭaka and Udayanarājakāvya. The Ādipurāṇa is, according to Dr. Upadhye, a Kannada work, divided into ten Parvans. It begins with the divisions of time, Kalpa-Vṛkṣas, Manus etc. and gives an account of the previous lives of the first Tīrthaṃkara Vṛṣabha and of his present life in a traditional manner upto the moment of his liberation. Dr. Upadhye conjectures that, since the Kannada verse at the commencement of the second Parvan suggests that Purudevacarita[1] might have been another name of the Ādipurāṇa, Purucarīta and Ādipurāṇa are one and the same work. Dr. Upadhye further concludes that the author of the Kannada Ādipurāṇa and that of the four Sanskrit plays

---

1 **Purudeva is a synonym of Vṛṣabhadeva, so Purucarita means Vṛṣabhacarita, which is the subject matter of Ādipurāṇa.**

are identical, firstly because in the Ādipurāṇa the author is styled in every colophon as *Ubhayabhāṣācakravartī*, which possibly refers to his proficiency in Sanskrit and Kannaḍa; secondly because a stanza[1] occurring towards the end of AP associates him with Karnāṭaka, as a protege of some Pāṇḍya King; and thirdly because Devacandra, author of Rājāvalikathā, speaks of Hastimalla as *Ubhayabhaṣācakravartī*.[2] It appears that though the Pāṇḍya king was at first inclined to harass and challenge Hastimalla, he was later on favourably impressed with his inherent greatness and extended his patronage towards him and bestowed his favours upon him.[3]

Hastimalla was a gṛhastha and not a monk as is shown by the fact of his having a son or sons and further by the mention of him by Nemicandra (author of Pratiṣṭhātilaka) as *gṛhās'ramī*.[4]

DATE OF HASTIMALLA

Since Hastimalla was a remote pupil of Guṇabhadra (who finished his Uttarapurāṇa in A. D. 897), his date must be taken to be later than the end of the 9th century A. D. Ayyapārya, in his *Jinendrakalyāṇābhyudaya* speaks of Hastimalla and describes his encounter with a mad elephant, as a result of which Hastimalla

1 Vide foot-note 1 on page 119 of Añjanāp.

2 Vide Maithilīk. and Vikrāntak. Introd. p. 4 last para.

3 Vide Vikrāntak. I. 40 and the stanza which is last but one at the end of Añjanāp., quoted in footnote 1 on p. 119.

4 Stanza quoted by Manoharlal Shastri on p. 4 of his Introduction to Maithilik. and Vikrāntak. Vide footnote 2, p. 8 above.

got his appellation.[1] Ayyapārya, we are told, wrote his work in Vikramasaṃvat 1376 i. e. 1319 A. D. So the lower limit of Hastimalla's date may be taken to be 1319 A. D., or the first quarter of the 14th century. From the beginning of the 10th century to the beginning of the 14th century A. D. is therefore the range of time within which Hastimalla must have flourished. K. B. Pathak and R. Narasimhacharya have assigned A. D. 1290 to Hastimalla, but, as Dr. Upadhye remarks,[2] their conclusion is not accompanied by the necessary evidence. M. Krishnamachariar (Classical Sanskrit Literature, p. 641) gives the 9th century as the probable date of Hastimalla, but does not adduce any evidence in support of his view. The date of Hastimalla would be more definitely settled, if we could know something precisely about the Pāṇḍya king, who is supposed to have first harassed Hastimalla and who later on seems to have showered his favours upon him. This Pāṇḍya king is mentioned, in the first of the two additional stanzas occurring at the end of AP as a king of Karnāṭaka and as being a contemporary and friend of Hastimalla.[3] The last stanza in the Praśasti appearing at the end of VK makes a reference to Dvīpaṃgudiśaḥ. Who was this ruler of Dvīpaṃgudī? Was he the same as Pāṇḍyamahīśvara, and if so, does Dvīpaṃguḍī[4] stand for the capital of that king? Similarly Saraṇyāpura is mentioned as the name of the place where the encounter with the mad elephant took place. At the end of the Mysore MS. of S, we get 3 additional

1 Vide Stanza quoted in footnote 1, p. 8 above.

2 L. c. p. 528.

3 Vide footnote 1 on page 119 of Añjanāp.

4 *There is a place Dipaṃguḍi in Tanjore District.*

stanzas, the first of which speaks of one Candranātha as the lord of Chatrapura, possibly the chief image in the local temple; the second mentions one *Prabhendumunipaḥ S'rījainayogī*; the last stanza too speaks of *Prabhendusuguruḥ* and refers to him as *Jainendramudrāṅkitaḥ* and as *S'rīmunirāṭ*. We do not know what, if at all, was Hastimalla's relation with the personalities and places mentioned in these three stanzas.

In conclusion, the only thing we can say about Hastimalla's date is that he lived sometime between the end of the 9th and the end of the 13th century A. D.

THE FOUR DRAMAS: THEIR SUMMARIES

1) *Añjanāpavanaṃjaya:* This drama deals with the Svayaṃvara of Añjanā, the Vidyādhara Princess, her marriage with Pavanaṃjaya, the Vidyādhara Prince, and the birth of their son, Hanūmat.

ACT I: PRELIMINARY SCENE: Preparations for the Svayaṃvara of Añjanā are in progress in Mahendrapura.

MAIN SCENE: The hero, Pavanaṃjaya, son of Vidyādhara King, Prahlāda, has already once seen the heroine and has fallen in love with her. Añjanā enters with her friend Vasantamālā and her attendants Madhukarikā and Mālatikā. The subject of their talk is the impending Svayaṃvara and its result. The girls stage a mock-Svayaṃvara, the result of which is that Vasantamālā (playing the part of Añjanā) puts the garland round the neck of Añjanā (playing the part of Pavanaṃjaya). Pavanaṃjaya, who with his companion Prahasita (the Vidūṣaka) has been watching all this from a hidden place, now comes forward and as Añjanā is on the point of going away in her bashfulness, he holds her by the hand. But

she is called away by her mother for bath and so she takes leave of Pavanaṃjaya and departs with her friends.

ACT II: PRELIMINARY SCENE: The Svayaṃvara has already taken place, and Añjanā has chosen Pavanaṃjaya as her consort. The wedding over, the bride and Vasantamālā have come to stay in Ādityapura (capital of King Prahlāda, father of Pavanaṃjaya) and they are being treated there with great kindness.

MAIN SCENE: Pavanaṃjaya and Añjanā visit the Bakulodyāna in the Pramadavana. There follows a love-scene between them. Pavanaṃjaya now learns from Vijayaśarman, his father's minister, that king Prahlāda is on the point of marching out on a hostile expedition against Varuṇa, staying in Pātālapura in the Western Ocean, who is the enemy of Rāvaṇa (King of the Rākṣasas in Laṅkā in the Southern Ocean), and who has imprisoned two of the generals of Rāvaṇa. As Prahlāda must go, at the request of Rāvaṇa, to liberate the two generals, he desires that Pavanaṃjaya should look after and protect his capital in his absence. But Pavanaṃjaya finally persuades his father to allow him alone to march against Varuṇa.

ACT III: PRELIMINARY SCENE: The war between Varuṇa and Pavanaṃjaya has been raging for the last four months. Pavanaṃjaya has been waging the war rather slowly, in order to avert the sudden and swift collapse of Varuṇa, which he fears would endanger the lives of the two generals of Rāvaṇa held in captivity by him. Pavanaṃjaya, having spent the whole day in inspecting his forces, is now resting on the Kumudvatītīra (bank of a lotus-pond).

MAIN SCENE: The moon is rising in the east. Pavanaṃjaya sees a female Cakravāka bird pining on

account of separation from her mate and is at once reminded of his wife Añjanā. He is very deeply moved with love-longing and becomes extremely uneasy. He at last decides to visit the Vijayārdha mountain immediately and meet Añjanā secretly in her palace. He goes in a *vimāna* to Ādityapura and visiting the chamber of Añjanā, passes the night in her company and returns to the battle-field early next morning.

ACT IV: From Vasantamālā's soliloquy and subsequent conversation with Yuktimatī (maid-servant of Queen Ketumatī), we learn that four months have elapsed since Pavanaṃjaya's secret visit to Añjanā. Añjanā has been showing signs of pregnancy. Both of them feel rather worried about the reactions of Queen Ketumatī, the mother of Pavanaṃjaya, and a lady with very peculiar notions about feminine decorum and virtue—when she would come to know of the delicate condition of Añjanā. They hope and pray, however, that Ketumatī would not be unkind or harsh towards Añjanā.

Labdhabhūti, the chamberlain, visits the suburb of Ādityapura and calling on Krūra, the Vidyādharabhairava, conveys to him the command of Queen Ketumatī, that he is to take away Añjanā back to her parents' home. Krūra accepts the command and shortly thereafter actually carries it out.

ACT V: PRELIMINARY SCENE: Pavanaṃjaya has at last defeated Varuṇa in the battle and has delivered Khara and Dūṣaṇa, the two generals of Rāvaṇa. Having concluded a pact of friendship with Varuṇa, Pavanaṃjaya is returning to the Vijayārdha mountain along with the Vidyādharas.

MAIN SCENE: Pavanaṃjaya and Vidūṣaka return to the Vijayārdha mountain and get down from their vimāna on the Rājataśikhara. Pavanaṃjaya learns from Yuktimatī, who has come there to greet and welcome him, that Añjanā is pregnant and has gone to Mahendrapura to stay with her parents. Pavanaṃjaya now decides to go first to Mahendrapura and to return with Añjanā and then only to call on his parents. Riding on the flying elephant Kālamegha, Pavanaṃjaya and Vidūṣaka proceed towards Mahendrapura. On the way they get down and halt on the bank of the Sarovanasarasī, situated on Nābhigiri. They meet a Vanacara and his wife and from the account given by them they conclude that Añjanā and Vasantamālā had been there on their way to Mahendrapura, accompanied by a terrible-looking man, who wanted to take them to Mahendrapura as commanded by Ketumatī. Añjanā, however, had refused to go back to her parents and preferred to stay in the forest-region. She and her friend had entered into the Mātaṅgamālinī forest. At this Pavanaṃjaya faints away. Regaining consciousness he mourns for his beloved wife. He rises up in sheer desperation and declares his resolve to plunge into the forest and to follow Añjanā. He sends Vidūṣaka to the Vijayārdha mountain to bring Vidyādharas to help in the search for Añjanā. Followed by his elephant Kālamegha he now takes a plunge into the dense forest.

ACT VI: PRELIMINARY SCENE: From the conversation between Maṇicūḍa, king of the Gandharvas, and Ratnacūḍā, his wife, we learn that Añjanā, rescued by Maṇicūḍa from serious calamity to her life, and at present staying in their region under their parental care, has given birth to a son. She is, however, very miserable due to separation from her husband.

MAIN SCENE: Pavanaṃjaya, who has gone mad on account of the loss of Añjanā, roams about in the Mātaṅgamālinī forest and goes on addressing various objects—animate and inanimate – and requesting them to give some information about Añjanā. (The whole scene is modelled after Kālidāsa's Vikramorvaśīya, Act IV). Baffled in his attempt to get any clue about Añjanā and utterly disappointed, he sinks down helplessly under a Candana tree. His voice is choked, his eyes are dimmed with tears and his heart is extremely agitated and uneasy. He leans against the Candana tree and rests himself awhile, wondering if anybody would tell him about his beloved wife. Now Pratisūrya, maternal uncle of Pavanaṃjaya, who has been requested by king Prahlāda to help him in the search for Pavanaṃjaya, finds him in a bower of creepers on the bank of the Makarandavāpikā, absorbed in deep meditation, eyes closed and body thrilled with emotion. Pratisūrya concludes that in this condition nothing but Añjanā herself can cheer up Pavanaṃjaya and bring him back to consciousness. So he returns home and sends Añjanā and Vasantamālā (who have been staying with him) to that locality. On seeing Pavanaṃjaya inside the bower of sandal creepers, Añjanā rushes towards him and embraces him, who is extremely delighted to see her. Pratisūrya, who has in the meanwhile gone to the Gandharva king Maṇicūḍa to convey to him the happy news about the discovery of Pavanaṃjaya, now comes up to meet Pavanaṃjaya. Pavanaṃjaya too is extremely delighted to meet the maternal uncle of his beloved wife.

ACT VII: PRELIMINARY SCENE: Preparations for the installation of Pavanaṃjaya as heir-apparent (Yauvarājyābhiṣeka) are afoot in the royal palace at Ādityapura. The

young boy Hanūmat is to be brought and introduced to Pavanaṃjaya by Pratisūrya. There is the hustle and bustle of high festival in the city in general and in the royal palace in particular.

MAIN SCENE: Pavanaṃjaya, Añjanā, Vidūṣaka and Vasantamālā enter the Assembly Hall. Pavanaṃjaya is seated on the Royal throne under a pearl canopy. All express their gratitude to fate for the happy reunion. Pratisūrya comes along with the little boy Hanūmat and introduces him to Pavanaṃjaya. The whole palace is steeped in merriment. Mutual greetings and felicitations are exchanged. Pratisūrya now narrates at length all the happenings in the Mātaṅgamālinī forest—the trials and tribulations through which Añjanā and Vasantamālā had to pass in the course of their wanderings in the forest; how they came to Paryankaguhā on the eastern wing of the Ratnakūṭa mountain and there met the great sage Amitagati and were consoled by him with the assurance that their sufferings would shortly be over; how while staying there, they were attacked by a fierce lion; how their loud appeals for help were answered by the Gandharva king Maṇicūḍa and his wife Ratnacūḍā; how the lion was killed by Maṇicūḍa; how Añjanā in course of time gave birth to a son; how Pratisūrya came to know of them and removed them to the Anuruhadvīpa, where the religious rites of the new-born babe were duly performed; how later on, while helping King Prahlāda and Mahendra in the search for Pavanaṃjaya, he discovered him on the bank of the Makarandavāpikā, in the heart of the Vanamālā wood, in the Mātangamālinī forest; how he thereupon went back to Anuruhadvīpa and returned with Añjanā and Vasantamālā and how finally the meeting between Añjanā and Pavanaṃjaya took place. All express

their thanks to the Gandharva king Maṇicūḍa for having rescued Añjanā from the fierce lion. Maṇicūḍa, at the command of Varuṇa and Rāvaṇa (who are now mutual friends) bestows upon Pavanaṃjaya the sovereignty of the Vijayārdha mountain and makes a formal declaration to that effect. Pavanaṃjaya thankfully accepts the new status conferred upon him. The Vidyādharas pay homage to him with bent heads and folded hands.

After the epilogue, with usual benedictions, the drama comes to an end.

2) *Subhadrā Nāṭikā:* This play deals with the marriage of Subhadrā, sister of the Vidyādhara king Nami and daughter of Kaccharāja, with King Bharata, son of Vṛṣabha, the first Tīrthaṅkara.

ACT I: The victorious campaign of King Bharata in all the quarters of the world (Digvijayayātrā) is reviewed in the course of the conversation between King Bharata and his friend Kārtyāyana, the Vidūṣaka. King Bharata accidentally sees Subhadrā, the Vidyādhara damsel, in the Vedīvana while he is wandering in the regions of the Rajatācala (Vijayārdha). The king conceives a deep love for Subhadrā which he confesses in her presence. While the king is engaged in talking with Subhadrā, the Queen Vailātī (daughter of King Vilāta) comes there. Subhadrā at once leaves in a hurry. The queen's suspicions are naturally aroused regarding the fidelity of the king. He tries to console and pacify her, but not with much success.

ACT II: The king's love-lorn state gets more and more serious and he visits the Vedīvana once again for diversion. He draws a picture of Subhadrā and remains contemplating it. Subhadrā and her friend Mandārikā.

enter and gradually reach the thicket of Mandāra trees, where the king is sitting with his friend, the Vidūṣaka, looking intently at Subhadrā's likeness. The Queen Vailātī also comes to the place and secretly watches the doings and overhears the utterances of the love-lorn king. Her patience is at its end and she angrily rushes into the king's presence. The king and the Vidūṣaka try to offer excuses regarding the picture, but the queen is not at all convinced by them. She leaves in a fit of rage, not minding the king's apologies and protestations of love. Subhadrā, who has watched the whole of this scene between the king and the queen, now enters The king explains to her, that his behaviour and attitude towards the queen were prompted by his spirit of *dākṣiṇya* (liberalism in matters of love), but that he really loves Subhadrā in all sincerity. The king grasps the hand of Subhadrā. But just then she hears her friends calling her and so takes leave of the king to go away, leaving him plunged in deep sorrow.

ACT III: Subhadrā is seriously suffering from love-sickness. She writes a love-letter to the king and her friend Mandārikā suspends it on the branch of an Aśoka tree. The king and the Vidūṣaka enter and discover Subhadrā merged in anxious thoughts, and sorely tortured by the pangs of love. Subhadrā and her friend perform the marriage ceremony of the Aśoka tree and the Mālatī creeper. The Vidūṣaka approaches them under the pretext of asking for presents and the king also goes near and grasps the hand of Subhadrā, who is very apprehensive of the queen. At this juncture the queen and her maid come there with a view to conciliating the king. But when the queen sees the king holding the hand of Subhadrā she is enraged and rushes forth in a fit of anger.

Subhadrā slinks away into the adjoining bower. The king apologises to the queen and prostrates himself before her. The queen however angrily rejects his gestures and leaves with her attendant. The king now discovers the love-letter of Subhadrā on the branch of the Aśoka tree, and reads it over and over again, while Subhadrā watches the whole thing from the bower where she is hiding, and is convinced of his love for her. It is now announced to the unbounded satisfaction of both King Bharata and Subhadrā, that King Nami has decided to give his sister, Princess Subhadrā, in marriage to King Bharata.

ACT IV: The king is uneasy on account of his love-longing and on account of the idignation on the part of the queen. The Vidyādhara messenger, Tārkṣyadatta, comes with the news that King Nami is coming with his beautiful sister and the entire army of the Vidyādharas. The king is greatly delighted at the prospect of meeting his beloved once again. In the meanwhile King Nami has sent word to Queen Vailātī and informed her that he intends to give his sister Subhadrā in marriage to King Bharata, as it has been prophesied by sooth-sayers that Subhadrā would be the wife and queen of a Cakravartin. The queen gives her consent to this proposal. Subhadrā and the queen, who were till now rather unfriendly towards each other, are now reconciled. King Bharata is extremely delighted at these developments and gives orders that King Vilāta (his father-in-law) be made lord of Madhyamottarakhaṇḍa, and that Yuvarāja Cakrasena (brother of Queen Vailātī) be made lord of Paścimakhaṇḍa. King Nami now arrives, followed by hosts of Vidyāharas. He gives his sister Subhadrā to King Bharata and the two are united in blissful wedlock.

3) *Maithilīkalyāṇa:* The play deals with the the marriage of Rāma, son of King Daśaratha of Ayodhyā, with Sītā, daughter of King Janaka of Mithilā and Queen Vasudhā, after Sītā has selected Rāma at the Svayaṃvara, on the basis of Rāma's stringing and breaking the bow (called Vajrāvarta) belonging to King Bali.

ACT I: Rāma, who has already conceived a love for Sītā even before actually seeing her, meets Sītā in the shrine of Kāmadeva near the Upavanadolāgṛha where Sītā has gone for the swing-sport in connection with the spring festival. Sītā is amazed at the beauty of Rāma and is enraptured to see him. She hears the voice of her friends calling her and so she takes leave of Rāma and goes away. Rāma is plunged in reflection on Sītā's marvellous beauty and finds that his heart has been completely captured by her.

ACT II: Rāma is still brooding over Sītā. He has an irresistible desire to see her once again. At the suggestion of his friend Gārgyāyaṇa, the Vidūṣaka, Rāma goes to the Mādhavīvana situated to the north of the palace. Even there his suffering is not abated in the least. Now Sītā and her friend Vinītā come to the Mādhvīvana. They overhear the conversation going on between Rāma and his friend, the Vidūṣaka. Certain words uttered by Rāma are misunderstood by Sītā, who consequently thinks that Rāma no longer loves her. She falls into a swoon. Rāma and his friend, the Vidūṣaka, rush forward and Rāma tries to cheer up Sītā. But she is so overpowered by jealousy, that she is on the point running away from Rāma. He appeases her by explaining the real meaning of his words which she has misunderstood. He reaffirms his deep love for her. As the evening is drawing near, Rāma

and Sītā most reluctantly take each other's leave and depart.

ACT III: The sufferings of Sītā are increasing and Kalāvatī, her messenger, goes to Rāma and acquaints him with her sad plight. Rāma too is pining for Sītā and is passing his time in the Mādhavīvana, and is in a desperate mood and in a pitiable state. Kalāvatī recounts to him the sad condition of Sītā and hands over to him a message written by Sītā on a Ketakī petal. Rāma repeatedly reads the message. Kalāvatī suggests that Rāma should secretly visit in the evening the Candrakāntadhārāgrha in the southern part of the Mādhavīvana, where Sītā is passing her time.

ACT IV: Sītā is now revealed in the Pramadavana, in the Candrakāntadhārāgrha. All the cooling remedies employed by her friends to mitigate her fever and suffering have absolutely no effect upon her, but on the contrary aggravate her condition. Rāma now enters accompanied by the Vidūṣaka, and finds Sītā in the *Yantradhārāgrha*, lovelorn and eagerly waiting for him. Rāma and the Vidūsaka stand aside for some time, overhearing the conversation of Sītā and her friend. Sītā begins to despair of Rāma's arrival, and her friend Vinītā, proposes that they two should enact the events that took place formerly in the Mādhavīvana (in Act II, above). Vinītā is to play the part of Rāma and Sītā is to assume the role of herself. While the scene is being enacted, Rāma, at a very critical moment suddenly rushes forth and reveals himself before them. He comforts Sītā, holding her hand. He utters words of comfort in order to banish her fears and nervousness. Sītā is now called by her mother Vasudhā, and most reluctantly she takes her leave of Rāma.

ACT V: From the preliminary scene we learn about the preparations for the Svayaṃvara of Sītā, wherein she is to be given to the hero who strings the heavenly bow called Vajrāvarta. The kings who have assembled for the Svayaṃvara are now informed that they should get ready. Accordingly all the kings hasten towards the Svayaṃvara maṇḍapa. Rāma and Lakṣmaṇa too proceed towards the Svayaṃvara-maṇḍapa. Janaka comes to the Assembly Hall and orders Sītā also to be conducted to the Svayaṃvara-maṇḍapa. Various kings come forward to try their strength on the bow, but are foiled in their attempt. At last Rāma comes forward. He not only bends and strings the bow, but also snaps it asunder, with a terrific and deafening sound. Rāma is hailed by all and Janaka gives orders for starting immediately the festival of Sītā's marriage with Rāma. A voice from the sky announces that Rāma is Puruṣottama in his last life prior to emancipation (*caramadeha-dhārī*). The marriage is celebrated with appropriate pomp and circumstance.

4) *Vikrāntakaurava:* This drama deals with the marriage of Kauraveśvara (*alias* Megheśvara or Jaya), son of Mahārāja Somaprabha with Sulocanā, daughter of King Akampana of Kāśī after she has selected him at the Svayaṃvara on the strength of his personal qualities.

ACT I: PRELIMINARY SCENE: Kauraveśvara has come to Vārāṇasī in order to witness the Svayaṃvara of Sulocanā and has encamped on the banks of the Gaṅgā. He has already fallen in love with Sulocanā ever since he saw her for the first time when he visited Vārāṇasī in connection with the festival of the Nagaradevatā.

MAIN SCENE: Kauraveśvara narrates to the Vidūṣaka (his friend, by name Saudhātaki) his reactions at the first glimpse of Sulocanā and how Sulocanā too gave abundant evidence of her love for him. He speaks to the Vidūṣaka about his desperate condition at the first sight of Sulocanā, and tells him that he is not in a position to brook any delay in the fulfilment of his heart's desire.

ACT II: PRELIMINARY SCENE: Sulocanā is to take her auspicious, ceremonial bath at the Gaṅgātīrtha on the morning of her Svayaṃvara. Kauraveśvara too has already gone on horseback to the bank of the Gaṅgā in order to have a look at the river.

MAIN SCENE: Kauraveśvara is plunged in deep longing for Sulocanā. Saudhātaki, his friend, proposes that they should visit the Gaṅgātīrodyāna. Going there they admire and appreciate the various aspects of the beauty of the flowers, trees etc. in the garden; but the king is constantly reminded of Sulocanā and expresses his deep yearning for her. Sulocanā and her friend Navamālikā now enter. They move about admiring the beauty of the garden. The king and his friend, while strolling on the bank of the Gaṅgā, come at last to the very spot where Sulocanā and Navamālikā are resting and from a distance the king catches a glimpse of Sulocanā and admires her beauty. Sulocanā and Navamālikā now casually move about on the bank of the Gaṅgā and at last they happen to see the king and they thank their stars for that happy coincidence. Sulocanā feels extremely nervous in the presence of the king, who tries to pacify her. But just then Sulocanā is called away by her friend Saralikā and so she departs after

taking leave of the king. This short meeting produces a deep impression on the king's mind. He is sorely disappointed at Sulocanā's sudden departure. He once again falls into broodings on her nervous actions and gestures in his presence. He feels all the more restless and longs for the day when she would be united with him.

ACT III: PRELIMINARY SCENE: The Viṭa, Āryabhadrila, describes the display of uncommon grandeur and opulence in the city of Vārāṇasī, on the eve of Sulocanā's Svayaṃvara. He describes the various kings including Kauraveśvara, who have come for the Svayaṃvara.

MAIN SCENE: The Pratīhāra (door-keeper) describes and introduces to Sulocanā the various kings assembled for the Svayaṃvara. Finally he introduces Kauraveśvara (*alias* Jaya or Megheśvara) of Hastināpura, son of Kururāja Somaprabha. Sulocanā puts her garland round his neck, thereby signalising her choice. The other kings assembled there are enraged at this and they openly declare their intention to abduct Sulocanā by force. Kauraveśvara realises that he has now to get ready for war with the other kings and defiantly proclaims that he would inflict severe punishment on them all and teach them the lesson of their life.

ACT IV: PRELIMINARY SCENE: The kings disappointed at the Svayaṃvara incite Arkakīrti (son of Bharata) to attack Kauraveśvara and snatch Sulocanā from him. King Akampana (of Kāśī) tries to dissuade him from his purpose by offering to him his younger daughter Ratnamālā, but in vain. When he realises that matters are assuming a serious turn, he asks his son, Hemāṅgada

to be ready for defending the city in case it is attacked by Arkakīrti and his allies, who have already mobilised for the battle.

MAIN SCENE: This is nothing but a conversation betweeen Ratnamālī (a Vidyādhara), Mandāramālā (his wife) and Mantharaka (or Mandara, their attendant), all riding in an aerial car and witnessing the various events in the battle raging on the earth below, between Kauraveśvara and his partisans on the one hand and Arkakīrti and his allies on the other hand. The various incidents in the battle — the fierce encounters between individual heroes on either side, the changing fortunes of the two sides as the fight grows in its intensity and finally the duel between Kauraveśvara and Arkakīrti — all these are here presented in the form of brief and neat verbal pictures. Kauraveśvara at last overpowers Arkakīrti in a hand-to-hand fight and takes him prisoner. He is hailed by gods with flowers dropped over him from their *vimānas*.

ACT V: PRELIMINARY SCENE: On his return to Vārāṇasī, Kauraveśvara finds that his father-in-law, King Akapana of Kāśī, does not approve of the battle and the defeat and imprisonment of Arkakīrti by Kauraveśvara; for Arkakīrti was the son of Bharata Cakravartin, and his defeat and humiliation were as good as the defeat and humiliation of Bharata himself. A message is now received from Bharata, saying that Arkakīrti was really in the wrong, and urging upon Akampana to bring about an understanding and reconciliation between Arkakīrti and Kauraveśvara. The King of Kāśī (Akampana) once again offers his younger daughter (Ratnamālā) to Arkakīrti, who this time accepts the proposal. We are

told that Arkakīrti's marriage with Ratnamālā is to take place that very night and Kauraveśvara's marriage with Sulocanā would be celebrated the next day.

MAIN SCENE: It is the hour of evening preceding the wedding day. Kauraveśvara is brooding over the peculiar feelings that crowded his mind when Sulocanā selected him by placing the garland round his neck. A secret meeting between Kauraveśvara and Sulocanā has been arranged to take place in the Kaumudīgṛha in the Bālodyāna. The two meet for a short while in the Kaumudīgṛha and then Sulocanā leaves Kauraveśvara, as she is called away to attend the Kautukabandha ceremony of her sister Ratnamālā.

ACT VI: PRELIMINARY SCENE: The marriage of Ratnamālā and Arkakīrti has already taken place and the marriage of Sulocanā and Kauraveśvara is going to be celebrated shortly. Preparations on a grand scale are in progress.

MAIN SCENE: Kauraveśvara proceeds towards the *Ratnamaṇḍapa* where the *king of Kāśī* is waiting for him. The ladies shower handfuls of fried grains on him. The fires are fed with offerings, Sūktas are recited by worthy Brahmins; auspicious songs are sung by bards. Sulocanā is led up to the Ratnamaṇḍapa by her friends. The king of Kāśī gives her in marriage to Kauraveśvara and offers his blessings to both. With the usual benedictions the play comes to an end.

SOURCES OF THEIR PLOTS

All the four plays of Hastimalla which form the subject of the present study, derive their themes from Jain mythology.

I) The story of Añjanā and Pavanaṃjaya occurs in chapters XV-XVIII of Paümacariya (PC) of Vimala Sūri (second century A. D.) and chapters XV to XVIII of Pandmapurāṇa (PP) of Raviṣeṇa (eighth century A. D.). The accounts in both these works are identical. The following are the points of divergence between the story as given by Vimala and Raviṣeṇa on the one hand and by Hastimalla on the other: (1) Pavanaṃjaya is called in PC and PP by various names such as Pavanagati, Pavanavega, Vāyugati, Vāyuvega, Vāyukumāra etc. Añjanā is called also by the name Añjanāsundarī. The wife of king Mahendra (i. e. mother of Añjanā) gets the name Hṛdayavegā or Hṛdayasundarī in PC and PP, while she has the name Manovegā in Hastimalla's play. King Mahendra is in PC and PP said to be the father of a hundred sons, Arindama and others, while Hastimalla mentions only two sons of his by name (Arindama and Prasannakīrti). Ketumatī, mother of Pavanaṃjaya is called Kīrtimatī in PC. (2) There is no question of Svayaṃvara in PC and PP. After having a consultation with his ministers, King Mahendra decides to give his daughter to Pavanaṃjaya and secures the consent of King Prahlāda in due course. (3) Three days before the celebration of the marriage Pavanaṃjaya's mind is prejudiced against Añjanāsundarī, Vasantamālā and Miśrakeśī. He completely misunderstands the whole situation and somehow jumps to the baseless conclusion that Añjanāsundarī does not want to marry him as she really loves Vidyutprabha (another Vidyādhara prince). He is on the point of killing Añjanāsundarī, but is prevented by his friend Prahasita. He becomes disgusted with her and wishes to cancel his proposed marriage with her and return to his city forthwith. Yielding however to the

pressure of his father and of King Mahendra, he decides to marry Añjanāsundarī, though he secretly resolves to kill her after the marriage. (4) Pavanaṃjaya's hatred towards his wife hardens into harshness and utter indifference to her and persists for no less than twentytwo years, while she languishes away, consumed by sorrow. Even when Pavanaṃjaya goes away to help Rāvaṇa in the war with Varuṇa, he angrily remonstrates with his wife for wanting to give him a send-off and wishing him good luck. (5) This attitude of Pavanaṃjaya towards his wife undergoes a sudden change at the sight of a wailing Cakravākī on the bank of the Mānasa lake. He conceives a deep longing for her and sincerely repents his former harshness towards her. (6) He secretly goes back to his city to meet his wife and spends several days (according to PP) in her company (and not one night only as stated in PC and AP). Though he is said to have lived with her for several nights, he does not think it proper to inform his parents about his stay there, nor do they come to know about it. Before returning to the battle-field, he has already come to know about Añjanā's pregnancy. He assures her that he would return before her state of pregnancy became too obvious. He gives her a jewel bracelet (acc. to PP, a ring acc. to PC.) with his name inscribed on it, for being used if and when necessary. 7) When Pavanaṃjaya's mother comes to know about the pregnancy of Añjanā, she is shocked. She knows how bitterly Pavanaṃjaya has been hating Añjanāsundarī and she is not prepared to believe that he had secretly visited her. She therefore sends her away to her parents. 8) King Mahendra too is not ready to admit to his house his own daughter whose virtue is under suspicion. He

turns her out of his palace. 9) The sage Amitagati, staying in the Paryaṅkaguhā, narrates to her and her friend Vasantamālā, the *pūrvajanma* of the child in the womb, the reason why Añjanāsundarī was at first disliked by her husband as also the reason of her present separation from him. 10) As Añjanā is about to get into the Vimāna of Pratisūrya, her infant babe smilingly tries to jump into the Vimāna and in doing so falls amidst the rocks of the mountain below, smashing the rocks to pieces and itself unhurt. It is therefore given the name Śrīśaila. It is also called by another name — Hanūmat — as it was brought up in its infancy in Hanūruhadvīpa by Pratisūrya. 11) At the end of the war with Varuṇa, Pavanaṃjaya returns home and when he learns that his wife has been sent to her father's house, he goes to King Mahendra, but is deeply grieved to find that she is not there. 12) He plunges into the forest called Bhūtaravāṭavī in search of Añjanā. He conveys to his parents his resolve not to come back to them unless he recovers his lost wife. 13) Ketumatī, the mother of Pavanaṃjaya, feels extremely sorry, when she comes to know about her son's condition. 14) The Vidyādharas find Pavanaṃjaya engrossed in meditation like a *muni* and utterly speechless. Pavanaṃjaya conveys to his parents by means of signs that he has taken the vow of silence and starvation unto death, as long as he does not see his wife.

Except for the points of divergence mentioned above, Hastimalla has closely and faithfully followed the story as given in Paümacariya and has cast it into the conventional mould of a Nāṭaka.

II) The story of the marriage of King Bharata (the first Cakravartin) with Subhadrā (sister of the Vidyādhara

King Nami) occurs in Chapter XXXII (Stanza 175ff) of *Ādipurāṇa* of Jinasena (9th century A. D.). It is narrated there very briefly[1]. The Subhadrā Nāṭikā is a dramatic elaboration based upon this episode. The author has dealt with the theme in the traditional manner of the Nāṭikā in Sanskrit and fitted it into the framework of conventional motifs of the Nāṭikā[2], represented by the Ratnāvalī of Śriharṣa—love at first sight; separation; complications caused by the jealousy on the part of the Queen and the Heroine; untimely blossoming of trees as a result of special treatment given to them and their marriage with suitable creepers; scenes of indignation on the part of the Queen when she gets irrefutable evidence of the King's infidelity and the King's prostrations before her and protestations of love for her; loveletter sent by the Heroine to the King; reconciliation of the Queen with her new rival in love, whom she recognises and accepts as her cousin; prediction by soothsayers that the Heroine is destined to be the wife of a Cakravartin; and finally the marriage.

III) The story of the Svayaṁvara of Sītā and her marriage with Rāma occurs in Uddesa XXVIII of the Paümacariya of Vimalasūri and Parva XXVIII of the Padmapurāṇa of Raviṣeṇa in identical form. In

---

1 नमिश्च विनमिश्चैव विद्याधरधराधिपौ । स्वसारधनसामग्र्या प्रभुं द्रष्टुमुपेयतुः ॥ विद्याधरधरासारधनोपायनसंपदा । तदुपानीतयानन्यलभ्ययासीद् विभोर्धृतिः ॥ तद्गाक्रतरत्नौघैः कन्यारत्नपुरःसरैः । सरिदोघैरिवोदन्वानपूर्यत तदा प्रभुः ॥ स्वसारं च नमेर्धन्यां सुभद्रां नाम कन्यकाम् । उदुवाह स लक्ष्मीवान् कल्याणैः खेचरोचितैः । तां मनोज्ञां रसस्येव स्रुतिं संप्राप्य चक्रभृत् । स्वं मेने सफलं जन्म परमानन्दनिर्भरः ॥

2 Cf. Viśvanātha, Sāhityadarpaṇa, VI. 269-272. नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरंकिका । प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ॥ स्यादन्तःपुरसंबद्धा संगीतव्यापृताथवा । नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा ॥ संप्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शंकितः । देवी पुनर्भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥ पदे पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः । वृत्तिः स्यात् कैशिकी स्वल्पविमर्शाः सन्धयः पुनः ॥

dramatising the story Hastimalla has scrupulously eschewed all the earlier details such as: 1) King Janaka's resolve to give Sītā in marriage to Rāma for having saved his kingdom against the invasion of the Ardhabarbaras; 2) Nārada's intrusion into the residence of Sītā and ejection from that place; 3) his plans for revenge on Sītā by frustrating her proposed marriage with Rāma; 4) the abduction of King Janaka by the Vidyādhara Indugati; and 5) Janaka's forced acceptance of the condition proposed by Indugati that Rāma, son of Daśaratha, could marry Sītā, only if he succeeded in stringing the bow called Vajrāvarta, failing which the Vidyādhara Indugati himself would carry away Sītā by force for the sake of his son, Bhāmandala. Instead of this Hastimalla creates, in Act I of MK, a situation in which Sītā happens to see Rāma in the temple of Kāmadeva (near the swing-house in the royal gardens) and straightway falls in love with him. He depicts the further course and development of this love by giving an account of the sufferings of both Rāma and Sītā in separation from each other; the first meeting between them in the Mādhavīvana (Act II); the serious condition of both thereafter; Sītā's message to Rāma, conveying her lovelorn condition and her hope about the eventual fulfilment of her love (Act III); and the second meeting between the lovers in the Candrakāntadhārāgrha (Act IV). Hastimalla has thus concentrated his attention only on the love-affair-aspect of the story, prior to the actual Svayaṃvara and dealt with it in the traditional manner of the Sanskrit Nāṭaka[1].

---

1 Technically the MK is a Trotaka, which is one of the eighteen Uparūpakas according to Sanskrit Dramaturgy. It is defined as follows in Sāhityadarpaṇa VI. 273:
सप्ताष्टनवपंचांकं दिव्यमानुषसंश्रयम् । त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्यंक सविदूषकम् ॥

IV The story of the Svayaṃvara of Sulocanā and her marriage with Jayakumāra (*alias* Megheśvara or Meghasvara) occurs in Parvans XLIII to XLV of the Ādipurāṇa of Jinasena. Hastimalla has closely followed the story as given in Ādipurāṇa and dramatised it in the traditional manner of Sanskrit play-wrights.

The story as given in Ādipurāṇa is as follows :—

In Jambūdvīpa, Bharatakṣetra, the country called Kurujāṅgala, capital Hastināpura, King Somaprabha, belonging to Somavaṃśa; his younger brother Śreyān, and his Queen Lakṣmīvatī. Their sons Jaya or Jayakumāra and fourteen others, Vijaya etc. Somaprabha became disgusted with the world and renouncing worldly life went to Lord Ṛṣabha along with his brother and attained *mokṣa* in due course. Jayakumāra succeeded him on the throne and ruled the land very efficiently. His wife Śrīmatī. —— In Bharatakṣetra, the country called Kāśī, capital Vārāṇasī. King Akampana belonging to the Nāthavaṃśa, his wife Suprabhā. One thousand sons, Hemāṅgada, Suketuśrī, Śrīkānta and others. Two daughters, Sulocanā and Lakṣmīmatī. The king consulted with his ministers about the marriage of Sulocanā and ultimately decided to hold a Svayaṃvara. Preparations were started for the Svayaṃvara and invitations were sent to all kings. On the day of the Svayaṃvara all the invited kings—Jayakumāra, Arkakīrti (son of Emperor Bharata) etc. and the Vidyādharas were duly welcomed and seated in the gorgeously decorated pandal. The Kañcukī called Mahendradatta (and not the Pratīhāra as in VK), led Sulocanā in a chariot to where the kings were seated and introduced each of them to her. Sulocanā passed by all of them and finally came near Jayakumāra. The Kañcukī gave a detailed account of his valour and exploits in the

battles against the gods called Meghakumāra and told her how Emperor Bharata had conferred a unique military distinction on him. Sulocanā put the garland round the neck of Jayakumāra thereby signifying her choice. Prince Jayakumāra was thus the first among princes to have the good fortune of being chosen at a Svayaṃvara. The other kings were naturally deeply disappointed. One of them—Durmarsana—misrepresented the intentions of Akampana to Arkakīrti and provoked him to anger. Arkakīrti pledged himself to vanquish Akampana and to wrest Sulocanā from the hands of the latter. A good many of the disappointed kings joined Arkakīrti. In spite of the entreaties of his own minister Anavadyamati and those of Akampana's minister too, Arkakīrti sent for his Senāpati and declared war against Akampana and Jayakumāra. The battle started. Jayakumāra performed diverse incredible feats with his bow called Vajrakāṇḍa (given by Bharata). When he came face to face with Arkakīrti he tried to argue with him and to persuade him to desist from further prosecuting the war, but to no purpose. In the duel that ensued, Jayakumāra completely overpowered and defeated Arkakīrti and took him prisoner and handed him over to King Akampana.

King Akampana felt deeply sorry that matters should have assumed such a grave turn as to result in war with the son of Emperor Bharata. He began to pacify Arkakīrti and apologised to him for any offence that Jayakumāra might have given him and offered to him his younger daughter called Lakṣmīmatī or Aksamālā (Ratnamālā in Hastimalla's play). Arkakīrti and his Vidyādhara allies were sent away by Akampana after being duly honoured. Akampana also sent a messenger to King Bharata in order to remove any misunder-

standing in his mind due to the battle that had recently taken place and the defeat sustained by Arkakīrti and in order to offer his apologies to Bharata for the same. Bharata gave a quiet hearing to the message and then decided that his son Arkakīrti was really in the wrong and that Jayakumāra was in the right. According to Bharata, it was Arkakīrti who really deserved to be censured and punished. But as he had been on the contrary already honoured by Akampana by giving him his younger daughter in marriage, Bharata was quite helpless in the matter.

After the celebration of the marriage of Sulocanā and Jayakumāra, the latter stayed in the house of his father-in-law for some time, enjoying the pleasures of conjugal love. Having received thereafter an urgent call from his ministers, he left for his own capital.

METRES USED BY HASTIMALLA

The total number of stanzas occurring in the four plays of Hastimalla is 912[1] (AP: 187; S: 134; MK: 186; VK: 405). Hastimalla appears to be a master of the art of facile versification in Sanskrit and Prākrit. Śārdūlavikrīḍita appears to have been his favourite metre, in which he has composed no less than 139 stanzas. Next in order of frequency come: Upajāti (111 stanzas); Āryā (100); Vasantatilaka (84); Śikhariṇī (84); Anuṣṭubh (83); Mālinī (64); Vaṃśastha (48); Sragdharā (31);

1 Eight of the stanzas are repeated once each. So the nett number of stanzas is 903. The repeated stanzas are: VK I. 36 = MK II. 37; VK II. 31 = S I. 34; VK III. 6 = MK III. 10; VK III. 52 = S IV 15; VK III. 53 = S IV. 27; VK V.73 = MK I. 21; VK V. 74 = S III. 17; VK V. 75 = S I. 33.

Hariṇī (25); Indravajrā (22); Mandākrāntā (18); Upendravajrā (16); Rathoddhatā (13); Aupacchandasika (11); Viyoginī (10); Pṛthvī (9); Drutavilambita (6); Puṣpitāgrā (6); Aparavaktra (5); Svāgatā (5); Śālinī (4); Mañjubhāṣiṇī (3); Vaitālīya (Prākrit) (3); Adritanayā (1); Dodhaka (1); Nardaṭaka (1); Pramitākṣarā (1); Praharṣiṇī (1); Bhujaṅgavijṛmbhita (1); Rucirā (1); Vidyunmālā (1); Avalambaka (1); Ekāvalī (1); Ghattā Saṭpadī (1); Mārakṛti (1). Except for Vaitālīya[1] (Prākrit), Adritanayā,[2] Nardaṭaka,[3] Bhujaṅgavijṛmbhita,[4] Vidyunmālā,[5] Avalambaka,[6] Ekāvalī,[7] Ghatta Saṭpadī[8]

---

1 For the Vaitālīya (Prākrit) metre see Sūtrakṛtāṅga I. 2. It is an *Ardhasamacatuṣpadī* metre, having four lines, the scheme of the odd lines being: 6 mātrās + Ra-gaṇa (— ⏑ —) + ⏑ —; that of the the even lines is: 8 mātrās + Ra-gaṇa (— ⏑ —) + ⏑ —.

2 Four lines, each having 23 syllables. The scheme is as follows: ⏑⏑⏑/⏑—⏑/—⏑⏑/⏑—⏑/—⏑⏑/⏑—⏑/—⏑⏑/⏑—. MK .I. 5a (pp. 3–4).

3 Four lines, each having 17 syllables. The scheme is as follows: ⏑⏑⏑/⏑—⏑/—⏑⏑/⏑—⏑/⏑—⏑/⏑—. VK V. 67.

4 Four lines, each having 26 syllables. Scheme: ———/———/——⏑/⏑⏑⏑/⏑⏑⏑/⏑⏑⏑/—⏑—/⏑⏑—/⏑—. MK III. 9a, p. 45, ll. 12–15.

5 Four lines, each having 8 syllables. Scheme: ———/———/——. AP VI. 14.

6 Four lines, each line having two sections. Scheme for each section: 4 mātrās + Ra-gaṇa (—⏑—). AP IV. 9.

7 Two lines, each line having two sections. Scheme for each section: 5 mātrās + 5 mātrās. MK I. 20 a, p. 11, line 11.

8 Six lines; scheme: 10 mātrās, 8 mātrās, 13 mātrās, 10 mātrās, 8 mātrās, 13 mātrās. VK II. 14a, p. 29, ll. 5–6.

and Mārakṛti,[1] all the other metres used by Hastimalla in his four dramas are of quite common occurrence in the works of classical Sanskrit and Prākrit poets and dramatists. A complete alphabetical index of all the stanzas occurring in the four plays of Hastimalla and in the Praśastis attached to them has been given at the end of the present edition.[2]

Hastimalla's ability to handle all these matres in a natural, easy and graceful manner is enough to do credit to any Sanskrit poet. He is quite at home while writing metrical passages and his ease and grace are at times reminiscent of similar qualities in Kālidāsa, Bhavabhūti and others.

LINGUISTIC AND IDEOLOGICAL PECULIARITIES

It is proposed to discuss in what follows a few peculiarities of Hastimalla as evidenced by his four dramas, classified under the following heads: I) Grammatical and Dialectal; II) Lexical; III) Ideological; and IV) Influence of earlier Sanskrit writers on Hastimalla.

I) *Grammatical peculiarities*: On the whole the Sanskrit and Prākrit used in Hastimalla's plays is in keeping with the norm laid down by earlier grammarians. The following peculiarities are however worth being noted: (a) Occasional use of the plural number for the

---

1 Four lines. Scheme: 4 mātrās + 5 mātrās + ⏑–. MK I. 26. For the identification of the metres and scansion of the Stanzas mentioned under footnotes 1, 6, 7, 8 on p, 38, and footnote 1 on p. 39 I am indebted to Prof. H. D. Velankar of Bombay.

2 VK V. p. 122: last two lines appear to have a metrical bias, particularly the words कुवलयगर्भदलाग्रमालिकां and कठिनयति समस्तमार्दव, which sound like Aparavaktra.

dual in the first person, in original Sanskrit passages and in the Chāyā of Prākrit passages.[1] b) Unpaṇinian forms and constructions: AP Act I. p. 4: परिसमापय्य for परिसमाप्य; AP Act I. p. 9 अध्यवसितुम् for अध्यवसातुम्; AP Act IV. 18, p. 65 वर्तेव्यम् for वर्तितव्यम्; AP Act V p. 68 निवेदितुम् for निवेदयितुम्; p. 74 प्रतिपालितव्यम् for प्रतिपालयितव्यम्; VK Act I. p. 11 मा करिष्ठाः for मा कार्षीः or मा कृथाः; III. 10 बहुप्रेयसीन् for बहुप्रेयसीकान्; AP Act V p. 68 श्व एव चागन्तव्यः कुमारः for श्व एव चागन्तव्यं कुमारेण; MK IV p. 76 ब्रूयताम् for उच्यताम्.

II) *Dialectal peculiarities*; All the low characters such as Vidūsaka, domestic servants etc. and females use Śaurasenī Prākrit. Intervocalic *t* is generally changed to *d* and *th* is changed to *dh*. Intervocalic *p* is sometimes retained unchanged. *s* preceded by *anusvāra* is changed to *gh* in some cases, e. g. आसंघीअदु (AP and S) (=आशंस्यताम्), आसंघा (MK) (=आशंसा). अव + गाह् is represented by ओवाह (AP and S).

Only on rare occasions Prākrit-speaking characters use Sanskrit e. g. when imitating Sanskrit-speaking characters, e. g. in AP Act I Madhukarikā uses Sanskrit while playing the part of Miśrakeśī.

In AP Act IV, in the scene between Hintālaka and Krūra, Māgadhī is used by both the characters. So also in AP Act V Māgadhī is used in the scene between Lavalikā and Camūraka (the *vanacaras*).

In MK III, p. 44 the Saṇḍha (enunch) first speaks in Sanskrit. But on page 45, he all of a sudden changes

---

1 AP, Act I, p. 2: तेन हि वयं...कुशीलवैः सह संगीतकमारभामहे for आवाम्......आरभावहे । p. 7 Vidūṣaka: जाव इमिणा तमालपाअवेण ओवारिअ दक्खम्ह । (chāyā: यावदनेन तमालपादपेनापवार्य पश्यामः for पश्यावः). p. 9 Pavanaṃjaya: वयस्य वयमप्यनुपलक्षिता एवास्या अनुपदं गच्छामः for आवां...गच्छावः ।

over to Prâkrit and continues to use that very language in his conversation with the Viṭa. On page 46, with stanza 12 he resumes Sanskrit. On page 48 there is once again a strange alternation between Sanskrit and Prākrit. A similar case of sudden change of the dialect occurs in VK Act II p. 24, where the Sauvidalla starts with Sanskrit and then suddenly changes over to Prākrit. Both these appear to be cases of scribal error, unless of course we assume that the author himself has resorted to this peculiar procedure purposely. The Sāhityadarpaṇa VI. 165 allows Bāla, Ṣaṇḍaka etc. to use Śaurasenī and occasionally Sanskrit too[1] At VI. 162 the Sāhityadarpaṇa says that certain characters like Yosit, Sakhī, Bāla, Veśyā, Kitava and Apsaras may occasionally speak Sanskrit for the sake of displaying their culture and refinement (*Vaidagdhya*).

II) *Lexical Peculiarities*: The plays of Hastimalla reveal a number of rare and obscure words—Sanskrit and Prākrit. Some of these words might be appearing obscure on account of the unsatisfactory condition of the MSS. consulted for AP and S, and on account of the unsatisfactory nature of the text as printed in the editions of MK and VK. Some of these words are enlisted below.

AP I. p. 4: आरातीय (adj. near, immediate); संस्त्याय (residence, abode) (cf. VK I. 8); आ·मनीया (?); p. 6: वेतण्ड (elephant); p. 7: नाटकसूत्रधारिणी (?); II. p. 29: प्रचलायित (nodding the head while sleeping in a sitting posture); IV. p. 56 पूल (a bundle, pack); V. p. 67: कद्य (?); p. 68: संशब्द (conversation, talk); सल्लाप (=संलाप) (cf. S. I p. 3; MK III st. 13); p. 75: वाडवीहि (=वाटवीथि); p. 77: विजाता (=प्रसूता); p. 78: वेणुतण्डुल (grain of starchy matter found inside the joint of a bamboo; bamboo-seed); p. 82-83: पाकसत्त्व (?)

1 बालानां षण्डकानां च सैव (i. e. शौरसेनी) स्यात् संस्कृतं क्वचित् ।

VI. p. 90: मालुधानी (=लताविशेष); p. 98: चचरीकभूय (=चंचरीकभाव cf. Pāṇini III. 1. 107, cf. ब्रह्मभूय VK V. 12); VII p. 107: दव्व (=दैव); p. 109: आउअ (=आवुक Father, Daddy, Papa); p. 109: अपदान (adventure, calamity; valorous, heroic deed); p. 113: अन्यथाकारम् (=अन्यथा) (Pāṇini III. 4. 27); प्रतिवास (=region, jurisdiction).

S I.: आर्हन्ती (Arhathood): p. 3: गंगासागर (place where the Gaṅgā flows into the ocean); उपश्रुति (supernatural voice heard at night and personified as a nocturnal deity revealing the future); p. 20: धूमाविदं (=संतापितम्); II. p. 22: देवसिअ (? chāyā: दैवसिक); p. 29: अक्षमा (unable, unfit; impatient; infirm and weak); p. 42: अजाकृपाणीयम्; III. p. 50: चंपण (=मरण chāya); p. 52: वाचोयुक्ति (arrangement of words); p. 62: वाच्चिक (message, oral communication): p. 67: गलहस्तन (seizing by the neck and turning out, collaring a person; cf. अर्धचन्द्रदान); आमन्त्रणशाला (भोजनगृह, dining hall where mendicants are invited for dinner); p. 71: भोगावली (the panegyric of a professional bard), IV. p. 76: आकल्यकम (?); आम्रेडितम् (cf. MK I, p. 10 and VK II. p. 43); p. 79: मूलदासः (humble servant; पादमूलदासः ?); p. 81: नाभिगृहम् (=मातृगृह or पितृगृह; नाभि = near relation, near relationship); p. 33 आक्षपटलिक (government officer; अक्षपटल–court of law); p. 85 अतिचारं पर्यालोचय् (to make a confession of one's sin); p. 86: पर्युपास (=पर्युपासनम्).

MK I. 5: रुणा (? =आच्छादिनाः chāyā); p. 4: औपयिकम् (means, remedy) (cf. II. p. 28); St. 8: यदिष्टया (? =यदृच्छया ?); St. 9: पार्श्वग्राही=पार्श्ववर्ती or पार्श्वौ गृहीत्वा हसनशीलः ?); p. 6: मेघोत्कण्ठा; p. 8: पिष्टातक (scented powder); p. 8: वाटकः (locality, enclosure); St. 16: आहार्य (costume, attire; cf. III. St. 1.); p. 12 प्रासादिकी ध्रुवा. Act II p. 27: किंकर्तव्यतादूष्यः (?); p. 28, St. 22: विवेष्टन (?); p. 29, St. 25: चुड्डक; p. 38, St. 35: करीषंकष; Act III p. 47 कट्टरा (?); St. 16: सशनकैः (=शनैः); p. 48, St 18: सासहीओ (?); p. 52: विध्यापय् (to extinguish); p. 54, St. 31

चोल्कुरू (?); p. 55, St. 32 शीतलिका (= जलार्द्रा ? A fan saturated with water); p. 56, St. 36: अघनिःश्वासः (?); p. 59: निर्जंहिमतया, जगज्जड; p. 61: खण्डाशनिः; p. 64: पाहुडिअ (? Chāyā: प्राघूर्णिक); p. 65: गन्धनीहार; p. 75: पुष्पगन्धिका; p. 76: दुर्जातम् (false, untrue); p. 85, St. 16: विशिखा (a highway).

VK I p. 2: तंतन्यमान; p. 3: असेचन (क) (charming, lovely); मोचाफल (banana); p. 5: सारणी (canal, rivulet); St. 9: शीताप (adj. to कूपक); उपशल्यभूमि; शीतपाय्यसिलता; p. 6: उल्लाघ (आरोग्यवत्–recovered from illness, convalescent); वृत्तान्त-स्थानक; स्वैरचारिपरिपंथिपंथाः; p. 7: वाहपितृभिः; St. 13: कर्करा; p. 8: दूष्यपटकायमान (दूष्य– cotton, tent; cf. p. 9 दूष्यकुटी); p. 10: निष्कुट (= गृहाराम); शिखाविशिखा (= रथ्याप्रतोली); p. 11: मणिकर्णिका (= कर्णाभरणविशेष); p. 12: उन्मिषितोन्मादनम्; Act II. p. 21: सौवस्तिके; p. 21, St. 1: हिक्क; p. 23 तल्लज; मल्लिकाक्ष (पक्षिविशेष); रिंछोलि; गोसर्ग (= प्रभात day-break); p. 24 St. 8: मज्झमालं (= मध्यमालम्); मज्झआर (= मध्य); आरेवनविटप; p. 28: पुटकिनी (a group of lotuses); p. 29 St. 15: कारहाट; p. 29 St. 16: उच्छिलिंग (= दाडिम); p. 30 मानोज्ञकम् (= मनोज्ञत्वम्); पाठीन (मत्स्यविशेष); p. 31: खंजरीट (हंसविशेष); p. 32: दोघंट (= द्विघंट = गज; cf. दोघट्ट in Prākrit); तालूरा (chāyā पुष्पसत्त्वाः); जंबाल (mud, moss); कडुंगअ (= कुंज); p. 33: पारिभद्र (द्रुमविशेष); p. 35 वाहुदिदुब्बंदीकद (chāyā व्याहृतिदुर्बन्दीकृत); तुलग्गामेत्त (chāyā यदृच्छामात्र); कमरिका; p. 44 St. 34: पारिहार्य (कंकण); St. 35: सहसान (peacock); मन्दसान (? fire); St. 36: तलिम (paved ground, pavement); Act III p. 46: वाह्यालि (running track for horses); षिड्ग (a gallant, libertine); वामलूर (an anthill); पारिपंथिक (परिपंथिन्–a robber, waylayer); p. 47: पारी; वीटी (a roll of betel leaves); टेंटा; निःशल्य; p. 48: सैाखशायिकः (= सौखशायनिकः = सुखशयनं पृच्छति यः); p. 49: चचा (a doll made of straw); St. 13 शिराल (sinewy); प्रचलाकिका (a female snake or peacock); p. 50, St. 16: वैकुन; p. 50: झर्झरा (a whore); वृषस्या (a lustful, lascivious woman); व्याजीकरणं (the offering of an excuse); अर्धचन्द्रक (holding by the neck and turning out) (cf. गलहस्तन S. p. 67); गाणिक्य (the class or society of harlots); p. 51:

मत्तकाशिनी (a handsome, lovely woman); St. 17: चण्डातक (a short petticoat); सौवस्तिक; p. 52: अज्जुका (आर्या); p. 53: आजानेय (a well-bred horse); p. 53 वानायुकप्रवेक (= वानायुकश्रेष्ठ; वानायुक = a horse from the Vanāyu country situated to the north-west of India); p. 54: वेसर (a mule); विक्र (an elephant); आन्दोलिका (a palanquin); p. 57, St. 33: कर्बुरम्; p. 60: प्रभाल (= प्रभावत्); औत्तरार्ध (ruling over the northern half of Vijayārdha); p. 65, St. 62: कटकामुख, सूचीमुख and अर्धवीटी; p. 70, St. 67: शकुन्यपुहिन; Act IV. p. 74: निस्त्रिंश (pitiless, cruel); St. 8: अप्रतिचक्र (matchless, cf. अप्रतिरथ); p. 76, St. 10: कुसृति (fraud, deceit), p. 78 अनादीनव (= निर्दोष); p. 79, St. 19: संकेतकूटनिष्क; p. 80 अटीकुर्वन्ना; p. 81: जंघाल (swift, rapid); p. 82: प्रयोग्य; p. 83 St. 29: ग्रहिल (unyielding, relentless, obstinate); p. 84: सुवासिनी (a daughter), p. 85, St. 34: गृह्य (= पक्षपाती, a partisan, sympathiser); p. 86, St. 35. पीठीकोण (= पादपीठप्रान्त-corners of a foot-stool); कक्ष, पक्ष, उरस्य (military terms); p. 88, St. 42: अभिमार (attack, on-slaught); समभिहार; p. 88: संफेट (angry, tumultous conflict); p. 89, St. 45: आगवेरक (adjective to गज); p. 89: चप्प (chāyā विशाल); p. 89, St. 46: क्षिपणि (a net or sling), St. 47: कालगोन्द्र (an elephant); p. 90; खडक्कार (chāyā कटात्कार-clanging, metallic sound); p. 91: लोलावेदि (chāyā लोलापयति) (cf. Marāthi लोळविणें to dash on to the ground); p. 92; St. 55: प्रभिन्न (an elephant in rut); p. 92: वैवधिक (one who carries loads on a pole): p. 97: वइरिद (chāyā: अवतीर्ण); p. 99, St. 70: सार्ज रजस्; p. 99 St. 71: पाकल, सकल and दवथु; p. 106 St. 93: प्रेक्षयणी; p. 106: वाकोवाक्य; p. 109 St. 99: गर्ध (eager desire, craving); p. 112, St. 1: उद्यद्गुद्रथते; p. 113, St. 4: अणच्छसरमा (chāyā अनच्छसरसा); p. 114: उन्मलणम; p. 119 St. 16: वाप्यस्तालस्या:; p. 120: आद्यकक्षन्ता; p. 125: परोहिडमग्गेण (chāyā पश्चान्मार्गेण); p. 129 St. 38: तत्रस्त; p. 129: चेंचुआ (chāyā अभिमारिका); p. 129 St. 42: तुंगवेडालआणं (chāyā: तुंगव्रीडालयानाम); p. 130 St. 43: चंदोवअ (chāyā चंदोपक); p. 131 St. 47: गवल (a wild buffalo); कलाल; p. 133 St. 56: निष्टाप (fierce heat) p. 142 St.

76 : कापिशायन; p. 144 St. 78: सौहित्य (satiety, satisfaction); p. 145 St. 82: अवतनु (reduced, emaciated body); Act VI. 147 St. 4: बिब्बोक:; p. 149 St. 10: लंबूष (necklace, festoon); p. 149. St. 11: केसराक्लिष्टदष्ट: ; p. 150 St. 15: विवर्तपाठीन; p. 153 St. 25: त्रपाते; p. 157 St. 28: शादक; p. 159: अपत्रपाये; p. 160. स्यात्मनिष्ठे:.

III) *Ideological peculiarities:* The Nāndī stanzas of all the four dramas glorify either one of the Jain Tīrthaṅkaras (AP: Munisuvrata, the twentieth Tīrthankara; S and VK: Vṛsabha, the first Tīrthaṅkara) or some great hero in Jain mythology [MK: Rāmabhadra, the 8th Baladeva, and a contemporary of Munisuvrata, described in MK (p. 94) as चरमदेहधारी पुरुषोत्तम: and (p. 88) as मानुषरूपमात्रधारी देव: and further (MK V. 44) as Brahma.] Hanūmat was a contemporary of Muni-suvrata and hence the latter appears to have been glorified in the Nāndī of Añjanāpavanaṃjaya, which deals with the story of the birth of Hanūmat. King Bharata and King Kauraveśvara were contemporaries of the first Tīrthaṅkara Vṛsabha and hence this latter seems to have been eulogised in the Nāndīs of Subhadrā and Vikrāntakaurava. As Rāma was according to Jain mythology a very great personality, it is but proper that he is invoked at the commencement of the drama dealing with the story of his marriage with Sītā.

As Hastimalla was a Jain, it is natural for him to make frequent allusions to ideas peculiar to Jain mythology, theology and philosophy. A number of such allusions ore given below :-

AP IV. 8 जैनेश्वर साधन; VI. 7 नैर्ग्रन्थ मुनिपुंगव; VII. 16 जैन मार्ग; S IV. 37 जैन शासन; VK III. 59 कर्मास्रव and निर्जरण; VK III. 74 मेघवक्त्रामरह; AP V pp. 70-71 Vijayārdha Parvata (which forms the scene of many an incident in Jain mythology); AP V p. 75 Nabhigiri; MK IV pp. 60-61 and

VK II. 7 Niṣadha mountain; S I. 4 and IV. 7 Himālaya as the first of the Kulaparvatas and as the source of the celestial river; the Rajatācala (i. e. Vijayārdha) as the residence of the Vidyādharas. S. I p. 4 *Tamisraguhā burst open with a blow of the daṇḍaratna* belonging to Bharata; the Unmagnajalā and Nimagnajalā rivers and the peculiar behaviour of their waters; S. I. p. 6 मन्दाकिनीविजयार्धसंगम; काण्डप्रपातगुहा described as गंगाप्रवेशद्वारभूता; S. I. 30 (also IV. 4) and VK III. 58 the six continents of the earth; MK V. 9 the two Puspadantas and Indra and Pratīndra; S. II. 21 Strīratna as an item of the paraphernalia of the Cakravartin (cf. III. p. 72, IV p. 78); S IV. 3, VK. 54 Jain Scriptures referred to as Śruti; S IV. 3, VK III. 54 Bharata as *Antyamanu, Caramadehadhara* (Rāma in MK V. p. 74 and Hanūmat in AP VII. p. 46 also are called *Caramadehadhara*), वर्णाश्रमस्थितिपु प्रथमोपदेष्टा and वर्णाश्रमस्थितिगुरु (the first organiser, regulator and law-giver of the Varnas and Āśramas in human society) and as the supreme conquerer of the world, VK VI. 54, Bharata as मनुः प्राजापत्यः (i. e. son of प्रजापति i. e. Lord Vṛsabha), S IV. 5 and VK III. 54, the victorious *cakra* of Bharata, S IV. 27 (=VK III 54) Bharata's great feat of archery on the occasion of his *Digvijayayātrā*; VK III. 52 submission of the Vijayārdha mountain before Bharata and presentation of the royal parasol and throne; S IV. 3 Vṛsabha, the first Tīrthankara as पुराणपुरुष and चराचरगुरु; VK III. 55 Vṛṣabha as पितामह of the world and as प्रजापति (VK VII. 54).

VK III p. 58, King Akampana, father of Sulocanā, (the heroine) is credited with having first started the practice of holding a Svayaṃvara in the case of a marriageable

princess.[1] The practice of holding a Svayaṃvara is described as सर्वस्याभिमतः (VK IV. 1). VK III. 30 reference to Sthāṇu as residing on the top of mount Kailāsa and presiding over the divine assembly and delivering the Śrutis; VK IV p. 96, reference to *Ugrakula*; VK VI. 9, reference to *Pañcopacāra* in the worship of Parameśvara; VK VI. 33, reference to षष्ठोपासकस्थान; VK VI 33, reference to आद्यतत्त्व and अन्त्यतत्त्व; VK VI. 50, the three fires at the marriage ceremoney described as रत्नत्रयात्मानः; VK. VI. 51, reference to उत्पाद, व्यय and ध्रौव्य, the three characteristics of an existential entity (*dravya*) according to Jainism; VK VI 53, reference to चतुर्न्याय; VK VI. 58, the रत्नत्रयी described as मायातिलंघिनी and संवित्प्रकाशकौटस्थ्यमयी.

There are a few references of general interest too. VK II. p. 29 reference to South Indian ornaments (द्रविडविलासिनीताटङ्क); VK Act I p. 2 the Sūtradhāra speaks of his mastery over the *Nāṭyas'āstra* and refers to one उपाध्याय भरताचार्यपुत्र who is constantly finding faults with him and criticising him at the instigation of certain vile, wretched naṭas (actors). Who this उपाध्यायभरताचार्यपुत्र *is* is *not* known. He must have been some contemporary of Hastimalla who was rather jealous of the latter's greatness as a dramatist. The reference seems to be autobiographical.—MK. I. p. 8, VK III. p. 41 ff. description of the Veśavāṭa (Prostitutes' Quarter); VK III p. 66 (last line) reference to the तरलकोमल काव्यबंध in Śauraseni; MK 1 p. 12 reference to Kāmbhojī Bhāṣā.

The following Brahmanical ideas occur in the four plays of Hastimalla. They show clearly how Hastimalla, though a Jaina by faith could not escape the influence of Brahmanical ideas.

---

1 अहो महाराजस्य सर्वातिशायिनी प्रज्ञा, यदुपज्ञमियं प्रज्ञावतामगर्हणीया स्वयंवरयात्रा। VK III. p. 58.

1) References to S'ruti: (a) VK V. 62 refers to Taittirīya Upaniṣad II. 1,[1] and actually quotes from the same Upaniṣad; (b) VK VI. 39 refers to Śatapatha Brāhmaṇa, XIV. 9. 4 and quotes from the same.[2] 2) References to various details of the sacrificial system: (a) VK VI. 36, oblations of ghee at the time of marriage (हैयंगवीनाहुति); (b) VK VI 40, *darbha* grass, *havya* (oblations), *Vedī* (altar), the three sacred fires (*analatraya*), the Sūtra-works (very probably the Kalpasūtras describing the details of the ritual). 3) Reference to learned Brahmins well-versed in the three Vedas[3] as officiating at the time of the marriage of Sulocanā with Kauraveśvara, (VK VI 40). 4) Reference to the power of the river Ganges to purify and save sinners (S I. 13).[4] 5) Reference to the birth of Brahmā from the navel of Svayambhu (VK V. 51).[5] 6) Reference to Bhūtanātha, Supreme God, as *Vis'vātmā* i. e. identical with the whole universe and yet transcending the same (*atītavis'va*) (VK VI. 52). 7) Reference to Rāma as *Brahma* (MK V. 44).

IV) *Influence of earlier Sanskrit writers on Hastimalla:* Kālidāsa, Bāṇa, Bhavabhūti, Māgha, Nārāyaṇa, Viśākhadatta and Śrīharṣa are some of the earlier Sanskrit writers who have exercised a considerable influence

---

1 केवलं लोकविख्यातां वायोरग्निरिति श्रुतिम् । Cf. तैत्तिरीय उपनिषद् II. 1: तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । etc.

2 आत्मा वै पुत्रनामेत्यनुभवपदवीमश्नुतेऽसौ श्रुतिर्नः । Cf. शतपथब्राह्मण XIV. 9. 4. आत्मा वै पुत्रनामासि ।

3 त्रयीविशुद्धाः प्रथमे द्विजन्मनाम् ।

4 या पुण्यतोयेति जनस्य मान्या स्वयं पतन्ती पतितं पुनाति ।

5 यस्य स्वयंभुवो नाभेर्ब्रह्मणो विदुरुद्भवम् ।

on Hastimalla. I give below a list of passages in Hastimalla's *plays* wherein it is quite obvious that he has imitated these earlier writers.

i) KĀLIDĀSA: 1) AP I p. 6: विदूषकः—किं राअहंसं ओहिरिअ बओडअं अणुसरइ वरडा। (किं राजहंसमवधीर्य बकोटकमनुसरति वरटा।) Cf. Śākuntala III: अनसूया—सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। 2) AP I. 19 अद्यापि गृह्णति करं etc. reminiscent of Śāk. II 12 दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षतः etc. 3) AP III pp. 37–38: Vidūṣaka's speech describing his troubles and sufferings while accompanying Pavanaṃjaya on the battle-field is reminiscent of the speech of Vidūṣaka in Śāk. II where he narrates his trials and tribulations while accompanying Duṣyanta on the hunt. 4) AP V p. 69: The scene between Pavanaṃjaya and the Sūta (charioteer) closely resembles similar scenes in Śāk. I and VII and Vikramorvaśīya I. 5) Ap V p. 76: Reading in B, D: विदूषकः—वअस्स सणेहो खु पावं संकइ, reminiscent of Śāk. IV: अतिस्नेहः खलु पापशङ्की 6) The whole of the 6th Act of AP, where Pavanaṃjaya is introduced as searching for his lost wife in the forest, is modelled after Vikramorvaśīya IV. 7) AP VII p. 114: प्रतिसूर्यः—अहं हि ते महाराजमहेन्द्रनिर्विशेषः। तत् स्वामिमां भूमिमनुप्रविष्टासि। Cf. Raghuvaṃśa XIV. 72. 8) AP VII p. 115: पवनंजयः—अनुभूतं हि शोकं द्विगुणयति बन्धुजनसांनिध्यम्। Cf. Kumārasambhava IV 26: स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते। 9) S I p. 3: The glutton-like remarks of the Vidūṣaka and the king's rebuff (आस्तामौदारिकसंलापः।), remind us of Vikramorvaśīya III: (सर्वत्रौदरिकस्याभ्यवहार्यमेव विषयः।). 10) S I p. 15: राजा - सुन्दरि, साप्तपदीनं सख्यं नाम। Cf. Kumārasambhava V 39 यतः सतां संनतगात्रि संगतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते। 11) S II 5 परिवर्तितत्रिका असंजयद् सुस्थितमेव नूपुरम्। Cf. Śāk. II 12 आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्। 12) S. II 13: Cf. Vikramorvaśīya II 10. 13) S II p. 45: राजा—दुर्विनोददुरतिवाहा विभावरी। Cf. Vikramorv. III 4 राजा—अविनोददीर्घयामा कथं नु रात्रिर्गमयितव्या. 14) S III p. 48: कथं च दृष्टिभावः। Cf.

Śāk. II विदूषकः—अथ भवान्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः।. 15) S III p. 58: राजा—स्थाने हि सख्यः कामिनीनां शरणम्। Cf. Mālavikāgnimitra III 14 स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः।. 16) S IV p. 90: देवी—आर्यपुत्र,···यथा नैषा नाभिगृहं स्मृत्वा खिद्यति तथैतामप्रमत्तः संभावय। Cf. Śāk. III अनसूया—वयस्य···यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय।. 17) MK III 40: Sītā's message to Rāma दंसणमेत्तंकुरिओ etc. Cf. Mālavikāgnim. IV 1. 18) MK III 45: द्विरेफमिथुनं द्रुतं etc. Cf. Mālavikāgnim. II 12 and Vikramorv. II. 23. 19) MK V 12: रामः—अनर्घ्यैरूपामपि etc. Cf. Śāk. I 18: इदं किलाव्याजमनोहरं etc. 20) VK I 22: इयं चेत् सृष्टा स्यात् etc. Cf. Vikramorv. I 8: अस्याः सर्गविधौ etc. 21) VK I 24: शीतांशोरविनिःसृता etc. Cf. Kumāras. I. 31: असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टेः etc. 22) VK III The entire description of the various kings assembled for the Svayaṃvara is in imitation of the pattern set up by Kālidāsa in Raghuvaṃśa VI. VK III 43: Cf. Raghu. VI 35; VK III 47: Cf. Raghu VI 35; VK III 48: Cf. Raghu. VI 13; VK III 50: Cf. Raghu. VI 57; VK III 51: Cf. Raghu. VI 18; VK III p. 60 (प्रतीहारः—भवतु, अपर्यनुयोज्याश्चित्तवृत्तयः।): Cf. Raghu. VI 30 (भिन्नरुचिर्हि लोकः।); VK III 65 (reference to सिप्रावात): Cf. Raghu. VI 35; VK III 69 (reference to वृंदावन garden): Cf. Raghu. VI 50; VK III 73: Cf. Raghu. VI 79. VK III p. 69: नवमालिका—प्रियसखि, किम् अन्यतो गमिष्यामः। (सुलोचना साभ्यसूयवैलक्ष्यं मुखं नमयति।): Cf. Raghu. VI 82 आर्ये, व्रजामोऽन्यत इत्यथैनां वधूरसूयाकुटिलं ददर्श।. 23) VK. III 75 challenge given by the disappointed kings to Jayakumāra, is reminiscent of the situation in Raghuvaṃśa VII. 24) VK IV: Description of the battle on account of Sulocanā is reminiscent of Raghuvaṃśa VII. 25) VK VI 29: स्यातुं न पारयति न त्वरयाभियातुम्। Cf. Kumārasambhava V 85: शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।. 26) VK VI 52: Cf. Śāk I 1.

ii) BĀṆA: AP I p. 15: speech of Miśrakeśī; II p. 26: description of the Pramadavana; III p. 39: description

of moon-rise; V p. 66: description of Kālamegha (the elephant); VII p. 110: speech of Pratisūrya; all these passages are in imitation of Bāṇa's prose-style. So also MK III p. 44: description of Sītā's desperate condition by the Saṇḍha; VK I p.13, lines 1 and 2; VK VI p. 156: description of the Ratnamaṇḍapa erected for the marriage ceremony of Sulocanā are reminiscent of Bāṇa's style.

iii) BHAVABHŪTI: VK I 20, 21, 28, 33 etc. describing Kauraveśvara's condition on seeing Sulocanā for the first time, are reminiscent of Mālatīmādhava I.

iv) MĀGHA: 1) AP I p. 5 Vidūṣaka's speech (line 8 from bottom): प्रतिनवविकसितकुसुमासवलोभपरिभ्रमदिंदिदिर etc. Cf Śiśupālavadha VI 14: वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमर etc. 2) VK II 1: description of early morning is reminiscent of Śiśupālavadha XI. 3) VK IV p. 78: तदिदमिदानीमनादीनवमावेदितं महाराजेन। Cf. Śiśupālavadha II 22: यद्वासुदेवेनादीनमनादीनवमीरितम्. 4) VK IV 50 प्रभूतं क्रीणन्तु प्रधनविपणौ विक्रमपणैः यशः। Cf. Śiśupālavadha XVIII 15 केचिद्वीरमेत्य संयद्विपण्यां क्रीणन्ति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि।

v) BHAṬṬANĀRĀYAṆA: AP III 14 is reminiscent of the style and thought of Veṇīsaṃhāra.

vi) VIŚĀKHADATTA: 1) S IV 2: सदा सेव्याद्भीतिः etc. Cf. Mudrārāksasa III 14 (भेतव्यं नृपतेः etc.) and V 12 (भयं तावत्सेव्यात् etc.). 2) MK V p 81: the Kañcuki's soliloquy regarding the infirmities and disabilities brought on by old age is reminiscent of Mudrārākṣasa III 1.

vii) ŚRĪHARṢA: VK I 6: Cf. Ratnāvalī I 5.

The examples given above are quite enough to show how closely Hastimalla has studied earlier Sanskrit writers. He seems to have been particularly a great admirer of Kālidāsa, whom he has every now and then tried to follow.

HASTIMALLA: A POET AND DRAMATIST.

To any careful reader of these four plays it must become evident that Hastimalla is really a master of Sanskrit prose and verse. He writes his prose dialogues and verses in a facile and graceful manner. In the prose passages of the dramas he sometimes indulges in lengthy descriptions abounding in poetic fancies and other figures of speech and involved constructions and long compounds, imitating the style of Bāṇa in all its good and bad qualities —its occasional simplicity and directness and its frequent gorgeousness and florridity. Dozens of passages could be easily picked from these four dramas wherein Hastimalla seems to be making an effort to emulate Bāṇa. His indebtedness to earlier writers like Kālidāsa and others has been already dwelt upon in an earlier section of this Introduction (p. 49ff.). He also now and then displays his fondness of alliteration both in the prose and metrical passages of his dramas. We also occasionally come across the use of paranomasia (*s'leṣa*).

We come across several highly lyrical passages in these dramas. Act III of AP dealing with the sufferings of Pavanaṃjaya due to his separation from Añjanā, under the exciting influence of the moonlight and the soft southern breeze; Act VI of AP containing the ravings and emotional effusions of Pavanaṃjaya, almost gone mad and roving here and there in search of Añjanā; Act II (pp. 24–29) and Act III (pp. 54–57) of Subhadrā describing the love-lorn condition of Bharata; Act III of MK containing a vivid description of the sufferings of Sītā due to her unfulfilled love for Rāma, the employment of various cooling remedies by her friends to mitigate her sufferings and the aggravation of her condition with every application of the remedies; Act IV of MK giving a description of the torments

of love-sick persons in separation and their sufferings under the exciting influence of the moonlight; Act V of VK depicting the mounting eagerness of King Kauraveśvara to meet Sulocanā—the King, the Vidūṣaka, Nandyāvarta and the garden-keeper Gandhamālinī making their own contributions to this symposium on the exciting influence of the moon and that of the vernal breezes blowing northwards from the South—all these are really intensely lyrical passages possessing a good deal of poetic charm and revealing the author's insight into the working of the human mind under the influence of the passion of love.

The epigrams occurring in the four plays of Hastimalla which have been collected and presented below, in an independent section, show clearly how Hastimalla is a master of happy phrases and pithy and terse expeessions full of sound sense. Though sometimes his dramas abound in long narrative and descriptive passages, rather out of place in a drama, he shows himself on the whole to be a master of effective and entertaining dialogue.

The plots of all these plays are based on incidents occurring in Jaina Purāṇas and the author has faithfully followed them except for some changes here and there, as shown in an earlier section of this Introduction. The plays do not contain any really gripping dramatic situations worth mentioning, nor do we come across situations wherein we can see the characters growing and developing as they pass through those situations. The characters are thus for the most part static and not dynamic so far as their growth and development within the limits of the darmas are concerned.

The chief merits of Hastimalla are therefore: 1) his beautiful versification; 2) the simplicity, directness and

facile grace of his style; 3) his descriptive art; 4) his epigrammatic wisdom; 5) and his *pechant* for composing lyrical scenes.

SUBHĀṢITAS IN HASTIMALLA'S PLAYS

The four plays of Hastimalla contain a pretty large number of Subhāṣitas. Fearing that they would not receive the attention which they deserve from the reader, they have been collected below from the different plays. Sanskrit literature is already rich in epigrams, and Hastimalla's contribution is quite worthy of that great heritage. Some of them exhibit his mature observation and moral values, while others bring out his literary merits. Hastimalla is a master of expression, and more so in his epigrams, which very often though short are full of sound sense.

AÑJANĀPAVANAṂJAYA

I. p. 2: यत्सत्यं नाटकान्ताः कवयः । (Cf. गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति ।)

I. St. 2: समीचीना वाचः सरलसरला कापि रचना, परा वाचोयुक्तिः कविपरिषदाराधनपरा । अनालीढो गाढः परमनतिगूढोऽपि च रसः, कवीनां सामग्री झटिति चलितं कं न कुरुते ॥

I. p. 6: किं राजहंसमवधीर्य बकोटकमनुसरति वरटा ।

I. p. 8: चन्द्र एव खलु चन्द्रिकायाः संभाव्यते ।

I. p. 9: दुरवगाहा हि भागधेयानां परिपाकाः ।

I. p. 11: यथा स्थिता कथा तथैव खलु कथयितव्यम् ।

I. p. 13: स्थाने खलु स्त्रियं हि नाम लज्जा भूषयति ।

I. p. 17: किं नाम दुरवगाहं हृदयनिर्विशेषस्य सखीजनस्य ।

II. p. 21: न खलु कदाचिद्राजसिंहः करिकलभैरभियुक्तो भवेत् ।

II. p. 24: नववधूसमागमोत्सवो नाम कामिजनमनःसमावर्जनैकरसो मदनस्य रसान्तराभिनिवेशः ।

II. p. 24: स्वभावतो हि नवसमागमः स्वयमेव कामिनीनामनावेद्यानुद्भावयति भावान् ।

II. p. 25: न चाल्पीयानपि कालः प्रियाविरहेणातिवाहयितुं पार्यते ।

II. p. 27: इह खलु कामिनां हृदयेषु क्रमादुत्कण्ठासहस्रबद्धामजस्रं सोपान-परिपाटीमधिरोहति मदनः ।

II. p. 27 St. 10: भवति ललनां चेतः श्रुत्वा विलोकनसत्वरं, तदनु भजते दृष्ट्वा चिन्तां समागमशंसिनीम् । पुनरविरहोपायं वाञ्छत्यवाप्य समागमं, प्रतिपदमसौ कामोन्मादः क्रमेण विवर्धते ॥

II. p. 33 St. 17: वदन्ति राज्ञाममात्यनिष्ठां वृत्तिम् ।

II. p. 35 St. 19: निर्भिन्नद्विरदेन्द्रमस्तकतटीनिर्मुक्तमुक्ताफलश्रेणीदन्तुरदन्तकुन्तविवरो यो राजकण्ठीरवः । सोऽयं मानमहान् स्वयं मृगशिशुव्यापादनव्यापृतः, किं कीर्त्यन्तरमात्मनो जनयति प्रख्यातशौर्योचितम् ॥

II. p. 35 St. 20: पुत्रेष्वनिर्वापितविक्रमेषु विद्याविनीतेषु भवादृशेषु । यथावदारोपितकार्यभाराः स्वैरं नरेन्द्राः सुखिनो भवन्ति ।

III. p. 38: सर्वथोद्वेजनीयं खलु राजपुत्रमित्रत्वं नाम ।

IV. p. 54: तथापि किं चन्द्रलेखापि गरलमुद्गिरति, चन्दनलता वाऽग्निम् ।

IV. p. 56, St. 1: निरवद्यं चारित्रं ज्ञात्वापि निजाभिजात्यपरवत्यः । बिभ्यति खलु कुलवनिताः परिवादलवादपि प्रायः ॥

IV. p.56, St. 3: परिणतिरपि जाता कुत्रचिद्गर्हणीया ।

IV. p. 58: कष्टमुद्वेजनीया खलु परपिण्डगृध्नुता ।

IV. p. 64: यद्वा तद्वा भवतु । अनुलंघनीयाः खलु स्वामिनीसंदेशाः ।

IV. p. 64, St. 17: इदं तावच्चिन्त्यं सपदि सुकृतादप्यसुकृतं, परं प्रेयः प्रायो भवति निखिलस्यापि जगतः ।

V. p. 76 (footnote): सणेहो खु पावं संकइ । (स्नेहः खलु पापं शङ्कते ।)

p. 77 St. 19: आभिजात्यपरिपालने रताः सर्वतोऽपि परिवादभीरवः । संगृहीतपतिदेवताव्रताः श्लाघनीयचरिताः कुलाङ्गनाः ॥

V. p. 79 St. 23: अननुभूतवियोगकथामपि प्रियतमां प्रणयादुपलालयन् । भवति यः परिपूर्णमनोरथो युवजनः सुकृती स हि कामिनाम् ।

V. p. 86: स्वच्छन्दचारिणः खलु प्रभवो भवन्ति ।

VI. p. 88 St. 2: उद्दामपञ्चबाणे पयोदकाले सुदुस्सहे के वा । धीरा विहाय जायासमागमं केवलं च जीवन्ति ॥

VI. p. 84, St. 4: अनुभाव्य एव बाढं जन्मान्तर एव कर्मपरिपाकः ।

VI. p. 93, St. 23: निरतरं विधिना प्रतिबन्धिना विघटितानि मिथो मिथुनान्यपि । घटयितुं प्रभवत्यचिरादिव स्वयमसौ भगवान् रतिवल्लभः ॥

VII. p. 107: न खलु दुष्करं नाम दैवस्य ।

VII. p. 109: सत्यं खलु तद्, जीवन् भद्रं प्राप्नोतीति ।

VII. p. 112: दिव्यचक्षुषो हि महर्षयः ।

VII. p. 115: अनुभूतं हि शोकं द्विगुणयति बन्धुजनसांनिध्यम् ।

SUBHADRĀ NĀṬIKĀ

I p. 2: नानादेशपरिभ्रमो नामैकं सौख्यं पुरुषस्य।

I. p. 15: साप्तपदीनं नाम सख्यम्।

I. p. 20, St. 38: व्यलीकसंकल्पनिरुत्सुके जने करोति शङ्का मनसः परां रुजम्।

II. p. 23: सर्वथा असंतुष्टाः खलु राजानः।

II. p. 24, St. 3: अपि गाढमनोरथाकुलो विषमोऽक्रम एष मन्मथः।

II. p. 26: न खलु साध्यसिद्धये भूयोऽप्यापृतिमाकाङ्क्षति साधनस्य प्रकृष्टगुणता।

II. p. 26, St. 9: एकत्र वस्तुन्यसकृत्प्रहरानपेक्षते जातु न वज्रधारा।

II. p. 28, St. 13: अध्याते चालेख्ये दुःशकमालेखनं नाम।

II. p. 32: समसुखदुःखे पुनः शरीरमात्रभिन्ने सखीजने भावनिगूहनं ददाति खेदं चित्तस्य वचनीयतां स्नेहस्य।

II. p. 36: ईदृशा महापुरुषा न कदापि दाक्षिण्यमुज्झन्ति।

II. p. 41: राजानुवर्तनं खल्वेतादृशानां (विदूषकसदृशानां वराकाणां) युक्तम्।

II. p. 42: तदेदजाकृपाणीयं नाम।

II. p. 43, St. 23: अन्यत्र दाक्षिण्यवतोऽपि पुंसः संसक्तमेकत्र समुत्सुकत्वम्। कामं हि सत्यप्सरसां सहस्रे विशिष्टमिन्द्रस्य शचीपतित्वम्॥

III. p. 51: प्रियभाषिण्यः खलु सख्यः।

III. p. 51: सर्वथा न विसंवदन्ति निमित्तानि।

III. p. 54, St 3: वामे विधौ भोः खलु को न वामः।

III. p. 56, St. 10: स्त्रियः प्रकृत्या ननु कोमलाः।

III. p. 58: स्थाने हि सख्यः कामिनीनां शरणम्।

III. p. 63: अथवा सर्वतो निपतन्ति पुरुषाणां वृष्टयः। विशेषतः पुना राज्ञाम्। तस्मात्तदेव स्त्रिया वल्लभत्वं याऽपराद्धे च प्रसादं दर्शयति।...अतिकोपनाया वल्लभा अपि उद्विजन्ते पुरुषाः।......कुपिताया वल्लभायाः स्वयमुप्यपसर्पणमेव प्रसादः।

III. p. 66, St. 21: अतिक्रमं प्रेयसि बद्धकोपा विधाय पूर्वं विहितव्यलीके। स्त्रियो हि किंचित्परिवृत्तकोपा भवन्ति जातानुशयाः क्रमेण॥

III. p. 67: एतत् खलु तद् आमन्त्रणलालसया विमुक्तभिक्षापरिभ्रमणस्य आमन्त्रणशालायां गलहस्तनम्।

III. p. 70: गतं गतम्। गन्तव्यमिदानीं चिन्त्यताम्।

III. p. 72: आकाश एवोत्पन्नं रत्नम्।

III. p. 72, St. 27: प्रत्यक्षमन्मथार्तिप्रकाशनादपि मृगीदृशः प्रायः। रमयत्यनङ्गलेखः समुत्सुकं कामिनश्चेतः।

IV p. 74: अथवा मनोरथैकविषय एव परपरिचरणपराधीनस्य मादृशो जनस्य नैराश्यसुखरसास्वादः। सर्वथा धिगेनामेनःप्रणालिकां सेवानियन्त्रणाम्।

IV. p. 74, St. 2: सदा सेव्याद्भीतिः परपरिभवास्वादलघुता, परिक्लेशो भूयान्धनलवकृतोन्मादजडता। अवृत्तिर्वृत्तेष्वप्यनवसरलाभाद्विमुखता, विहन्त्येवं सेवा तदियमिह चामुत्र च सुखम्॥

IV. p. 83: अथवा यत्नान्तरनिरपेक्षैव महाभागानां समीहितसिद्धिः।

IV. p. 83, St. 24: स्वैरं फलानि वितरत्प्रविहाय दैवं यत्नान्तरं किमिति तत्र गवेषणीयम्।

IV. p. 86: अथवा कुतो मितभाषिता लघुचेतसाम्।

MAITHILĪKALYĀṆAM

I. p 2: वशीकरोति खलु कविजनं सुभाषितम्।

I. p. 3, St. 4: दुरधिगमभावा हि कवयः।

I. p. 5, St. 9: श्रुतं यद्वा तद्वा नयति मदनोद्दीपनपदे, प्रकृत्या यच्छीतं गणयति च तत्तापजननम्। यदेवादौ वांछेत्तदनु तदपि द्वेष्टि सहसा कथं पार्श्वग्राहो न हसति जनः कामुकजनम्॥

I. p. 5, St. 10: संतापानां कान्ता निबन्धनं यैव दुर्निवाराणाम्। तामेव किलान्विच्छति तेषामिच्छन् प्रतीकारम्॥

I. p. 13, St. 26: या आरोहति दोलां कान्तेनापि वसन्ते। शीर्षे खलु युवतीनां सा यौवनवतीनाम्॥

II. p. 19, St. 4: विघटितफला नम्रारंभा भवन्ति मनस्विनाम्।

II. p. 20: औत्सुक्यं खलु जनस्य सर्वथा पौरोभाग्याय।

II. p. 22, St. 8a: न तथा दयिना समन्मथा न तथा पातितमर्धवीक्षितम्। मनसः परितोषणं यथा प्रियमित्रैः कथितं प्रियां प्रति॥

II. p. 22, 8b: अनवाप्तफलो यथा वयस्यः प्रियमित्रस्य कृते कृतप्रयत्नः। विवृणोति सुहृत्त्वमत्युदारं न तथाऽवाप्तफलो विना प्रयत्नात्॥

II. p. 25: अनात्मशत्वमप्युपालंभोपक्रममेव मन्मथव्यथायाः।

II. p. 27: यत्र खलु मनः प्रवर्तितम् अक्षमपि स्वयं गृह्णाति।

II. p. 29: एष खलु स शान्तिकर्मणि भूतोत्पातो येन शिशिरोपचार एव संतापोत्पत्तेर्हेतुः।

II. p. 29, St. 26: क्व विषयेषु विवेकसहं मनः स्मृतिविमोहजडाः क्व च कामिनः।

II. p. 30: कथमन्यथा चिन्तितमन्यथा परिणतम्।

II. p. 31: को वात्मनः सन्तापहेतुमभ्यर्थयति ।
II. p. 31: सौख्यहेतुरिति प्रार्थितः सन्तापहेतुर्जातः ।
III. p. 40: शोभनं खलु लौकिका भणन्ति नास्ति सर्व्ये वासरे प्रदीपस्यावसर इति ।
III. p. 41: कलभगमनं खलूत्तमानां पुरुषाणां गमनम् ।
III. p. 43: राजपरिवारे कुब्जा वामना षण्ढा मूका बर्बराः किरातास्तिष्ठन्ति ।
III. p. 45, St, 9: जत्थ हु पढमं दिण्णो अच्छीणं ऊसवो पिअजणेण । उक्कंठिअं जणं पुण सोवि पएसो विणोदेइ ॥
III. p. 46, St. 11: धुत्ता हु णाम—महिलं अपुव्वआमवि बिस्सद्धं विअ कुणंति चाडूहिं । तह तह वि णिवारिता कहवि ण मुंचंति पत्थेंता ॥
III. p. 49: कथं सूर्यं हस्तेनापवारयसि ।
III. p. 51, St. 22: स्वच्छान्तरात्मापि गुणैर्न मन्ये न स्याद्वशो दर्पकशासनस्य ।
III. p. 53: अहो संकल्पानां द्रढिमा ।
III. p. 53: उभयं खलु विरहवतीनां प्रियजनसमागमसौख्यं जनयति, संकल्पा निद्रा च ।
III. 56: सखीजनायत्तं खलु विरहिणीनां जीवितम् ।
III. 57: समसुखदुःखो हि सखीजनः ।
IV. p. 62: रहस्ये खलु तावदात्मापि शंकितव्यः ।
IV. p. 71, St. 2: हन्त शोचनीयाः खलु विरहिणः । ते हि । प्रसर्पन्तीं ज्योत्स्नां मदनविजयारंभरभसप्रमदोत्थां धूलिं किल वियति पश्यन्ति विधुराः । किमन्यन्मन्यन्ते मलयगिरिवातांश्च पवनान् सकोपं प्रोन्मुक्तान्यममहिषफूत्कारमरुतः ॥
IV. p. 76: संगीतकविदग्धा हि प्रायो राजकुलपरिचिताः स्त्रियः ।
IV. p. 78: असाधारणरमणीयं खलु नववधूविहनम् ।
IV. p, 79: अहो दुःसहता प्रियाविरहस्य ।
V. p. 81: अहो वार्द्धकं नाम गुणाय संपद्यते ।
V. p. 83: प्रिया हि नाम जनस्य संमोहिनी विद्या ।
V. p. 84, St. 13: अवलुप्तभुजङ्गलोकनाथप्रियकान्तास्तनपत्रभङ्गकान्तेः । गरुडस्य गरोद्गराद्गरीयान् वद वल्मीकभवः कियान् फणी स्यात् ।
V. p. 85, St. 15: के वा वारणकुम्भपीठदलने सिंहावृतेऽन्ये मृगाः ।
V. p. 90, St. 29: प्रकृत्या क इव हि विगुणः स्याद्गुणाधानमन्त्रः ।
V. p. 93, St. 41: कक्षात्कक्षं विविक्षुं शशशिशुमशनैरुत्प्लुतं विप्लुताक्षं किं दृष्ट्वा हन्त हन्तुं कलुषयति मुधा मानसं राजसिंहः । यस्य क्रोधान्धगन्धद्विरदनरदनद्वन्द्वकंदान्तरालस्थाली निर्मुक्तमुक्ताफलशकलशिलादन्तुरा दन्तपंक्तिः ॥

V. 93, St. 43: पर्जन्यं प्रति गर्जतां मदनदस्रोतोमुचां दन्तिनां संघर्षेण मुधैव यस्किल मुहुः प्रागर्जितं गर्जितम् । तत्किं कर्तुमलं बलाङ्गनरिपौ दन्तार्पितांघ्रिद्वये मस्तिष्काहरणाय मस्तकतटं स्वच्छन्दमुच्छिन्दति ॥

VIKRĀNTAKAURAVA

I. p. 2, St. 3: एतद्देहानुभाव्ये प्रचुरधनचये नास्ति कस्यापि तृप्तिः, कान्तावर्गेऽपि तद्वत्तरुणिमवयसा केवलेनानुभाव्ये । तस्मात्संजृम्भमाणे प्रसरति च विना देशकालव्यवस्थां, कीर्तिस्तोमेऽभिरामे जगति कृतमतेः कस्य वा स्याद्विरक्तिः ॥
I. p. 8: कथमसावनाकलितकालातिपातः पातयति कामुकानापातदुःसहायामापदि मदनः । तथा हि । क्षणाद्धैर्यग्रन्थिं शिथिलयति निर्मथ्य विनयं, क्षणाल्लज्जां भञ्जन् क्षपयति विवेकं पटुमपि । क्षणादन्यामन्यां सृजति रुजमन्तर्बहिरपि, क्षणात्कामः कामं जनयति जिगीषूंश्च पुरुषान् ॥
I. p. 12: तदेतदुन्मिषितोन्मादनं यदुत कामयमानस्य पुंसः प्रेयस्या सह नयनसंभेदः ।
I. p. 13: न खलु अन्तर एवावस्थानं निपततः प्रस्तरस्य ।
I. p. 13: युक्तमेव प्रियसुहृदे स्वानुभूतं निवेदयितुम् ।
I. p. 15, St. 26: यद्वा यत्स्पृहणीयमस्ति सुलभास्तस्यान्तराया अपि ।
I. p. 17: असंहार्यं खलु मन्मथास्त्रमभिमतमनुरज्यतः पुंसः प्रत्यनुरागदानम् ।
I. p. 19, St. 38: मनोरथशतार्तानां प्रोषितानां प्रमाथिनी । निशीथिनी जगज्जिष्णोर्मन्मथस्य वरूथिनी ॥
II. p. 35: सयौवनस्य जनस्याभिमतदर्शन उत्खण्डितधैर्यार्गलः, अपनीतलज्जातिरस्करिणीकः, दुःसहारंभकर्कशो मदनो नाम कोऽप्यन्तःकरणमधिक्षिपति ।
II. p. 37: यदा खल्वपरं प्रतिबन्धकं नास्ति तदा ननु चिन्तितं कथ्यते । कन्यकाजनस्य पुनः सुस्निग्धेऽपि जने प्रतिबध्नाति भावावेदनं निसर्गसिद्धा लज्जा ।
II. p. 38: महता भागधेयेन कन्यकानामभिरूपतमः पतिर्लभ्यते, तच्च पुण्यमपि केवलं मानुषस्येति ।
II. p. 39: अहो स्पृहणीयः कन्यकानां व्रीडाव्यतिकरः ।
II. p. 43: अहो दुर्विषहता प्रियाविरहव्यथायाः ।
III. p. 45, St. 1: गुणा एवाहार्यं भवति पुरुषाणां बहुमतं, स्त्रियः स्वैरं हार्याः प्रणयचतुरैश्चाटुवचनैः । धनं पात्रे दत्तं न खलु वसुगुप्तिर्धनवतां, कवीनां काप्यन्या भणितिरभिजाता विजयते ॥
III. p. 48, St. 10: न बहुप्रेयसीन् पुंसः कामिन्यो बहु मन्वते । पुमांसो बहु मन्यन्ते बहुपुंसीर्न योषितः ॥

III. p. 50, St. 16: निर्दोषा भणितिर्निसर्गमधुरा निर्मत्सरा शेमुषी निष्पापा नृपता जगद्बहुमता गीतिश्च निर्वैकृता। निर्दोषा चरितस्थितिर्गुणवती वेश्या च निर्मातृका यत्सत्यं बहुनापि भाग्यवसुना लभ्येत वा नैव वा।

III. p. 52: अहो लालनीयता बाल्यस्य।

III. p. 55: कुमुदाकरमेव हि कौमुदी संभावयति।

III. p. 56: अहो सौकुमार्यमपि योषितां, कार्कश्यमेव पुष्णाति पुष्पायुधस्य। ......मुष्णाति च विषमेषुदूषिता शेमुषी सत्त्वोन्मेषं पुरुषस्य।

III. p. 56: अहो संस्कारसन्तानस्य द्रढीयसी प्रौढी।

III. p. 58, St. 36: पिता वा माता वा भवतु स वरस्तादृगथवा, कुमारी तच्छन्दं निभृतमवगच्छेदिति तु यत्। तदप्येषा दत्तिर्लघयति यदस्या रमयितुर्गुणं वा दोषं वा स्वरुचिमनु चक्षुर्विमृशति॥

III. p. 60: अपर्यनुयोज्याश्चित्तवृत्तयः।

III. p. 64: अलक्षणो विषमेषुव्यापारः।

IV. p. 72, St. 2: बीभत्सोपहतां धिगस्तु विषयोन्मुग्धामिमां कामिताम्।

IV. p. 75: किंचेदमात्मवतामनभिमतं दुःशिक्षितजनदुरुपदेशेषु श्रोत्रदानव्यसनम्।

IV. p. 76: सा खलु चक्षुष्मत्ता यदुत परपरिग्रहगर्हितेषु जनुषान्धत्वं कलत्रेषु। सैव च श्रुतिमत्ता यत् किल दुर्दान्तजनदुःप्रलपितेषु पुरुषस्योच्चैःश्रवत्वम्। स खलु विक्रामति यस्य निसर्गदुर्मार्गप्रसंगमलीमसैरिन्द्रियमलिम्लुचैर्न मुष्यते हृदयम्। अभिजातजनद्वारयता (?) च भूशयति मानिनो यशस्वित्ताम्। विगीता रणचुम्बिता च विवृणोति पुंसामचातुर्यम्।

IV. p. 79: किंतु संधानमतिसंधानमिति द्वे इमे न क्वापि संभाविते वर्तिष्येते।

IV. p. 83, St. 30: वैयात्यं सहज नृणां दमयितुं नैवापरैः पार्यते।

IV. p. 85: बलीयो हि प्रभविष्णुताया अपि सौहार्दम्।

IV. p. 90, St. 50: अवश्यं मर्तव्यं कतिचिदतिवाह्यापि दिवसानलं विद्युल्लेखाविलसितविलोलैः कदसुभिः। प्रभूतं क्षीणन्तु प्रधनविपणौ विक्रमपणैर्यशः स्थास्नु ज्योत्स्नाशुचि रणरुचिव्यग्रमनसः॥

IV. p. 93, St. 57: बलवानपि संग्रामे हीनः शिक्षापराङ्मुखः।

IV. p. 105: अविचारिताचरणनिघ्नो हि पुमानचिरेण विपदुपघ्नतामातिष्ठते।

V. p. 112: अहो वैरूप्यं वार्द्धकस्य। वयांसि वेपथूद्धूतवारवाणच्छलात्स्वयम्। उड्डीयेव पलायन्ते सोद्वेगं तनुवैकृतम्॥

V. p. 118, St. 11: मंदाक्षो भवति प्रमाद्यति जने को वा विनेये सुधीः।

V. p. 122: प्रियतमास्पर्शो इति हि किमप्यन्यत्संपन्नं रसायनमुत्कंठमानस्यान्तःकरणस्य।

V. p. 123: अहो अदीर्घसूत्रता मदनस्य। यतः संनिकृष्यमाणोऽपि प्रणयिनी-समागमसमयो नालममुष्यात्मनोपस्थापनाय।

V. p. 130, St. 44: अहो निरंकुशता शशांकरोचिषाम्। तथा हि।
रभसकृतविकाशः काममुक्ताट्टहासः सुरपथपटवासोऽनल्पकर्पूरधूलिः। विशदयति दिगन्तानिन्दुपादप्रसारः कलुषयति तु चिन्तां केवलं प्रोषितानाम्॥

V. p. 131, St. 46: शरणमुपगतानां हिंसिना को नृशंसः।

V. p. 132, St. 54: अपर्यनुयोज्याश्च स्वभावा भावानाम्। कुतः।
किमपकृतममुष्य चक्रवाकैः किमुपकृतं तुहिनार्चिषश्चकोरैः। व्यथयति विघटय्य चक्रवाकांस्तृषमपहृत्य धिनोति यच्चकोरान्॥

V. p. 138, St. 71: कथं पनस केवलं सुमधुराणि पुष्पैर्विना फलानि फलता त्वया फलविपाकमूकः समः। चरच्चटुलचंचरीकचरणाहतोच्चावचप्रकीर्णसुमनोरजः-पटलपाटलः पाटलः॥

V. p. 145: अहो दुष्पारप्रसराणि कामुकजनस्य आकाशपरिदेवितानि।

V. p. 145: अये प्रचुरप्रतिपक्षसंक्षुण्णा प्रवासिनां प्रवृत्तिः। कुतः। क्षपानाथः सत्त्वं क्षपयति करैरुल्मुकखरैर्वसन्तः सन्ताप प्रगुणयनि संतर्ज्य शिशिरम्। घनामोदाहलब्धि (?) श्वसिनमथनैव श्वसननः स्मरः प्रत्याख्यातो विरहिमनसां घस्मर इति॥

VI. p. 150: तदिदमलक्रियते व्रीडितं विभ्रमेण।

VI. p. 150: अहो श्लाघ्यना मौकुमार्यस्य।

I. p. 153: अहो रमणीयविषमता नववधूविभ्रमस्य। यत्र हि। करस्पर्शोद्भिन्नैः पुलकमुकुलैः स्वेदमरमैः, परिव्यक्तिः प्रेम्णः प्रणयपरिणामाद्विकसिता। न दृष्टैस्तिर्यग्भिर्न खलु परिरंभैर्मृदुभिर्न संजल्पैः स्निग्धैर्न च वदनचंद्रैरुपहृतैः॥
वचः किंचिद्वक्त्रादभिलषति निर्गन्तुमसकृत्, स्फुरन्नन्तर्लग्नस्थिति नदधरोष्ठः स्फुटयति। यतेते रज्यन्त्यौ न खलु न दृशौ द्रष्टुमपि नस्रपाते रुन्धाना चलयति कुतोऽपि त्वसहना॥ प्रत्यालिंगनतोऽपि यत्र सुखदौ स्रस्तावमुक्तौ करौ, वक्त्रेन्दोरपहार एव सरसो यत्रोपहारादपि। यत्र स्वादुरुदञ्चनोऽपि वचसो निश्वास एव कुलः, मोऽयं प्राणसमासमागमरसः प्राथम्यरम्यक्रमः॥

ADDENDUM

AP VI, p. 87. lines 19–20 (जळद्समए वहू । विअविरहिआ विम । उअ पदुमिणी इमा । इह परिमिलाअदि ।) appear to be unmistakably metrical. The metre is Cāru—a Prākrit metre. Scheme: Four lines, each having ten mātrās [5 mātrās + 5 mātrās (Ra-gaṇa —⏑—)]. (Vide H. D. Velankar: Prākṛta and Apabhraṁs'a Metres, JBBRAS, New series, Vol. 22, 1946). This was omitted by oversight, both while printing the text and writing the section—Metres used by Hastimalla (pp. 37ff), and also the Index of stanzas.

नाट्यकार हस्तिमल्ल

दिगम्बर-जैन-साहित्यमें हस्तिमल्लका एक विशेष स्थान है। क्यों कि जहाँतक हम जानते हैं रूपक या नाटक उनके सिवाय और किसी दि॰जैन कविके नहीं मिले हैं। श्रव्य काव्य तो बहुत लिखे गये परन्तु दृश्य काव्यकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं गया। हस्तिमल्लने साहित्यके इस अंगको खूब पुष्ट किया। उनके लिखे हुए अनेक सुन्दर नाटक उपलब्ध हैं।

वंश-परिचय

हस्तिमल्लके पिताका नाम गोविन्दभट्ट था। वे वत्सगोत्री ब्राह्मण थे और दाक्षिणात्य थे। स्वामी समन्तभद्रके देवागम-स्तोत्रको सुनकर उन्होंने मिथ्यात्व छोड़ दिया था और सम्यग्दृष्टि हो गये थे। उन्हें स्वर्ण यक्षी नामक देवीके प्रसादसे छह पुत्र उत्पन्न हुए--१ श्रीकुमारकवि, २ सत्यवाक्य, ३ देवरवल्लभ, ४ उदय-भूषण, ५ हस्तिमल्ल और ६ वर्धमान[1]। अर्थात् वे अपने पिताके पाँचवें पुत्र थे। ये छहोंके छहों पुत्र कवीश्वर थे इस तरह गोविन्दभट्टका कुटुम्ब अतिशय सुशिक्षित और गुणी था।

सरस्वतीस्वयंवरवल्लभ, महाकवितल्लज और सूक्ति-रत्नाकर उनके विरुद थे[2]। उनके बड़े भाई सत्यवाक्यने उन्हें 'कवितासाम्राज्यलक्ष्मीपति' कहकर उनकी

१- गोविन्दभट्ट इत्यासीद्विद्वान्मिथ्यात्ववर्जितः,
देवागमनसूत्रस्य श्रुत्वा सद्दर्शनान्वितः।
अनेकान्तमतं तत्त्वं बहु मेने विदांवरः,
नन्दनास्तस्य संजाता वर्धिताखिलकोविदाः॥
दाक्षिणात्या जयन्त्यत्र स्वर्णयक्षीप्रसादतः।
श्रीकुमारकविः सत्यवाक्यो देवरवल्लभः॥
उदयभूषणनामा च हस्तिमल्लाभिधानकः।
वर्धमानकविश्चेति षडभूवन्कवीश्वराः॥ वि॰ कौ॰

२-अस्ति किल सरस्वतीस्वयंवरवल्लभेन भट्टारगोविन्दसूनुना हस्तिमल्लनाम्ना महा-कवितल्लजेन विरचितं विक्रान्तकौरवं नाम रूपकमिति। --वि॰ कौ॰

सूक्तियोंकी बहुत ही प्रशंसा की है। राजावली-कथाके कर्त्ताने उन्हें उभय-भाषाकवि-चक्रवर्ती लिखा है।[४]

हस्तिमल्लने विक्रान्तकौरवके अन्तमें जो प्रशस्ति दी है, उसमें उन्होंने समन्तभद्र, शिवकोटि, शिवायन, वीरसेन, जिनसेन और गुणभद्रका उल्लेख करके कहा है कि उनकी शिष्य-परम्परामें असंख्य विद्वान् हुए और फिर गोविन्दभट्ट हुए जो देवागमको सुनकर सम्यग्दृष्टि हुए। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे उक्त मुनिपरम्पराके कोई साधु या मुनि थे। जैसी कि जैन ग्रन्थ-कर्त्ताओंकी साधारण पद्धति है, उन्होंने गुरुपरम्पराका उल्लेख करके अपने पिताका परिचय दिया है।

हस्तिमल्ल स्वयं भी गृहस्थ थे[५]। उनके पुत्र-पौत्रादिका वर्णन ब्रह्मसूरिने प्रतिष्ठा-सारोद्धार में किया है। स्वयं ब्रह्मसूरि भी उनके वंशमें हुए हैं। वे लिखते हैं कि पाण्ड्य देशमें गुडिपत्तनके शासक पाण्ड्य नरेंद्र थे, जो बड़े ही धर्मात्मा, वीर, कलाकुशल और पण्डितोंका सन्मान करनेवाले थे। वहाँ वृषभतीर्थंकरका रत्न-सुवर्णजटित सुन्दर मन्दिर था, जिसमें विशाखनन्दि आदि विद्वान् मुनिगण रहते थे। गोविन्द भट्ट यहींके रहनेवाले थे। उनके श्रीकुमार आदि छह लड़के थे। हस्तिमल्लके पुत्रका नाम पार्श्वपंडित था जो अपने पिताके ही समान यशस्वी धर्मात्मा और शास्त्रज्ञ थे। ये अपने वशिष्ठ काश्यपादि गोत्रज बान्धवोंके साथ होय्सल देशमें जाकर रहने लगे, जिसकी राजधानी छत्रत्रयपुरी थी[६]। पार्श्वपंडित के चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नामक तीन पुत्र थे। इनमें चन्द्रनाथ अपने परिवारके साथ हेमाचल (होम्बूरु) में अपने परिवारसहित जा बसे और दो भाई अन्य स्थानोंको चले गये। चन्द्रपके पुत्र विजयेन्द्र हुए और विजयेन्द्रके ब्रह्मसूरि, जिनके बनाये हुए त्रिवर्णाचार और प्रतिष्ठा-तिलक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

---

३ किं वीणागुणझंकृतैः किमथवा सान्द्रैर्मधुस्यन्दिभि-
विभ्राम्यत्स्मरकारकोरकशिखाकर्णावतंसैरपि।
पर्याप्ताः श्रवणोत्सवाय कवितासाम्राज्यलक्ष्मीपते
सत्यं नस्तव हस्तिमल्ल सुभगास्तास्ताः सदा सूक्तयः॥ मै० क०

४ कनडी आदिपुराणकी पुष्पिकामें कविने स्वयं भी उभयभाषाकविचक्रवर्ती लिखा है—
"इत्युभयभाषाकविचक्रवर्तिहस्तिमल्लविरचितपूर्वपुराणमहाकथायां दशमपर्व।

५ परवादिहस्तिनां सिंहो हस्तिमल्लस्तदुद्भवः।
गृहाश्रमी बभूवार्हच्छासनादिप्रभावकः॥ १२॥

६ के० भुजबलि शास्त्रीका अनुमान है कि छत्रत्रयपुरी शायद द्वारसमुद्र (हलेबीडु) हो। यह होय्सल राजाओंकी राजधानी रही है।

कविके भाई

कविके जो पाँच भाई थे, उनसे हम प्रायः अपरिचित हैं। सत्यवाक्यको हस्तिमल्लने 'श्रीमती-कल्याण' आदि कृतियोंका कर्त्ता बतलाया है, परन्तु उनका न तो यह ग्रन्थ ही अभीतक प्राप्त हुआ है और अन्य कोई ग्रन्थ ही। नामसे ऐसा मालूम होता है कि 'श्रीमती-कल्याण' भी बहुत करके नाटक होगा।

श्रीकुमार कविका 'आत्मप्रबोध' नामका एक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है, परन्तु वे हस्तिमल्लके बड़े भाई हैं या कोई और, इसका निर्णय नहीं हो सका।

वर्धमान कविको कुछ लोगोंने गणरत्नमहोदधिका ही कर्त्ता समझ लिया है परन्तु यह भ्रम है। गणरत्नके कर्त्ता श्वेतांबर सम्प्रदायके हैं और उन्होंने सिद्धराज जयसिंह (वि. सं. ११५१-१२००) की प्रशंसामें कोई काव्य बनाया था। दिगम्बर सम्प्रदायपर उन्होंने कटाक्ष भी किये[9] है, और वे हस्तिमल्लसे बहुत पहले हुए हैं।

कविका नाम

हस्तिमल्लका असली नाम क्या था, इसका पता नहीं चलता। यह नाम तो उन्हें एक मत्त हाथीको वशमें करनेके उपलक्ष्यमें पाण्ड्य राजा के द्वारा प्राप्त हुआ था[10]। उस समय उनका राजसभामें सैकड़ों प्रशंसा-वाक्योंसे सत्कार किया गया था। इस हस्ति-युद्धका उल्लेख कविने अपने सुभद्राहरण नाटकमें भी किया है और साथ ही यह भी बतलाया है कि कोई धूर्त जैनमुनिका रूप धारण करके आया था और उसको भी हस्तिमल्लने परास्त कर दिया था[11]।

---

७ एवं खल्वसौ श्रीमतीकल्याणप्रभृतीनां कृतीनां कर्त्ता सत्यवाक्येन सूक्तिरसावर्जित-चेतसा ज्यायसा कनीयानप्युपश्लोकितः। —मै० कल्याण।

८ गणरत्नमहोदधिका रचनाकाल वि० सं० ११९७ है।

९ अकल्पितप्राणसमासमागमा मलीमसांगा धृतभैक्ष्यवृत्तयः।
निर्ग्रन्थतां त्वत्परिपन्थिनो गता जगत्पते किंत्वजिनावलम्बिनः॥ -ग० र० म० पृ० १६४

१० श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्टप्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात्।
नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहेश्वरेण श्लोकैः शतैः सदसि सत्कृतवान् बभूव॥

११ सम्यक्त्वं सुपरीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे
चास्मिन्पाण्ड्यमहेश्वरेण कपटाद्धन्तुं स्वमभ्यागते (तं)।
शैलूषं जिनमुद्रधारिणमपास्यासौ मदध्वंसिना
श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान्सूरिभिः॥

पाण्ड्यमहीश्वर

हस्तिमल्लने पाण्ड्य राजाका अनेक जगह उल्लेख किया है। वे उनके कृपा-पात्र थे और उनकी राजधानीमें अपने विद्वान् आप्तजनोंके साथ जा बसे थे। राजाने अपनी सभामें उन्हे खूब ही सम्मानित किया था। ये पाण्ड्यमहीश्वर अपने भुजबलसे कर्नाटक प्रदेशपर शासन करते थे[12]।

कविने इन पाण्ड्य महीश्वरका कोई नाम नही दिया है। सिर्फ इतना ही मालूम होता है कि वे थे तो पाण्ड्यदेशके राजवंशके, परन्तु कर्नाटकमें आकर राज्य करने लगे थे।

दक्षिणकर्नाटकके कार्कल स्थानपर उन दिनों पाण्ड्यवंशका ही शासन था। यह राजवंश जैनधर्मका अनुयायी था और इसमें अनेक विद्वान् तथा कलाकुशल राजा हुए हैं। 'भव्यानन्द[13]' नामक सुभाषित ग्रन्थके कर्ता भी अपनेको 'पाण्ड्यक्ष्मापति' लिखते हैं, कोई विशेष नाम नहीं देते। हमारी समझमें ये हस्तिमल्लके आश्रयदाता राजाके ही वंशके अनन्तरवर्ती कोई जैन राजा थे और इन्होंने ही शायद श० सं० १३५३ (वि. सं. १४८८) में कार्कलकी विशाल बाहुबलि प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराई थी[14]।

पाण्ड्यमहीश्वरकी राजधानी मालूम नही कहाँ थी। अंजनापवनंजयके 'श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरेण' आदि पद्यसे तो ऐसा मालूम होता है कि संतरनम या संततगर्मे[15] नामक स्थानमें हस्तिमल्ल अपने कुटुम्बसहित जा बसे थे, इसलिए यही उनकी राजधानी होगी, यद्यपि यह पता नहीं कि यह स्थान कहाँपर था।

---

१२ श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे निजभुजादण्डावलम्बीकृतं
कर्नाटावनिमण्डलं पदनतानेकावनीशेऽवति।
तत्प्रीत्यानुसरन्स्वबन्धुनिवहैर्विद्वद्भिराप्तैस्समं
जैनागारसमेतसंतरनमे (?) श्रीहस्तिमल्लोऽवसत्॥ —अंजनापवनंजय

१३ भव्यानन्दशास्त्रकी एक प्रति 'ऐ० पन्नालालसरस्वतीभवन' में है। यह आत्मानुशासन और भर्तृहरिशतकके ढंगकी सुन्दर प्रसादगुणयुक्त रचना है। इसमें नागचन्द्रका स्मरण किया गया है और इसके आधारपर पं० के० भुजबलिशास्त्रीने शक सं० १३५० के लगभग उसका निर्माण-काल निश्चित किया है।

१४ देखो के० भुजबलिशास्त्रीद्वारा सम्पादित प्रशस्तिसंग्रह पृ० १९

१५ डॉ० ए. एन. उपाध्येने अंजनापवनंजयकी दो प्रतियाँ देखकर सूचना दी है कि एक प्रतिमें 'सततगमे' और दूसरी प्रतिमें 'संततगमे' पाठ है। पहले पाठसे छन्दोभंग होता है, इसलिए दूसरा पाठ ठीक मालूम होता है।

हाथीका मद उतारनेकी घटना 'सरण्यापुर' नामक स्थानमें घटित हुई थी और वहाँकी राजसभामें ही उन्हें सत्कृत किया गया था। इस स्थानका भी कोई पता नहीं है। या तो यह संततगमका ही दूसरा नाम होगा या फिर किसी कारणसे पाण्ड्यराजा हस्तिमल्लके साथ कहीं गये होंगे और वहाँ यह घटना घटी होगी।

कविका मूलनिवासस्थान

ब्रह्मसूरिने गोविन्दभट्टका निवासस्थान गुडिपत्तन बतलाया है और पं० के. भुजबलि शास्त्रीके अनुसार यह स्थान तंजौरका दीपंगुडि नामका स्थान है, जो पाण्ड्यदेशमें है। कर्नाटकका राज्य प्राप्त होनेपर या तो वे स्वयं ही या उनका कोई वंशज कर्नाटकमें आकर रहने लगा होगा और उसीकी प्रीतिसे हस्तिमल्ल कर्नाटककी राजधानीमें आ बसे होंगे।

ब्रह्मसूरिके बतलाये हुए गुडिपत्तनका ही उल्लेख हस्तिमल्लने विक्रान्तकौरवकी प्रशस्तिमें द्वीपंगुडि नामसे किया है। उसमें भी वहाँके वृषभजिनके मन्दिरका उल्लेख है जिनके पादपीठ या सिंहासनपर पाण्ड्यराजाके मुकुटकी प्रभा पड़ती थी। वृषभजिनके उक्त मन्दिरको 'कुश-लवरचित' अर्थात् रामचन्द्रके पुत्र कुश और लवके द्वारा निर्मित बतलाया[१६] है।

हस्तिमल्लका समय

अय्यपार्य नामक विद्वानने अपने जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय नामक प्रतिष्ठापाठमें लिखा है कि मैंने यह ग्रन्थ वसुनन्दि, इन्द्रनन्दि, आशाधर और हस्तिमल्ल आदिकी रचनाओंका सार लेकर लिखा[१७] है और उक्त ग्रन्थ श० सं० १२४१ (वि० सं० १३९६) में समाप्त हुआ[१८] था। अतएव हस्तिमल्ल १३९६ से पहले हो चुके थे।

ब्रह्मसूरिने अपनी जो वंशपरम्परा दी है, उसके अनुसार हस्तिमल्ल उनके पितामहके पितामह थे। यदि एक एक पीढ़ीके पचीस-पचीस वर्ष गिन लिये

---

१६ श्रीमद्दीपंगुडीशः कुशलवरचितस्थानपूज्यो वृषेशः
स्याद्वादन्यायचक्रेश्वरगजवशकृद्धस्तिमल्लाह्वयेन।
गद्यैः पद्यैः प्रबन्धैर्नवरसभरितैरादृतोऽयं जिनेशः
पायान्नः पादपीठस्थलविकटलसत्पाण्ड्यमौलिप्रभौघः॥ १४॥

१७ यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धीरितः
तेभ्यस्स्वाहृतसार आर्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः॥ १५॥

१८ शाकाब्दे विधुवेदनेत्रहिमगे (?) सिद्धार्थसंवत्सरे
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुष्यार्कवारेऽहनि।
ग्रन्थो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक्
सम्पूर्णोऽभवदेकशैलनगरे श्रीपालबन्धूर्जितः॥
—कारंजाकी प्रति

जाँय, तो हस्तिमल्ल उनसे लगभग सौ वर्ष पहलेके हैं और पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार ब्रह्मसूरिको विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दिका विद्वान् मानते हैं, अतएव हस्तिमल्लको विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिका विद्वान् मानना चाहिए।

कर्नाटक कवि-चरित्रके कर्त्ता आर० नरसिंहाचार्यने हस्तिमल्लका समय ई० सन् १२९० अर्थात् वि० सं० १३४८ निश्चित किया है, और यह ठीक मालूम होता है।

ग्रन्थ-रचना

हस्तिमल्लके अभीतक चार नाटक प्राप्त हुए हैं १ विक्रान्तकौरव, २ मैथिली-कल्याण, ३ अंजनापवनंजय, ४ सुभद्रा। इनमेंसे पहले दो प्रकाशित हो चुके हैं।

इनके सिवाय १ उदयनराज, २ भरतराज, ३ अर्जुनराज, और ४ मेघेश्वर इन चार नाटकोंका उल्लेख और मिलता[20] है। इनमेंसे भरतराज सुभद्राका ही दूसरा नाम मालूम होता है। शेष तीन नाटक दक्षिणके भंडारोंमें खोज करनेसे मिल सकेंगे। 'प्रतिष्ठा–तिलक' नामका एक और ग्रन्थ आराके जैन-सिद्धान्त-भवनमें है। यद्यपि इस ग्रन्थमें कहीं हस्तिमल्लका नाम नहीं दिया है परन्तु अय्यपार्यने अपने जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयमें जिन जिनके प्रतिष्ठा-पाठोंका सार लेकर अपना ग्रन्थ रचनेका उल्लेख किया है उनमें हस्तिमल्ल भी हैं। अतएव निश्चयसे हस्तिमल्लका एक प्रतिष्ठापाठ है और वह यही है।

आदिपुराण[21] (पुरुचरित) और श्रीपुराण[22] नामके दो ग्रन्थ कनड़ी भाषामें भी हस्तिमल्लके बनाये हुए उपलब्ध हैं। संस्कृतके समान कनडीभाषापर भी उनका अधिकार था और शायद इसी कारण वे उभयभाषाचक्रवर्ती कहलाते थे। यदि उनका जन्मस्थान दीपंगुडि है, जैसा कि ब्रह्मसूरिने लिखा है तो उनकी मातृभाषा तामिल होगी और ऐसी दशामें कनड़ीपर भी उन्होंने संस्कृतके समान प्रयत्नपूर्वक अधिकार प्राप्त किया होगा।

---

१९ देखो ग्रन्थपरीक्षा तृतीयभाग, पृष्ठ ८।

२० मि० आफ्रेखके 'कैटेलागस् केटलागोरम्' (सन् १८९१ लिपजिग) में इन सब नाटकोंका उल्लेख आपर्ट साहबकी 'लिष्ट ऑफ संस्कृत मेनु० इन सदर्न इण्डिया' (जिल्द १–२ सन् १८८०–८५) के आधारसे किया गया है। यह लिस्ट दक्षिणभारतकी प्रायवेट लायब्रेरियोंको देखकर तैयार की गई थी और इसलिए आपर्ट साहबने उस समय गृहपुस्तकालयोंमें इन ग्रन्थोंको स्वयं देखा होगा।

२१ इस ग्रन्थके शुरूके ४१ पत्र सांगलीके श्रीगुंडप्पा तवनाप्पा आरवाडेके पास हैं और उन्हें देखकर डॉ० उपाध्येने अभी हाल ही 'हस्तिमल्ल एण्ड हिज आदिपुराण' नामक अंग्रेजी लेख लिखा है। यह ग्रन्थ गद्यमें है और इसके प्रत्येक पर्वमें जो मंगला-चरण है वह जिनसेनके आदिपुराणका है।

२२ मूडबिद्री और बरांगके जैन मठोंमें इस ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं।

अञ्जनापवनंजयं

नाम

नाटकम्[1]

आदौ यस्य पुरश्चराचरगुरोरारब्धसंगीतक-

श्रङ्के नाट्यरसान् क्रमादभिनयन्नाखण्डलस्ताण्डवम् ।

यस्मादाविरभूदचिन्त्यमहिमा वागीश्वराद् भारती

स श्रीमान् मुनिसुव्रतो दिशतु वः श्रेयः पुराणः कविः ॥१॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—अलमतिप्रसंगेन । मारिष, इतस्तावत् ।

(प्रविश्य)

पारिपार्श्वकः—भाव, अयमस्मि ।

सूत्रधारः—आज्ञापितोऽस्मि परिषदा । यथा अद्य त्वया तत्रभवतः सरस्वतीस्वयंवृतपतेर्भट्टार[2]कगोविन्दस्वामिनः सूनुना श्रीकुमारसत्यवाक्यदेवरवल्लभोदयभूषणानामार्यमिश्राणामनुजेन, कवेर्वर्धमानस्याग्रजेन, कविना हस्तिमल्लेन विरचितं, विद्याधरचरितनिबन्धनमञ्जनापवनंजयं नाम नाटकं यथावत्प्रयोगेण नाटयितव्यमिति ।

---

1 At the beginning, A has श्रीरस्तु । अञ्जनापवनंजय नाम नाटकम् ।; B नमः सिद्धेभ्यः । श्रीमदप्रमेन्दुमुनये नमः ।; C ॐ नमः सिद्धेभ्यः । अथ श्रीमद्धस्तिमल्लकविविरचितम् अंजनापवनंजयं नाम नाटकम् ।; D श्रीमत्पंचगुरुभ्यो नमः । D has on its left-side margin अंजनापवनंजयनाम नाटकं ।. *2* D भट्टारगो°.

पारिपार्श्वकः—भाव, किमिति खलु परिषदः[1] सविशेषमस्मिन् बहुमानः ।

सूत्रधारः—ननु कविपरिश्रम एवात्र निबन्धनम् । कुतः ।

समीचीना वाचः सरलसरला कापि रचना
परा वाचोयुक्तिः कविपरिषदाराधनपरा ।
अनालीढो गाढः परमनतिगूढोऽपि च रसः
कवीनां सामग्री झटिति चलितं कं न कुरुते ॥ २ ॥

पारिपार्श्वकः[2]—एवमेतत् । यत्सत्यं नाटकान्ताः कवयः ।

सूत्रधारः—तद्यावदिदानीमारभ्यतां संगीतकम् ।

पारिपार्श्वकः—तेन हि किमिति विलम्ब्यते । एष हि महेन्द्रसूनुररिंदमो निजानुजाया अञ्जनायाः सर्वतः स्वयंवरमहोत्सवाय पुरपर्यन्तमेव प्रत्यासीदन्तं राजलोकं समुचितसत्कारपुरस्सरं संभावयितुं महाराजमहेन्द्रेण नियुक्तः पुरप्रसाधनाय पौरवर्गं प्रोत्साहयन्नित एवाभिवर्तते । तदयमस्माकमपि[3] तावदस्मिन्महोत्सवे नैपथ्यरचनां[4] ग्रहीतुमुचित एवावसरः । कथं[5] तेन हि वयं सज्जीकृतं स्वयंवरमण्डपमेव समासाद्य कुशलैः कुशीलवैः सह संगीतकमारभामहे ।

पारिपार्श्वकः—यदाज्ञापयति भावः । (इति [6]निष्क्रान्तौ ।)

(प्रस्तावना[7] ।)

---

1 A omits खलु परिषदः. 2 A मारिषः; B D no name for the speaker. 3 A यदयम°. 4 Thus A B C D. The usual form is नेपथ्य. 5 कथं seems to be superfluous though found in A B C D. The words तेन हि वयं......आरभामहे are obviously the remark made by the Sūtradhāra, though none of the Mss. shows them as such. 6 D om. इति. 7 B C D स्थापना.

(ततः प्रविशत्यरिंदमः ।)

अरिंदमः—आज्ञापितोऽस्मि तातेन, यथा वत्स अरिंदम, वत्साया अञ्जनायाः स्वयंवरमहोत्सवाय तावदाहूताः प्रविशन्ति पवनंजय-विद्युत्प्रभ-मेघनादप्रमुखा राजपुत्राः सांप्रतमस्मदीयं नगरम्। तदिदानीं नगरीप्रसाधनायां राजन्यवर्गसंभावनायां च त्वयैव सावधानेन भवितव्यमिति । (परितोऽवलोक्य) इयं च तावदस्मदादेशात् सविशेषमेव प्रगुणीकृता नगरी । तथा हि[1] ।

पौरैरिमानि निखिलानि निकेतनानि
पर्युत्सुकैरिह समुच्छ्रितकेतनानि ।
द्वारेषु संप्रति हि वन्दनमालिकाभि-
रायोजितानि परितो मणिकुट्टिमानि ।। ३ ।।

(परिक्रम्यावलोक्य च) अये, कथमिदानीमितः प्रतोलीमतीत्य[2] रथ्या एवावगाहन्ते सर्वेभ्योऽपि दिगन्तेभ्यः समायाता निजबलभरसंमर्द[3]कोलाहलेन दशापि दिशो रुन्धाना दिक्पाला इव भूपालाः । (विलोक्य[4]) कः पुनरयं राजमार्गमतिक्रम्य प्रमदव[5]नसंमुखः सौविदल्ललोकापसारितसंमर्दस्तुरंग[6]वरादवतीर्णः । (निरूप्य) अये, तातस्य परमसुहृदः प्रह्लादराजस्य तनयः[7] स[8] एषः ।

परिमितपरिवारः पौरवर्गेण साक्षा-
दपर इव वसन्तः सादरं वीक्ष्यमाणः ।
प्रमदवनमिदानीं पादचारेण खेलन्
प्रविशति कमनीयां कान्तिलक्ष्मीं दधानः ।। ४ ।।

---

1 C तद्यथा. 2 B C प्रतोलीरतीत्य, D प्रतोळीरतीत्य. 3 B सार्धं, C सार्थं. 4 A and B विलोक्यन्ते as verb agreeing with भूपालाः. 5 B and C प्रमदसंमुखसौविदल्ल°. 6 B D तुरंगमवरात्, C तुरंगमात्. 7 B C D add पवनंजयः after तनयः. 8 B D य एषः, C यः सैषः.

(विचिन्त्य) प्रथमं तावदिममेवात्र संभावयतः स्वागतसंकथया कुशलप्रश्नेन सुखसंभाषितेन च[1] तेन च समुदाचारेण महान् कालो समातिवर्तेत । तदिदानीमारातीयं कार्यशेषं परिसमापय्य[2] पुनरेवैनं द्रक्ष्यामः । (इति[3] निष्क्रान्तः ।)

शुद्धविष्कम्भः ।

(ततः प्रविशति पवनंजयो विदूषकश्च ।)

पवनंजयः—सखे, रमणीयमिदमुद्यानम् । तदत्रैव मुहूर्तं विश्रम्य पश्चात् संस्त्यायप्रदेशं गच्छामः ।

विदूषकः–तह होदु । एत्थ खु महाराअपल्हाद[4]महिंदराआणं चिरसमारूढाए मेत्तीए अत्तणीया[5] वि अ विस्सद्धं[6] विहरणीआ[7] अम्हाणं पमअवणुद्देसा । ता इदो इदो पिअवअस्सो । [तथा भवतु । अत्र खलु महाराजप्रह्लादमहेन्द्रराजयोश्चिरसमारूढया मैत्र्या आत्मनीयापि[8] च विस्रब्धं विहरणीया आवयोः प्रमदवनोद्देशाः । तस्मादित इतः प्रियवयस्यः ।]

(परिक्रामतः[9] ।)

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य) अहो नु खलु भोः प्रमदवनस्य परा लक्ष्मीः । अत्र हि ।

प्रवृत्तो [10]ज्याघोषः खलु मधुलिहां झंकृतमिदं
पतन्त्येते बाणा अपि निशितधाराः सुमनसः ।
स्थितः पार्श्वे चैष स्वयमपि वसन्तः सहचरः
सदायं संरब्धो[11] नतकुसुमधन्वा विहरति ॥ ५ ॥

---

1 B D omit च; C omits तेन च coming after च. Perhaps तेन तेन च समुदाचारेण. *2* Thus A B C. It stands for परिसमाप्य. *3* B परिक्रम्य निष्क्रान्तः । C परिनिष्क्रम्य निष्क्रान्तः। D परिष्क्रम्य निष्क्रातः ।. *4* D °पल्हाद°. *5* C D अत्तणया. *6* B विस्सत्थं; C D विसत्थं. *7* D विहरणीया. *8* D आत्मिकीया च विस्रब्धं. *9* B C D परिक्रान्तः । *10* C प्रवृत्तोच्चो घोषः. *11* C संरब्धोन्नत°.

विदूषकः—भो[1] वअस्स, दक्ख दाव इदो उण णिवडंतपसूणकिंज-क्कपुंजपिंजरिअपक्खपालिआ गाअइ सहआरसिहरं आरुहिअ गहिअ-णेअत्था[2] विअ कलमहुरं कलकंठिआ । इदो अ फुडविहडिअमउल-चसअसदभरिअमहुरसपाणमदभरभेलो[3] विहरइ बउलवीहीए सहअ-रीए सह राअकीरो । इदो पडिणवविअसिअकुसुमासवलोहपरिब्भमंति-दिंदिरझंकारपेसला विलोहअइ[4] णोमालिआ । इदो सामलबहुल[5]पत्त-लदाए दिवा वि संकिअणिसीहेहि चक्का[6]अचक्कवालेहिं परिहरिज्जंत-परिसरो, णवजलहरुग्गमलुद्धेहिं मुद्धचादअपोदएहिं णिपीयमाणमहु-बिंदुणिस्संदो[7], सिहंडिमंडलेहिं पि केआरवमुहरेहिं इदोतदो दिण्णंत[8]-तंडवोवहारो सोहइ एसो बालतमालओ । [भो वयस्य, पश्य तावदितः पुनर्निपतत्प्रसूनकिञ्जल्कपुञ्जपिञ्जरितपक्षपालिका गायति सहकारशिखर-मारुह्य गृहीतनेपथ्येव कलमधुरं कलकण्ठिका । इतश्च स्फुट[9]विघटितमुकुल-चषकशतभरितमधुरसपानमदभरवेगो[10] विहरति बकुलवीथ्यां सहचर्या सह राजकीरः । इतः प्रतिनवविकसितकुसुमासवलोभपरिभ्रमदिन्दिन्दिरझंकार-पेशला विलोभयति[11] नवमालिका । इतः श्यामलबहुलपत्रलतया दिवापि शङ्कित[12]निशीथैश्चक्रवाकचक्रवालैः परिह्रियमाणपरिसरः, नवजलधरोद्गमलुब्धैः मुग्धचातकपोतकैर्निपीयमानमधुबिन्दुनिष्यन्दः, शिखण्डिमण्डलैरपि केका-रवमुखरैरितस्ततो दीयमा[13]नताण्डवोपहारः शोभत एष बालतमालः ।]

पवनंजयः—वयस्य, सम्यगुपलक्षितम् । पश्य ।

चलकिसलयाग्रहस्तोत्क्षिप्तां नवमालिका कुसुममालाम् ।
आमुच्याधिस्कन्धं स्वयं वृणीते तमालवरम् ॥ ६ ॥

---

1 D adds (on the line) पिअ after भो. *2* B and C °णेअच्छा. *3* B D °खेळो, C खेलो. *4* B C विलोअणाइ, D विळोहइ ळोअणाइ णो°. *5* B C बहळ°. *6* D चक्काअचक्कवाळेहि. *7* D णीसंदो. *8* D दिण्णतंडवो°, [दिज्जंनतंडवो°]. *9* The chāyā in A has विकसित°, D फुल्लविकसित. *10* D भरखेळः. *11* The chāyā in A reads लोचनानि after विलोभयति. *12* D om. शंकित. *13* The chāyā in A D दत्त°.

विदूषकः—किं ति ण परिप्फुडं मंतियदि । णं भणिदव्वं पवणंजअं सअं वरंती[1] अंजणा विअ त्ति । [किमिति न परिस्फुटं मन्त्र्यते । ननु भणितव्यं पवनंजयं स्वयं वृण्वती अञ्जनेवेति ।]

पवनंजयः—(सस्मितम्) कृतं परिहासेन ।

विदूषकः—ण खु एसो परिहासो । अविलंबिअं खु एअं अणुभविस्ससि[2] । अण्णहा किं राअहंसं ओहिरिअ बओडंअं[3] अणुसरइ वरडा । अण्णं च । पुव्वं खु विअअड्ढाअलवेअंडचूलिआअंतसिज्झऊडसिज्झाअदणे[4] मंदारणिलअब्भंदरगआ[5] अण्णाहिं पिअसहअरविज्जाहरकण्णआहिं पुप्फाणि ओचिणंती ओलोइआ तुमे तत्तहोदी अंजणा । [न खल्वेष परिहासः । अविलम्बितं खल्वेतदनुभविष्यसि । अन्यथा किं राजहंसमवधीर्य बकोटकमनुसरति वरटा । अन्यच्च । पूर्वं खलु विजयार्धाचलवेतण्डचूलिकायमानसिद्धकूटसिद्धायतने मन्दारनिलयाभ्यन्तरगता अन्याभिः प्रियसहचरविद्याधरकन्यकाभिः पुष्पाण्यवचिन्वती अवलोकिता त्वया तत्रभवती अञ्जना ।]

पवनंजयः—अथ किम् ।

विदूषकः—तदो अ तिस्से वि तुमं दट्ठूण अत्तणो धीरदाए सह ओगलिअकुसुमंजलीए पिअसहीहिं ओहसिआए अब्भण्णेण चेअ मंदारुक्खेणं[6] अंदरिआए लक्खिओ मए भावो तुइ साहिलासो । ता मा दाणिं अण्णहासंकिअ । [ततश्च तस्या अपि त्वां दृष्ट्वा आत्मनो धीरतया सह अवगलितकुसुमाञ्जल्याः प्रियसखीभिरुपहसिताया अभ्यर्णेनैव मन्दारवृक्षेणान्तरितायाः[7] लक्षितो मया भावस्त्वयि साभिलाषः । तस्मान्मा इदानीमन्यथाशङ्कय ।]

पवनंजयः—(सोत्कण्ठम्)

---

1 B वरंति, C वरंती. The chāyā in A स्वयंवरीति, chāyā in D वरिति; D om. सअं. 2 D अणुभविस्सिसि. 3 D बओडं. 4 D वेअड्ढ° 5 D अब्भंतर. 6 D °रुक्खेणंतरिआए. 7 The chāyā in A तिरोहितायाः.

तदा प्रियायाः करपल्लवाग्रात् स्रस्तानि मन्दं कुसुमानि यानि ।
तैरेव क्लृप्तैः कुसुमायुधो मामद्यापि बाणैः प्रहरत्यमोघैः ॥ ७ ॥

(निर्वर्ण्य)[1]

अपि नाम कदाचिदङ्गना विहरन्ती कलहंसगामिनी ।
जनयेन्मम नेत्रयोर्द्वयोरनयोरुत्सुकयोरिहोत्सवम् ॥ ८ ॥

(नेपथ्ये)

मालदिए, मालदिए । [मालतिके, मालतिके ।]

विदूषकः—एत्थ का एसा सद्दावेदि । जाव इमिणा तमाल-पाअवेण ओवारिअ[2] दक्खम्ह । [अत्र का एषा शब्दापयति । यावदनेन तमालपादपेन अपवार्य पश्यामः ।]

पवनंजयः—यदाह भवान् । (उभौ तथा कुरुतः ।)

(प्रविश्य)

मधुकरिका—मालदिए । [मालतिके ।]

(प्रविश्य)

प्रमदवनपालिका—कहं भट्टिदारिआए अंजणाए णाडअसुत्त-धारिणी सद्दावेइ मं महुअरिआ । [कथं भर्तृदारिकाया अञ्जनाया नाटक-सूत्रधारिणी शब्दापयति मां मधुकरिका ।] (उपसृत्य) सहि, कीस मं सद्दावेसि । [सखि, कस्मान्मां शब्दापयसि ।]

प्रथमा—सहि, कहिं खु तुए तुरिअं गम्मिअदि[3] । [सखि, कुत्र खलु त्वया त्वरितं गम्यते ।]

द्वितीया—अहं खु भट्टिणीए मणोवेगाए आणत्ता, जह वच्छाए अंजणाए कल्लं खु सअंवरो, ता जाव ओसहिमालं गुंभिदुं संदाणप्पमुहाइ[4] विहासुम्मुहाइ मंगलाइ पुप्फाइ[5] ओचिणिअ आणेहि

---

1 B वनं निर्वर्ण्य, C D उपवनं निर्वर्ण्य सोत्कण्ठम् । 2 C ओवारिआ, chāyā D अपवारितौ पश्यावः । 3 B C गच्छियदि, D गच्छीअदि. 4 D संदाणअपमुहाइ 5 D मंगळाइ फुळ्ळाइ.

त्ति । [अहं खलु भट्टिन्या मनोवेगया आज्ञप्ता, यथा वत्साया अञ्जनायाः कल्यं खलु स्वयंवरः, तस्माद्यावदोषधिमालां गुम्फितुं संतानप्रमुखानि विकासोन्मुखानि मङ्गलानि पुष्पाण्यवचित्य आनयेति ।]

प्रथमा—सहि, चिट्ठदु एअं । दिट्ठा उण तुमे एत्थ भट्टिदारिआ अंजणा । [सखि, तिष्ठत्वेतत् । दृष्टा पुनस्त्वयात्र भर्तृदारिका अञ्जना ।]

द्वितीया—सहि, सा खु[1] पिअसहीए वसंतमालाए सह केलिवणे संगीअसालं पविट्ठा । [सखि, सा खलु प्रियसख्या वसन्तमालया सह केलीवने संगीतशालां प्रविष्टा ।]

प्रथमा—तेण हि अहं[2] गच्छेमि । [तेन ह्यहं गच्छामि ।]

द्वितीया—सहि, चिट्ठ दाव । पुणो वि गंतुं सक्कं । [सखि, तिष्ठ तावत् । पुनरपि गन्तुं शक्यम् ।]

प्रथमा—सहि, किं ति । [सखि, किमिति ।]

द्वितीया—सहि, कहं तुमं समत्थेसि को णु खु महाभागो एअं मालं धारिस्सदि[3] त्ति । [सखि, कथं त्वं समर्थयसे को नु खलु महाभाग एतां मालां धारयिष्यतीति ।]

प्रथमा—हला, किं एत्थ विआरिज्जइ । तेलोक्क[4]पसंसिअरूवसोहग्गविसेसो पल्हादणंदणो[5] पवणंजओ खु एत्थ पहवदि । [सखि, किमत्र विचार्यते । त्रैलोक्यप्रशंसितरूपसौभाग्यविशेषः प्रह्लादनन्दनः पवनंजयः खल्वत्र प्रभवति ।]

द्वितीया—सहि, मए वि एअं चिंदिदं[6] एव्व । चंद एव्व खु चंदिमाए संभाविज्जइ । [सखि, मयाप्येतच्चिन्तितमेव । चन्द्र एव खलु चन्द्रिकायाः[7] संभाव्यते ।]

---

1 D सा हु. *2* B C D have तहि after अहं. *3* D धारिस्सिदि. *4* D तेळ्ळोक्क. *5* D पळ्हाद. *6* D चिंतिदं. *7* D चंद्रिकया.

विदूषकः—वअस्स, सुणाहि सुणाहि। जह मए कहिअं तह एव्व एओओ भणंति। [वयस्य, शृणु शृणु। यथा मया कथितं तथैवैते भणतः।]

पवनंजयः—को नामाध्यवसितुमीष्टे। दुरवगाहा[2] हि भागधेयानां परिपाकाः।

प्रथमा—सहि, गच्छ तुमं। अहं वि भट्टिदारिआए पासपरिवट्टिणी होमि। [सखि, गच्छ त्वम्। अहमपि भर्तृदारिकायाः पार्श्वपरिवर्तिनी भवामि।]

द्वितीया—तह। [तथा।] (निष्क्रान्ता।)

मधुकरिका—जाव केलीवणं गच्छेमि। [यावत् केलीवनं गच्छामि।]

(परिक्रामति।)

पवनंजयः—वयस्य, वयमप्यनुपलक्षिता एवास्या अनुपदं गच्छामः।

विदूषकः—तेण हि इदो इदो। [तेन हि इत इतः।] (परिक्रामतः।)

मधुकरिका—एअं वणं, जाव पविसेमि[3]। [एतद्वनं, यावत्प्रविशामि।]

(ततः प्रविशत्यञ्जना सखी च।)

अञ्जना—हंजे वसंतमाले, किं ति तुमं तुण्हिका[4] चिट्ठसि। कहेहि दाव किं वि। [हञ्जे वसन्तमाले, किमिति त्वं तूष्णीका तिष्ठसि। कथय तावत् किमपि।]

वसन्तमाला—जइ एवं, सुणाहि दाव सोदव्वं। [यद्येवं, शृणु तावच्छ्रोतव्यम्।]

अञ्जना—(स्वगतम्) अवहिदम्हि। [अवहितास्मि।]

वसन्तमाला—अत्थि खु वेअड्ढपेरंते विज्जाहरलोए अप्पडिमल्लसिरीअं आइच्चपुरं णाम णअरं। तंसि अ[5] सअलविज्जाहरविधरिअ-

1 D तहं एव्व एदाओ. 2 B C D दुरवबोधाः. 3 B C have the stage-direction नाट्येन प्रविशति. 4 D तुण्णिक्का. 5 D तस्सि च.

चरणो पल्हादो[1] णाम राएसी । तस्स अ पदणी[2] वसुमदीए सह दुदिअपदणीएँ[3] केदुमदी णाम । [अस्ति खलु विजयार्धपर्यन्ते विद्याधरलोके अप्रतिमल्लश्रीकम् आदित्यपुरं नाम नगरम् । तस्मिंश्च सकलविद्याधरविश्रुतचरणः प्रह्लादो नाम राजर्षिः । तस्य च पत्नी वसुमत्या सह द्वितीयपत्न्या केतुमती नाम ।]

अञ्जना—तदो तदो । [ततस्ततः ।]

वसन्तमाला—तेसिं अ तणओ विज्जाहरलोअसलाहेक्कट्ठाणहूदो पवणंजओ णाम । [तयोश्च तनयो विद्याधरलोकश्लाघैकस्थानभूतः पवनंजयो नाम ।]

अञ्जना—(स्वगतम्) कुदो खु एसा तं जणं पत्थावेदि । [कुतः खल्वेषा तं जनं प्रस्तावयति ।]

वसन्तमाला—एदं खु पुण अवरं एत्थ पत्थुदं । अत्थि णादिदूरे पुव्वसाअरस्स संठिअं दंतिपव्वअं अहिवसंतो महिंदसरिसो विज्जाहरराओ महिंदो णाम । [एतत्खलु पुनरपरमत्र प्रस्तुतम् । अस्ति नातिदूरे पूर्वसागरस्य संस्थितं दन्तिपर्वतमधिवसन् महेन्द्रसदृशो विद्याधरराजो महेन्द्रो नाम ।]

अञ्जना—अत्थि । [अस्ति ।]

वसन्तमाला—तस्स महिंदराअस्स अणूरुहदीवणाहविज्जाहरपडिसूरबहिणीए मणोवेआएँ[4] जादा, ओहसिअसअलच्छररूवाए असाहारणीए कंतिलच्छीए अञ्जणा णाम । [तस्य महेन्द्रराजस्य अनूरुहद्वीपनाथविद्याधरप्रतिसूर्यभगिन्यां मनोवेगायां जाता, अपहसितसकलाप्सरोरूपया असाधारण्या कान्तिलक्ष्म्या अञ्जना नाम ।]

अञ्जना—अप्पिअभासिणि अलं दाव[5] मं पसंसिअ । [अप्रियभाषिणि अलं तावन्मां प्रशस्य ।]

1 D पळ्हादो. 2 B C D पदिणी. 3 D पदिणीए. 4 D मणोवेगाए. 5 B C D दाणिं.

वसन्तमाला—जह ट्ठिआ कहा तह एव्व खु कहिदव्वं। [यथा स्थिता कथा तथैव खलु कथयितव्यम्।]

अञ्जना—होदु, तदो। [भवतु, ततः।]

वसन्तमाला—तदो अ सा कण्णआ अण्णाहिं पि सह विज्जाहरकण्णआहिं पुप्फापचयक्खित्तहिअआ सिज्झऊडबाहिरे मंदारवणिअं पविट्ठा। [ततश्च सा कन्या अन्याभिरपि सह विद्याधरकन्यकाभिः पुष्पापचयाक्षिप्तहृदया सिद्धकूटबहिर्मन्दारवनीं प्रविष्टा।]

अञ्जना—हला, किं खु सि तुमं वत्तुकामा। [सखि, किं खल्वसि त्वं वक्तुकामा।]

वसन्तमाला—तदो अ तेण वि पवणंजएण मअरद्धअणिउत्तेण जदिच्छाए तहिं चेअ पविट्ठेण दिट्ठा खु सा ओइअपच्चग्गपुप्फभरिअंजली अंजणा। [ततश्च तेनापि पवनंजयेन मकरध्वजनियुक्तेन यदृच्छया तत्रैव प्रविष्टेन दृष्टा खलु सा अवचितप्रत्यग्रपुष्पभरिताञ्जलिरञ्जना।]

अञ्जना—अलं दाव इमिणा पलविदेण। [अलं तावदनेन प्रलपितेन।]

वसन्तमाला—(सस्मितम्) किं अदो वरं। तुमं चेअ जाणासि। [किमतः परम्। त्वमेव जानासि।]

अञ्जना—(आत्मगतम्) कहं तदा णादहिअअ म्हि इमाए। [कथं तदा ज्ञातहृदयास्मि अनया।]

मधुकरिका—(विलोक्य) एसा खु भट्टिदारिआ। जाव उवसप्पामि। [एषा खलु भर्तृदारिका। यावदुपसर्पामि।] (उपसृत्य) जेदु भट्टिदारिआ। [जयतु भर्तृदारिका।]

अञ्जना—सहि, उवविसेहि। [सखि, उपविश।]

---

1 D पच्चग्गफुळ्ळभ°.

मधुकरिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि । [यद् भर्तृदारिका आज्ञापयति ।] (उपविशति ।)

वसन्तमाला—हला मधुअरिए, किंचि वत्तुकामा विअ लक्खिज्जसि । [सखि मधुकरिके, किंचिद् वक्तुकामेव लक्ष्यसे ।]

अञ्जना—किं तं । [किं तत् ।]

मधुकरिका—दाणिं खु तुह सयंवरूसवत्थं आअदा पवणंजअ-विज्जुप्पह-मेहणादप्पमुहा राअउत्ता । [इदानीं खलु तव स्वयंवरोत्सवार्थमागताः पवनंजय - विद्युत्प्रभ - मेघनादप्रमुखा राजपुत्राः ।]

अञ्जना—(स्वगतम्) कहं सो वि आअदो[1] । [कथं सोऽप्यागतः ।]

(लज्जां नाटयति ।)

वसन्तमाला—सुवो कहं ण लज्जेसि । [श्वः कथं न लज्जसे ।]

विदूषकः—(कर्णं दत्त्वा) वअस्स, समासण्णो इत्थिआराओ[2] । [वयस्य, समासन्नः स्त्रीशब्दः ।]

पवनंजयः—तेन हि कदलीगुल्मान्तरिताः पश्यामः । (उभौ तथा कुरुतः ।)

पवनंजयः—(अञ्जनां दृष्ट्वा) दिष्ट्या दृष्टमिदानीं दर्शनीयम् । (सानुरागम्)

सुकुमारविलासविभ्रमं मदनाराधनसाधनं धनम् ।
मम मूर्तिमदेव जीवितं तदिदं संप्रति संमुखागतम् ॥ ९ ॥

विदूषकः—वअस्स, जं सच्चं तुह एव्व एसा अरिहेदि[3] । [वयस्य, यत्सत्यं तवैवैषा अर्हति ।]

मधुकरिका—भट्टिदारिए, णं दिट्ठपुव्वा तुए सअला राअकुमारा आलेक्खगदा । ता कहेहि दाव कस्सिं उणं[4] महाभाए तुह हिअअं

---

1 D आगओ । 2 D विस्थिआळाओ (chāyā स्त्रियन्नात:). 3 D अरिहिसिदि. 4 D पुण.

उक्कंठेदि । [भर्तृदारिके, ननु दृष्टपूर्वास्त्वया सकलराजकुमारा आलेख्यगताः । तस्मात् कथय तावत् कस्मिन् पुनर्महाभागे तव हृदयमुत्कण्ठते ।]

अञ्जना—(स्वगतम्[1]) कहं चेअ णं जाणिस्सध । [कथमेव ननु ज्ञास्यथः[2] ।] (सलज्जं तूष्णीमास्ते ।)

पवनंजयः—अये, स्थाने खलु स्त्रियं हि नाम लज्जा भूषयति । अस्या हि ।

स्मितेनान्तर्गतं भावमनाख्यातुमिवाक्षमा[3] ।
प्रसाधनान्तरमसौ जाता लज्जेव सुभ्रुवः ॥ १० ॥

वसन्तमाला—सहि महुअरिए, णिगूहिअं[4]भावा भट्टिदारिआ, तुवं खु भाववेदिणी णाडयसुत्तहारिणी । ता किं ति सअं चेअ जाणिदुं ण पहवेसि । [सखि मधुकरिके, निगूढभावा भर्तृदारिका, त्वं खलु भाववेदिनी नाटकसूत्रधारिणी । तस्मात् किमिति स्वयमेव ज्ञातुं न प्रभवसि ।]

मधुकरिका—सहि, सुट्ठु भणिअं । तेण हि पसत्तं[5] इमं सअंवरं नाडअंती अहं चेअ तुह दंसइस्सं । [सखि, सुष्ठु भणितम् । तेन हि प्रसक्तमिमं स्वयंवरं नाटयन्ती अहमेव तव दर्शयिष्यामि ।]

वसन्तमाला—सहि, सुट्ठु भणिअं । [सखि, सुष्ठु भणितम् ।]

मधुकरिका—अहं दाव पीठमद्दिआ मिस्सकेसी होमि । तुमं पुण भट्टिदारिआ होहि । [अहं तावत्पीठमर्दिका मिश्रकेशी भवामि । त्वं पुनर्भर्तृदारिका भव ।]

वसन्तमाला—का दाणिं राअउत्तभूमिआ[6] गण्हंति[7] । [का इदानीं राजपुत्रभूमिका गृह्णन्ति ।]

---

1 D writes सस्मितं on स्वगतं. *2* D जानीथः. *3* A अक्षमम्. *4* D णिगूहिदुभावा. *5* A B C D पविसत्तं. The chāyā in A प्रसक्तम्. *6* B भूमिआओ. *7* C गण्हइति. The chāyā in A का इदानीं राजपुत्रभूमिकां गृह्णाति ।

विदूषकः—एसो एत्थ एक्को संणिहिदो। [एषोऽत्रैकः संनिहितः।]

पवनंजयः—मूर्ख, मा कृथा विस्रम्भलीलाभङ्गम्।

मधुकरिका—सअं उण[1] एसा भट्टिदारिआ एक्को राअउत्तो भविस्संदि[2]। [स्वयं पुनरेषा भर्तृदारिका एको राजपुत्रो भविष्यति।]

वसन्तमाला—के उण अण्णे। [के पुनरन्ये।]

मधुकरिका—एदाओ उण पडिक्खंभसालभंजिआओ। [एताः पुनः प्रतिस्तम्भशालभञ्जिकाः।]

वसन्तमाला—सहि, साहु साहु। कस्स उण राअउत्तस्स भूमिअं गण्हादु[3] भट्टिदारिआ। [सखि, साधु साधु। कस्य पुना राजपुत्रस्य भूमिकां गृह्णातु भर्तृदारिका।]

मधुकरिका—पवणंजअस्स भूमिअं गण्हादु[3] एसा। एदा उण सालभंजिआओ विज्जुप्पहमेहणादप्पमुहाणं। [पवनंजयस्य भूमिकां गृह्णात्वेषा। एताः पुनः शालभञ्जिकाः विद्युत्प्रभमेघनादप्रमुखानाम्।]

वसन्तमाला—सहि, तह। [सखि, तथा।]

अञ्जना—(स्वगतम्) सहि, साहु। (प्रकाशम्) किं ति मं वि आआसेध। [सखि, साधु। (प्रकाशम्) किमिति मामप्यायासयथ।]

उभे—का वा तुमं आआसेदि। गच्छदु[4] होदी विस्सद्धं [का वा त्वामायासयति। गच्छतु भवती विस्रब्धम्।]

(अञ्जना सस्मितमास्ते।)

पवनंजयः—(सहर्षम्) अहमेव तावदिहापि बहु मन्तव्यः। मम हि।

> अयमद्य विनापि संगमादपरः प्राणसमासमागमः।
> यदियं पवनंजयोऽहमित्युपविष्टा स्वयमित्थमञ्जना ॥ ११ ॥

---

1 D पुण. *2* D भविस्सिदि. *3* B C D गण्हदु. *4* D गच्छउ.

विदूषकः—जह मए चिंतिदं तह एव्व एसा वि समत्थेदि त्ति तक्केमि । [यथा मया चिन्तितं तथैवैषापि समर्थयत इति तर्कयामि ।]

वसन्तमाला—सहि, का दाणिं ओसहिमाला । [सखि, केदानी- मोषधिमाला ।]

मधुकरिका—(अञ्जनाया मुक्तावलीमादाय) एसा मुत्तावली ओसहि- माला होदु । [एषा मुक्तावली ओषधिमाला भवतु ।]

वसन्तमाला—सहि, सुट्ठु । किं अदो वरं विलंबिअदि । णाड- आमो दाव । [सखि, सुष्ठु । किमतः परं विलम्ब्यते । नाटयामस्तावत् ।]

मधुकरिका—सहि, तह । [सखि, तथा ।] (संस्कृतमवलम्ब्य) वत्से इतः ।

अञ्जना—अंमो सअं विअ अज्जाए मिस्सकेसीए सरजोओ । [अहो स्वयमिवार्याया मिश्रकेश्याः स्वरयोगः ।]

(कृतकमिश्रकेशी कृतकाञ्जना च परिक्रामतः ।)

कृतकमिश्रकेशी—प्रविष्टाः स्मः स्वयंवरमण्डपम् । (परितो- ऽवलोक्य) अये, स्वयंवरमण्डपस्य परा लक्ष्मीः । तथा हि । इतस्ततः समुच्चलेद्वन्दिवृन्दजयशब्दकोलाहलबहलेन संभ्रान्तप्रतीहारशतकृत- समुत्सारणाघोषकलकलेन प्रारभ्यमाणमङ्गलसंगीतकप्रहतमृदुमृदङ्ग- ध्वनिमन्द्रेण च किंनरीजनोपवीणितवल्लकीगुणझंकृतानुसारिणा विद्या- धरवनितागीतस्वरेण शब्दमय इव जायते श्रवणपथः । वेत्रमया इव लक्ष्यन्ते कक्ष्याः । सिंहासनमया इव दृश्यन्ते रत्नकुट्टिमभूभागाः । उद्धूयमानप्रकीर्णकानिलविप्रकीर्णपटवासचूर्णमय्य इव शोभन्ते दश दिशः । आभरणप्रभाजालमयमिव विभाति गगनतलम् । राजलोक- मय इव संभाव्यते स्वयंवरमण्डपः ।

---

1 D अ॰आए. 2 D समुच्चरन्वंदिवृंद°.

इह हि प्रविश्य मणिमञ्चगताः परिवारिताः परिजनैः परितः ।
अधुना तवैव पुनरागमनं प्रतिपालयन्ति जगतीपतयः ॥ १२ ॥

तत्तावदिमामोषधिमालां गृह्णातु भर्तृदारिका ।

(कृतकाञ्जना सलज्जमादत्ते ।)

कृतकमिश्रकेशी—(हस्तेन प्रतिशालभञ्जिकं निर्दिशन्ती)

नाथोऽयं कोशलानां मगधपतिरसावेष पाञ्चालराजो
वङ्गानां वल्लभोऽयं मलयविभुरयं केकयाधीश्वरोऽयम् ।
एष स्वामी हूणानां कुरुनृपतिरसावेष वल्मीकभूपः[1]
को नामैतेषु वत्से प्रभवति भवितुं सांप्रतं मालभारी ॥ १३ ॥

(कृतकाञ्जना तूष्णीं तिष्ठति ।)

कृतकमिश्रकेशी—(अन्यतो गत्वा नाट्येन शालभञ्जिकां निर्दिश्य)

निखिलखचरयूथोन्माथिनो रावणस्य
प्रियतनय इहायं रक्षसामीश्वरस्य ।
निजभुजबलहेलानिर्जितारातिचक्रः
पितृवदनविभाव्यप्राभवो मेघनादः ॥ १४ ॥

(कृतकाञ्जना तूष्णीं तिष्ठति ।)

कृतकमिश्रकेशी—(अन्यतो गत्वा नाट्येन शालभञ्जिकां निर्दिश्य)

एष विद्युत्प्रभो नाम हिरण्यप्रभुनन्दनः ।
विद्याधरेषु विख्यातो विश्वविद्याविशारदः ॥ १५ ॥

(कृतकाञ्जना तूष्णीं तिष्ठति ।)

कृतकमिश्रकेशी—(अन्यतो गत्वा सस्मितमञ्जनां निर्दिश्य)

अव्याजसुन्दरवपुः प्रभवो गुणानां
श्लाघास्पदं भगवतो मकरध्वजस्य ।

---

1 A C चाल्मीकभूपः, B चावल्मीकभूपः, D बाल्मीकभूपः.

किंवा बहुप्रलपितेन तवैव योग्यः
प्रह्लादराजतनयः पवनंजयोऽयम् ॥ १६ ॥

(कृतकाञ्जना सलज्जं सानुरागं च अञ्जनायाः कण्ठे हारलताम् आमुञ्चति ।)

अञ्जना—(सस्मितम् आत्मगतम्) साहु, वसंतमाले, साहु । [साधु वसन्तमाले, साधु ।]

पवनंजयः—(सहर्षम्) साधु भद्रे, साधु ।

विदूषकः—साहु । [साधु ।]

मधुकरिका—साहु, सहि वसंतमाले, साहु ओगाहिअं खु तुए भट्टिदारिआए हिअअं । [साधु, सखि वसन्तमाले, साधु अवगाहितं खलु त्वया भर्तृदारिकाया हृदयम् ।]

वसन्तमाला—णं भट्टिदारिआए भट्टिणो भूमिअं दत्ती तुमं चेअ मे एत्थ गुरू । [ननु भर्तृदारिकाया भर्तृभूमिकां दधती त्वमेव मेऽत्र गुरुः ।]

अञ्जना—(सस्मितम्) ओगाहिअं किर[1] मे हिअअं । [अवगाहितं किल मे हृदयम् ।]

उभे—कहं णावगाहिअं । पढमं दाव मंदारवणिआए[2] विण्णादं । दाणिं पुण संजादसेदुग्गमेहि पुलइएहि अंगेहि परिप्फुडं ते साणुराअं हिअअं । [कथं नावगाहितम् । प्रथमं तावन्मन्दारवनिकायां विज्ञातम् । इदानीं पुनः संजातस्वेदोद्गमैः पुलकितैरङ्गैः परिस्फुटं ते सानुरागं हृदयम् ।]

पवनंजयः—साधु खल्वनुमीयते हृदयम् । तथा हि

स्वेदजलविसरसेकादङ्कुरितान्तर्गतानुरागेव ।
इयमङ्गयष्टिरस्या रोमोद्भेदं समुद्वहति ॥ १७ ॥

अञ्जना—(सस्मितम्) किं णाम दुरवगाहं हिअअणिव्विसेसस्स सहीजणस्स[3] । [किं नाम दुरवगाहं हृदयनिर्विशेषस्य सखीजनस्य ।]

1 D किर. 2 D °वणिआअं. 3 D सहिअणस्स.

विदूषकः—वअस्स, किं अवरं इह ट्ठियदि । एहि, उवसप्पम्ह । [वयस्य, किमपरमिह स्थीयते । एहि[1], उपसर्पावः ।]

पवनंजयः—यथाह वयस्यः ।

(उपसर्पतः ।)

वसन्तमाला—किं बहुणा । अण्णं सव्वं सज्जं । पवणंजओ खु एत्थ चिराअदि । [किं बहुना । अन्यत् सर्वं सज्जम् । पवनंजयः खल्वत्र चिरायते ।]

विदूषकः—ण खु चिराअदि । एस णं तुवरेदि[2] । [न खलु चिरायते । एष ननु त्वरते ।]

(अञ्जना दृष्ट्वा सलज्जमुत्थायान्यतो गच्छति ।)

वसन्तमाला मधुकरिका च—(दृष्ट्वा) अम्मो[3] भट्टा । (उपसृत्य) जेदु भट्टा । [अहो भर्ता । (उपसृत्य) जयतु भर्ता ।]

पजनंजयः—(मधुकरिकां प्रति सस्मितम् अञ्जनां वसन्तमालां च निर्दिश्य) आर्ये मिश्रकेशि, किमयं पाणिग्रहणमहोत्सवसमनन्तरे पवनंजयस्य अंजनामपहाय गन्तुं समयः ।

सर्वाः—(स्वगतम्) कहं इमिणा आदिदो पहुदि सव्वं ओलोइदं । [कथमनेन आदितः प्रभृति सर्वमवलोकितम् ।]

मधुकरिका—(सस्मितम्) तेण हि हत्थे गण्हिअ वारेहि णं । [तेन हि हस्ते गृहीत्वा वारयैनाम् ।]

पवनंजयः—यथाह भवती । (अञ्जनामुपसृत्य, हस्ते गृहीत्वा, सस्मितम्)

इतस्त्वया गन्तुमयुक्तमित्थमिमं जनं प्राणसमं विहाय ।
नन्वञ्जना नाम मनोरथानां विहारभूमिः पवनंजयस्य ॥ १८ ॥

अञ्जना—(स्वगतम्) अम्मो गंभीरदा वअणस्स । [अहो गम्भीरता वचनस्य ।]

---

1 D एध्व. 2 B C D add पवणंजओ हि after तुवरेदि. 3 D अम्हो.

मधुकरिका वसन्तमाला च—(सस्मितम्) जुत्तं खु भणिदं भट्टिणा। [युक्तं खलु भणितं भर्त्रा ।]

विदूषकः—संवुत्तो पाणिग्गहणमहूसवो । [संवृत्तः पाणिग्रहणमहोत्सवः ।]

(नेपथ्ये)

इत इतो भर्तृदारिका। अतिक्रामति मज्जनवेला। तदिदानीं कन्यान्तःपुरमेव तावदागन्तव्यम्। प्रतिपालयन्ति च ते सर्वा एव प्रसाधनहस्ता जनन्यः ।

वसन्तमाला—तुवरदु भट्टिदारिआ । एसा खु अज्जा मिस्सकेसी सद्दावेदि । भट्टा, मुंच दाणिं हत्थं । कल्लं चेअ णं गण्हिस्सिसि । [त्वरतां भर्तृदारिका । एषा खलु आर्या मिश्रकेशी शब्दापयति । भर्तः, मुञ्चेदानीं हस्तम् । कल्यमेव ननु ग्रहीष्यसि ।]

पवनंजयः—यथाह भवती । (सामिलाषं मुञ्चति ।)

उभे—इदो इदो भट्टिदारिआ । [इत इतो भर्तृदारिका ।]

(सर्वाः परिक्रम्य निष्क्रान्ताः ।)

पवनंजयः—(तन्मार्गदत्तदृष्टिः सोत्कण्ठम्) कथं गतामपि प्रियां साक्षात्करोतीव प्रौढस्मृतिः[1] । तथा हि

अद्यापि गृह्णति करं मयि सा सलज्ज-
मात्मानमन्तरयतीव सखीजनेन ।
यान्ती च किंचन कुतोऽपि विलम्बमाना
सव्याजमत्र चलितां हरतीव दृष्टिम् ॥ १९ ॥

विदूषकः—वअस्स, एसो खु आरूढो णहमज्झं घम्मंसू, अदिक्कामदि अ भोअणवेला, ता वअंपि गच्छम्ह । [वयस्य, एष खल्वारूढो नभोमध्यं घर्मांशुः, अतिक्रामति च भोजनवेला, तस्माद्वयमपि गच्छामः ।]

---

1 D प्रौढा स्मृतिः.

पवनंजयः—यद्भवते[1] (निर्वर्ण्य) अये प्राप्तो मध्याह्नः । संप्रति हि

सरसि जलविहङ्गास्तीरजानां तरूणां
जलमपहततापं छायया संश्रयन्ति ।
अविदलितकलापा बर्हिणः प्राप्य तन्द्री-
मुपवनतरुशाखावासयष्टीर्भजन्ते ॥ २० ॥

(परिक्रम्य[2] निष्क्रान्तौ ।)

इति श्रीहस्तिमल्लेन विरचितेऽञ्जनापवनंजयनामनाटके[3] प्रथमोऽङ्कः ।

द्वितीयोऽङ्कः[4] ।

(ततः प्रविशति वसन्तमाला ।)

वसन्तमाला—अम्हो महाराअपल्हादस्स[5] राअधाणीए असाहा-रणं रामणिज्जअं । किं बहुणा खु विज्जाहरलोअस्स एअं आइस्सरं अलंकारं[6] वण्णंति[7] । जेण तं वि णाम अमरावईपडिमं महिंदराअ-धाणिं विसुमरिअ अम्हे एत्थ सुहं णिवसामो । अम्हो[8] भट्टिणो बंधुजणस्स दक्खिण्णं, जेण अम्हे वि दाव भट्टिदारिआसरिसं संभाविद म्ह । चिट्ठदु दाव एदं । तं खु विसेसदो विम्हअणिज्जं भट्टिदारिआए सअंवरदिणे सुसरिसो खु एसो इमाणं समाअमो त्ति सअलेण वि राअलोएण पडिऊलदं मोत्तूण संभाविदो भट्टा,

---

1 Thus A B C. Obviously the verbal form रोचते is missing. D adds रोचते above the line. *2* D परिष्क्राम्य. *3* D °चितमंजना...यं नाटके प्र°. *4* B C नमः सिद्धेभ्यः । A adds अथ before द्वितीयोऽङ्कः । D omits द्वि°. *5* D पल्लहादस्स. *6* B C omit अलंकारं. *7* D वण्णेंति. *8* D अहो.

भट्टिदारिआ अ । अहवा को[1] भट्टिणो पडिऊलो होदु पभवदि । ण खु कदाइ राअसिंहो करिकलहेहिं अहिजुत्तो हवे । सव्वहा महाभाआ भट्टिदारिआ । किं अवरं एत्थ आसंघिअदि । भट्टिणा अविरहिदं सुइरं[2] वड्ढदु । (परिक्रम्य) कहिं दाणिं वट्टइ भट्टा । (पुरो विलोक्य) अम्हो किं एदं एत्थ णिसण्णं । [अहो महाराजप्रह्लादस्य राजधान्या असाधारणं रामणीयकम् । किं बहुना खलु विद्याधरलोकस्यैतदादित्यपुरम् अलंकारं वर्णयन्ति । येन तामपि नाम अमरावतीप्रतिमां महेन्द्रराजधानीं विस्मृत्य वयमत्र सुखं निवसामः । अहो भर्तुर्बन्धुजनस्य दाक्षिण्यं, येन वयमपि तावद् भर्तृदारिकासदृशं संभाविताः स्मः । तिष्ठतु तावदेतत् । तत्खलु विशेषतो विस्मयनीयं भर्तृदारिकायाः स्वयंवरदिने सुसदृशः खल्वेषोऽनयोः समागम इति सकलेनापि राजलोकेन प्रतिकूलतां मुक्त्वा संभावितो भर्ता, भर्तृदारिका च । अथवा को भर्तुः प्रतिकूलो भवितुं प्रभवति । न खलु कदाचिद् राजसिंहः करिकलभैरभियुक्तो भवेत् । सर्वथा महाभागा भर्तृदारिका । किमपरमत्राशास्यते । भर्त्रा अविरहितं सुचिरं वर्धताम् । (परिक्रम्य) कुत्रेदानीं वर्तते भर्ता । (पुरो विलोक्य) अहो किमेतदत्र निषण्णम् ।]

(ततः प्रविशति[3] उपविष्टो विदूषकः ।)

विदूषकः—होदि वसंतमाले । [भवति वसन्तमाले ।]

वसन्तमाला—कहं [4]अज्जप्पहसिदो । [कथमार्यप्रहसितः ।]

(उपसर्पति ।)

विदूषकः—होदि, किंति मं अणवेक्खिअ[5] गच्छसि । [भवति, किमिति मामनवेक्ष्य गच्छसि ।]

वसन्तमाला—(सस्मितम्) ण खु[6] दिट्ठो मए अज्जो, इमिणा मुअंगसंणिहेण[7] तुह कुच्छिणा अंतरिओ । [न खलु दृष्टो मया आर्यः, अनेन मृदङ्गसंनिभेन तव कुक्षिणा अन्तरितः ।]

---

1 B C add वा after को. *2* D सइरं. *3* B C प्रविश्य. *4* A B C अज्जअप्पहसिदो. The word अज्ज (आर्य) is almost always written in these Mss. as अज्जअ. *5* C अणदिक्खिअ. D अणपेक्खिअ. *6* D हु. *7* D मुइंग.

विदूषकः—दासीए धूदे, किं तुम्हाणं विअ खामं खामं मह वि उदरं। [दास्याः पुत्रि, किं युष्माकमिव क्षामं क्षामं ममाप्युदरम्।]

वसन्तमाला—का वा अम्हे तुमे सारिच्छं[1] लद्धुं। अज्ज चिट्ठदु एअं। कीस भवं एत्थ खुं[2] उवविट्ठो चिट्ठइ। [का वा वयं त्वया सादृश्यं लब्धुम्। आर्य तिष्ठत्वेतत्। कस्माद् भवानत्र खलूपविष्टस्तिष्ठति।]

विदूषकः—होदि, वअस्सस्स अण्णाए[3] तत्तहोदिं सद्दावेदुं आअच्छंदो इमिणा दुब्भरेण जडरभारेण अक्कंदो[4] एत्थ मुहुत्तं[5] विस्समिदुं उवविट्ठो चिट्ठामि[6]। [भवति, वयस्यस्याज्ञया तत्रभवतीं शब्दापयितुमागच्छन् अनेन दुर्भरेण जठरभारेणाक्रान्तोऽत्र मुहूर्तं विश्रमितुमुपविष्टस्तिष्ठामि।]

वसन्तमाला—अज्ज, कुदो एदं अज्ज सविसेसं पउड्ढं दुप्पूरं ते उदरं। (सस्मितम्) किं महोअरं आदु गब्भो। [आर्य, कुत एतदद्य सविशेष प्रवृद्धं दुष्पूरं[7] त उदरम्। (सस्मितम्) किं महोदरम् अथवा गर्भः।]

विदूषकः—दे कुंभदासि, मा एव्वं। अदीदे खु दाव णिसीहे मए वि णिद्दक्खिण्णेण तत्तहोदीए सहत्थदिण्णेहि सत्थिवाअणचक्कुलेहि आअलं पूरिओ एस कुच्छी। अज्ज उण पच्चूसे भट्टिणीए[8] अंतेउरे जीरअमरिअभूइट्ठं भक्खिअं दहिमिस्सं पादरासं। तुमं उण दाणिं कहिं गमिस्ससि[9]। [अये कुम्भदासि, मा एवम्। अतीते खलु तावन्निशीथे मयापि निर्दाक्षिण्येन तत्रभवत्या स्वहस्तदत्तैः स्वस्तिवाचनशष्कुलीभिरागलं[10] पूरित एष कुक्षिः। अद्य पुनः प्रत्यूषे भट्टिन्या[11] अन्तःपुरे जीरकमरिचभूयिष्ठो भक्षितो दधिमिश्रः प्रातराशः। त्वं पुनरिदानीं कुत्र गमिष्यसि।]

---

1 D सारिक्खं. *2* D हु. *3* B C अणाए. *4* D भारेणक्कंतो. *6* D मुहुत्तअं. *6* D चिट्ठेमि. *7* chāyā in A दुष्पारम्. *8* D°ए केदुमदीए अंते°. *9* D गमिस्सिसि. *10* D शष्कुलैरा°. *11* D °न्या केतुमत्या अ°.

वसन्तमाला—अज्ज, दाणिं कहिं वट्टेइ भट्टेत्ति[1] जाणिदुं कुमार-भवणं गच्छेमि । [आर्य, इदानीं क वर्तते भर्तेति ज्ञातुं कुमारभवनं गच्छामि ।]

(नेपथ्ये)

उद्यानाध्यक्षौ—भो भोः सर्वेऽपि तावदुद्यानाधिकृताः पुरुषाः शृण्वन्तु भवन्तः ।

प्रथमः—

रचयत[2] मणिशालभञ्जिकानां स्तनकलशेषु विलेपनानि भूयः ।
सरसमलयजच्छटाभिराशु प्रमदवनान्तरचित्रमण्डपेषु ॥ १ ॥

किं च[3] ।

उपवनसरसीनां तीरभागाङ्गणेषु
द्रुतमिह पुलिनानि स्वैरमापादयध्वम् ।
अविरलमतिमात्रोन्मिश्रकर्पूरचूर्णैः
स्फुटितदलपुटानां केतकीनां रजोभिः ॥ २ ॥

द्वितीयः—

मरकतमणिकुट्टिमस्थलेषु प्रतिनवकुङ्कुमपङ्कपत्रभङ्गान् ।
विलिखत सविशेषदर्शनीयानुपवनपादपपादवेदिकासु ॥ ३ ॥

अपि च ।

सुरभिकुसुमगन्धोद्गारिवारिप्रवाह-
प्लुतपरिसरबालाशोकमालालवालाः[4] ।
सपदि कृतककुल्याः साधु सज्जीक्रियन्तां
द्रुतशशिमणितुल्या यन्त्रधारागृहेषु ॥ ४ ॥

---

1 B C D भट्टो त्ति. 2 A B C रचयतु. 3 B C D अपि च. 4 B C °मूलालवालाः.

(उभावाकर्णयतः ।)

वसन्तमाला—अज्ज, किं एदं । [आर्य, किमेतत् ।]

विदूषकः—दाणिं खु तत्तहोदीसहिदो[1] पिअवअस्सो पमदवण-मज्झे बउलुज्जाणं पविसदि त्ति उज्जाणज्झक्खेहिं[2] सज्जीकरीअदि सव्वा पमदवणभूमी । ता अविलंबिअं गदुअ तुमं तहिं चेअ तत्त-होदिं आणेहि । अहमवि[3] पिअवअस्सस्स पासं गमिस्सं । [इदानीं खलु तत्रभवतीसहितः प्रियवयस्यः प्रमदवनमध्ये बकुलोद्यानं प्रविशतीति उद्याना-ध्यक्षैः सज्जीक्रियते सर्वा प्रमदवनभूमिः । तस्माद् अविलम्बितं गत्वा त्वं तत्रैव तत्रभवतीमानय । अहमपि प्रियवयस्यस्य पार्श्वे गमिष्यामि ।]

वसन्तमाला—अज्ज, तह । [आर्य, तथा ।] (निष्क्रान्तौ ।)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति पवनंजयः ।)

पवनंजयः—अये, नववधूसमागमोत्सवो नाम कामि[4]जनमनःसमा-वर्जनैकरसो मदनस्य रसान्तराभिनिवेशः । संप्रति हि

अस्पष्टैरवलोकितैरविकसद्दन्तांशुभिश्च स्मितै-
स्तैस्तैर्मन्मन[5]भाषितैश्च मधुरैरर्धावशिष्टाक्षरैः ।
भूयः प्रार्थितलम्भितैश्च ललितैरालिङ्गनैर्विश्लथै-
र्व्रीडां नातिजहाति नातिभजते विस्रम्भमप्यञ्जना ॥ ५ ॥

किमत्र बहुना । स्वभावतो हि नवसमागमः स्वयमेव कामिनी-नामनावेद्यान् उद्भावयति भावान् । तथा हि

उत्थानैर्मम संनिधौ स्तनभराक्रान्तिक्रम[6]क्लेशितैः
स्वेदोद्भेदपुरस्सरैरविरलैः स्पर्शेषु रोमाञ्चितैः ।

---

1 After तत्तहोदीसहिदो B has a big lacuna extending as far as तत्तहोदिं पडिवालेम्ह, on p. 27, fourth line. 2 A C D उज्झाणक्खेहिं. 3 D अहं वि. 4 C कविजन°. 5 C मन्मथ°. 6 Thus A C; it should have been °क्रम°.

सव्याजान्तरितैः सखीभिरलसन्यस्तैश्च गन्तुं पदै-
रन्यामेव दशां महेन्द्रसुतया चेतो ममारोप्यते ॥ ६ ॥

(विचिन्त्य[1]) ननु निशावसानसमय एव वयं वासभवनान्निर्गताः । अद्य च

रविः प्रासादाग्रे घनखचितजाम्बूनदमये
गतप्रायं जातं[2] द्विगुणयति बालातपगुणम् ।
असौ सौधान् सौधं विहरति च पारावतगणः
प्रवृत्ताश्च प्रेक्षाभवनमुखवः केलिशिखिनः ॥ ७ ॥

न चायमल्पीयानपि कालः प्रियाविरहेणातिवाहयितुं पार्यते । मम हि

नेत्रे तस्या वदनकमलप्रेक्षणौत्सुक्यशीले
हस्तौ भूयः स्तनतटयुगक्रीडनैकान्तलोलौ ।
स्कन्धाभोगौ[3] हठभुजलतारोपणाराधनीयौ
नालं चेतः क्षणमपि विना वर्तितुं पक्ष्मलाक्ष्याः ॥ ८ ॥

(विभाव्य) प्रभात एव हि प्रियामाह्वातुं मत्सकाशात् प्रस्थितो वयस्यः प्रहसितः, तत् कुतस्तावदद्यापि विलम्बते ।

(प्रविश्य)

विदूषकः—एसो खु पिअवअस्सो मह[5] एव्व आअमणं पडिवालेंतो कंचणवल्लीए उवविट्ठो चिट्ठइ । जाव उवसप्पामि । (उपसृत्य[6]) जेदु पिअवअस्सो । [एष खलु प्रियवयस्यो ममैवागमनं प्रतिपालयन् काञ्चनवल्ल्याम् उपविष्टस्तिष्ठति । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) जयतु प्रियवयस्यः ।]

पवनंजयः—वयस्य, किम् आगता दयिता ।

---

1 C omits the stage-direction. *2* A चायाद्विगुणयति. D चायं for जातं *3* C स्कन्धौ भागे. *4* A हर°. *5* D मम. *6* After the stage-direction उपसृत्य, C has a lacuna extending up to पवनंजयः-प्रविशाग्रतः, below.

विदूषकः—वअस्स बउलुज्जाणम्मि आअमिस्सदि । तेहिं[1] चेअ गच्छम्ह । [वयस्य बकुलोद्यान आगमिष्यति । तत्रैव[2] गच्छामः ।]

पवनंजयः—(उत्थाय) तेन हि प्रमदवनमार्गमादिश ।

विदूषकः—इदो इदो पिअवअस्सो । [इत इतः प्रियवयस्यः ।]

(परिक्रामतः ।)

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) एदं[3] पमदवणदुवारअं, जाव पविसदु वअस्सो । [एतत् प्रमदवनद्वारं, यावत् प्रविशतु वयस्यः ।]

पवनंजयः—प्रविशाग्रतः । (उभौ प्रविशतः ।)

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य) अहो नु खलु भोः प्रत्यग्रविघटितस्थलकमलिनीकुसुमषण्डविगलितबहलासवसेचितभूभागस्य[4] शुद्धान्तमुग्धसुन्दरीस्वयंसेकसंवर्धितबालमन्दारवृक्षस्य समधिकमधुपानलम्पटमधुकरकदम्बकविनि[5]र्कीर्यमाणनवविकसितं[6]सहकारकुसुमस्तबकनिकुरुम्बसमुत्पतन्मकरन्दरजःपटलपाटलितगगनाङ्गणस्य मदकलकोकिलकुल[7]कूजितकोलाहलसततप्रतिबुद्धमकरकेतनस्य ललितविलासिनीजनवामचरणनलिनताडनोपलालनसमुद्भिद्यमाननिरन्तरकुसुमगुच्छपुलकितरक्ताशोकपादपस्य मदभरमन्थरशुकसारिकाकलापपेशलतरुशिखरस्य[8] सुखशीतलमन्दानिलविलुलितहिमजलकणिका[9]र्द्रार्द्रस्पर्शस्य मधुसमयावतारमनोहरस्य सविशेषरमणीयता प्रमदवनस्य । इह हि

नीरन्ध्रं कर्णिकारै[10]श्च्युतकुसुमरजोरञ्जिताभोगभागाः
संवृत्ताः पादवेदीस्फटिकमणितटाजातसौवर्णशोभाः ।

---

1 D ता तहिं. *2* D तस्राद् त°. *3* D एअं. *4* C °बहुपरिमला (lacuna) भूभागस्य, D विगळितबहुपरिमलासवसेकित. *5* C drops the preposition नि. *6* A °विकसत्. *7* C drops कुल. *8* C °वरस्य for शिखरस्य. *9* C °कणिकार्द्र· स्पर्शस्य. *10* Thus A C; it should have been कर्णिकाराः.

वृन्तोद्भ्रान्तैः प्रसूनैः स्वयमुपरचिताश्चारुरत्नस्थलेषु[1] ।
क्रीडासंभोगशय्या दिशि दिशि च लतामण्डपाभ्यन्तरेषु ॥ ९ ॥

विदूषकः—एदं बउलुज्जाणदुवारं । एत्थ एव उवविसिअ तत्तहोदिं पडिवालेम्ह । [एतद् बकुलोद्यानद्वारम् । अत्रैवोपविश्य तत्रभवतीं प्रतिपालयामः ।]

पवनंजयः—यथार्ह[2] भवान् ।

(उभावुपविशतः ।)

पवनंजयः—कच्चिदियता कालेन प्रमदवनभूमिमवगाहेत महेन्द्रदुहिता । (विचिन्त्य) इह खलु कामिनां हृदयेषु क्रमादुत्कण्ठासहस्रबद्धाम् अजस्रं सोपानपरिपाटीमधिरोहति मदनः । तथा हि

भवति ललनां चेतः श्रुत्वा विलोकनसत्वरं
तदनु भजते दृष्ट्वा चिन्तां समागमशंसिनीम् ।
पुनरविरहोपायं[3] वाञ्छत्यवाप्य समागमं
प्रतिपदमसौ कामोन्मादः क्रमेण विवर्धते ॥ १० ॥

(कर्णं दत्त्वा) कथं प्राप्तैव प्रिया ।

श्रूयते तदिदं मञ्जुमणिमञ्जीरसिञ्जितम् ।
प्रवेशमङ्गलातोद्यरवस्तस्या यथोचितः ॥ ११ ॥

(ततः प्रविशत्यञ्जना वसन्तमाला च ।)

वसन्तमाला—इदो इदो भट्टिदारिआ । [इत इतो भर्तृदारिका ।]

(परिक्रामतः ।)

विदूषकः—कहं आअदा तत्तहोदी[4] । [कथम् आगता तत्रभवती ।]

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य)

---

1 C °स्थलीषु. 2 D यद्यार्ह. 3 A B C पुनरपि रहोपायम्. 4 B C D अत्तहोदी.

मञ्जीरक्वणितविलोभनेन हंसै-
र्निःश्वासानिलसुखसौरभेण भृङ्गैः ।
काञ्चीनिस्वनितरसेन सारसैश्च
प्राप्तेयं प्रमदवनाधिदेवतेव ॥ १२ ॥

विदूषकः—वअस्स, उट्ठेदु भवं, जाव वउलुज्जाणं पविसम्ह । [वयस्य, उत्तिष्ठतु भवान्, यावद् बकुलोद्यानं प्रविशावः ।]

पवनंजयः—यथाह भवान् । (उत्तिष्ठतः ।)

विदूषकः—(उपसृत्य) सोत्थि होदीए । [स्वस्ति भवत्यै ।]

वसन्तमाला—(उपसृत्य) जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

पवनंजयः—(अञ्जनां हस्ते गृहीत्वा) प्रिये, इत इतः ।

(सर्वे परिक्रामन्ति ।)

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य) प्रिये, पश्य बकुलोद्यानस्य परां लक्ष्मीम् । तथा हि

पुष्पैरद्य बिभर्ति बालबकुलो विद्याधरीणामसौ
गण्डूषासवसेकदोहलरसास्वादेन[1] तत्सौरभम् ।
आर्द्रालक्तकरञ्जितेन चरणाम्भोजेन संभावितो
रक्ताशोकतरुर्दधाति कुसुमैस्तद्रागशोभागुणम् ॥ १३ ॥

वयस्य, चित्रमण्डपमेव यास्यामः । तदिदानीं तस्यैव पादफलक-[2]मार्गमादिश ।

विदूषकः—इदो । [इतः ।] (परिक्रामन्ति ।)

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) वअस्स, एसो चित्तमंडवो । जाव उवसप्पम्ह । [वयस्य, एष चित्रमण्डपः । यावदुपसर्पामः ।]

---

1 A C रसस्वादेन. 2 B °पादफलमार्गम्.

(सर्वे प्रवेशं रूपयन्ति ।)

वसन्तमाला—भट्टा, एअं खु णवविअलिअबउलपुप्फपराअ-सच्छदुऊलपच्छदसणाहं सअणिज्जं । जाव इमं अलंकरेदु भट्टा । [भर्तः, एतत्खलु नवविदलितबकुलपुष्पपरागस्वच्छदुकूलप्रच्छदसनाथं शयनीयम् । यावदिदम् अलङ्करोतु भर्ता ।]

([2]सर्वे यथोचितमुपविशन्ति ।)

पवनंजयः—(स्पर्शं रूपयित्वा)

असौ सद्यःपुष्यद्बकुलमुकुलोद्गीर्णमदिरा-[3]
कणाहारी हारी मधुपवनितागीतमधुरः ।
श्रमं मुष्णानस्ते सपदि गमनायासजनितं
प्रिये मन्दं मन्दं मलयपवनो वाति शिशिरः ॥ १४ ॥

विदूषकः—घुम्मंति विअ अच्छिणी इमस्स सुहसेव्वदाए पदेसस्स । [घूर्णेते इवाक्षिणी अस्य सुखसेव्यतया प्रदेशस्य ।]

वसन्तमाला—(दृष्ट्वा, सहासम्) भट्टा, एसो दाणिं अज्जप्पहसिदो आसीणप्पचलाइदेण मंदुरामक्कडअलीलं विडंबेदि । [भर्तः, एष इदानीम् आर्यप्रहसित आसीनप्रचलायितेन मन्दुरामर्कटलीलां विडम्बयति ।]

(अञ्जना पवनंजयश्च सस्मितं पश्यतः ।)

वसन्तमाला—किं एसो परं आआसे रोमंथं अब्भस्सदि । [किमेष परम् आकाशे रोमन्थमभ्यस्यति ।]

विदूषकः—(स्वप्नायते) अत्तहोदि, रसाला खु एदे मोदआ । [अत्रभवति, रसालाः खल्वेते मोदकाः ।]

(सर्वे हसन्ति ।)

---

1 D वउळफुल्लवराअ°. *2* B and C add the following before this stage-direction : पवनंजयः—प्रिये उपविश्यताम् । *3* B °दीर्ण°. *4* The chāyā in A reads निद्रायेते इव.

विदूषकः—(निपतन् प्रतिबुध्योपविश्य च सवैलक्ष्यम्) वअस्स, किं अकारणे हसिज्जइ । [वयस्य, किम् अकारणे हस्यते ।]

पवनंजयः—(सस्मितम्) न खलु किंचित् ।

वसन्तमाला—(सहासम्) अले कविलमक्कडअ, सिविणए वि मोदआइ ण विस्सरसि । [अरे कपिलमर्कटक, स्वप्नेऽपि मोदकान् न विस्मरसि ।]

विदूषकः—(सकोपम्) वअस्स, एसा दासीए धूदा तुम्हाणं पि अग्गदो मं अदिक्खिवदि । ता किं इह ट्ठिएण । (ससंरम्भमुत्तिष्ठति ।) [वयस्य, एषा दास्यादुहिता युवयोरप्यग्रतो माम् अधिक्षिपति । तस्मात् किमिह स्थितेन ।] (ससंरम्भमुत्तिष्ठति ।)

अञ्जना—(सस्मितम्) अज्ज, मा मा एव्वं कुण । अविणीदा² खु एसा, जाव खमिज्जउ । [आर्य, मा मैवं कुरु । अविनीता खल्वेषा, यावत् क्षम्यताम् ।]

पवनंजयः—वयस्य, ननु प्रिया निवारयति ।

(विदूषकोऽशृण्वन्निव सत्वरमपसरति ।)

वसन्तमाला—हुं, कुविओ गओ अज्जप्पहसिओ, जाव गदुअ पसादेमि णं । (विदूषकमुपसृत्य) अज्ज, मा मा कुप्पेहि । [हुं, कुपितो गत आर्यप्रहसितो, यावद् गत्वा प्रसादयाम्येनम् । (विदूषकमुपसृत्य) आर्य, मा मा कुप्य ।]

विदूषकः—होदि, ण खु दाव कुप्पेमि, जइ मे णिद्दाभंगं ण कुणसि । [भवति, न खलु तावत् कुप्यामि, यदि मे निद्राभङ्गं न करोषि ।]

वसन्तमाला—जं अज्जस्स रोअदि । [यद् आर्याय रोचते ।]

विदूषकः—जाव अहं इमस्सिं बउलवेदिआए णिद्दावेमि । [यावदहमस्यां बकुलवेदिकायां निद्रां करोमि ।]

---

1 C drops this stage-direction. 2 B अविणादा, C अविणदा.

वसन्तमाला—अज्ज तह । अहं वि इदो तदो मलआणिलं सेवेमि । [आर्य तथा । अहमपि इतस्ततो मलयानिलं सेवे ।]

विदूषकः[1]—होदि वसंतमाले, भाएमि[2] अहं इह एकाई[3] सोविदुं । ता तुए ण दूरं अवक्कमिदव्वं । [भवति वसन्तमाले, बिभेमि अहमिह एकाकी स्वपितुम् । तस्मात् त्वया न दूरमपक्रमितव्यम् ।]

वसन्तमाला—(सस्मितम्) अज्ज, तह करिस्सं । विस्सद्धं[4] सआहि । (निष्क्रान्ता) [आर्य, तथा करिष्यामि । विस्रब्धं शयीथाः ।]

(विदूषको निद्रायते ।)

पवनंजयः—हुं प्रिये, विविक्तरमणीयोऽयं देशः । तदिदानीमपि स्वैरविस्रम्भरोधिनि व्रीडारसे कोऽयमत्यायतोऽभिनिवेशः । (अञ्जना लज्जां नाटयति ।)

पवनंजयः—(सानुरोधम्)

आलिङ्गनाय न ददासि कुतस्त्वमङ्गा-
न्यापातुमर्पयसि नैव किमाननेन्दुम् ।
दृष्टिं मदीक्षणपथे न करोषि कस्मा-
न्नाभाषसे किमिति देवि निरुद्धकण्ठा ॥ १५ ॥

(नेपथ्ये महान्[5] कलकलः)

विदूषकः—(ससंभ्रमं प्रतिबुध्योत्थाय) अविह अविह[6] वसंतमाले । [अवत अवत वसन्तमाले ।]

(प्रविश्य संभ्रान्ता)

वसन्तमाला—अज्ज, मा भआहि । [आर्य, मा भैषीः ।]

अञ्जना—(ससंभ्रमम्) हुं किं एदं[7] । [हुं किमेतत् ।]

---

1 B C D add before this, the following: विदूषकः—होदि तह । (वसन्तमाला अपक्रामति ।). *2* D भाआमि. *3* C एआई. *4* B C विसत्थं. *5* D सुमहान्. *6* B C अविद्दा उ, D अविह् for अविह्र अविह्र. *7* D adds here: पव । आकर्ण्य सवितर्कम् । किमिदम्.

विदूषकः—भाआमि अहं इह ट्ठादुं। एहि तत्तहोदो पासं। [बिभेम्यहमिह स्थातुम्। एहि तत्रभवतः पार्श्वम्।]

(उपसर्पतः।)

पवनंजयः—(विभाव्य) कथं तातस्य प्रस्थानभेरीरवः।

विदूषकः—एवं होदव्वं। [एवं भवितव्यम्।]

पवनंजयः—

निर्हारी विजयार्धकन्दरदरीद्वारं प्रतिध्वानयन्
उद्ग्रीवान् गृहकेकिनो जलधरध्वानोत्सुकान्नर्तयन्।
शत्रुक्षत्रकुलक्षयैकपिशुनः कार्त्स्न्येन रुन्धन्नभ-
स्तातस्यैष कुतः खलु प्रसरति प्रस्थानभेरीध्वनिः॥ १६॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु कुमारो। एसो खु अमच्चो अज्जविजयसम्मा कुमारं दट्ठुं आअदो बउलुज्जाणदुवारए चिट्ठइ। [जयतु कुमारः। एष खल्वमात्य आर्यविजयशर्मा कुमारं द्रष्टुमागतो बकुलोद्यानद्वारे तिष्ठति।]

पवनंजयः—(अञ्जनां प्रति) प्रिये, गच्छेदानीं स्वभवनमेव।

अञ्जना—जं अज्जउत्तो आणवेदि। (उत्तिष्ठति।) [यदार्यपुत्र आज्ञापयति।]

वसन्तमाला—(उत्थाय) इदो इदो भट्टिदारिआ। [इत इतो भर्तृदारिका।]

(परिक्रम्य निष्क्रान्ते।)

पवनंजयः—वैजयन्ति, अविलम्बितं प्रवेशय।

प्रतीहारी—जं कुमारो आणवेदि। (निष्क्रम्य, अमात्येन सह प्रविश्य) इदो इदो अमच्चो। [यत् कुमार आज्ञापयति। (निष्क्रम्य, अमात्येन सह प्रविश्य) इत इतोऽमात्यः] (परिक्रामतः।)

---

1 B C D भेरीध्वनिः. 2 B C आणावेदि.

अमात्यः—अहो नु खलु महाराजस्य महिमा । कुतः

वदन्ति राज्ञां यदमात्यनिष्ठां वृत्तिं तदत्र व्यभिचारि दृष्टम् ।
स्वयंगृहीतोचितकार्ययुक्तेः सेवाविनोदाय वयं यदस्य ॥ १७ ॥

प्रतीहारी—(पुरो निर्दिश्य) एसो खु कुमारो, जाव उवसप्पदु अमच्चो । [एष खलु कुमारो, यावदुपसर्पत्वमात्यः ।]

अमात्यः—(दृष्ट्वा) अये कुमारो, य एषः

सकलं पैतृकं तेजो दुर्निरीक्ष्यं समुद्वहन् ।
आस्कन्दति रवेः कक्ष्यां नभोमध्यविलङ्घिनः ॥ १८ ॥

(उभावुपसर्पतः ।)

पवनंजयः—आर्य, अभिवादये ।

अमात्यः—कुमार, कुलधुरंधरो भव ।

पवनंजयः—वैजयन्ति, आसनमत्रभवते ।

प्रतीहारी—इदं संणिहिदं वेत्तासणं, जाव उवविसदु अमच्चो । [इदं संनिहितं वेत्रासनं, यावदुपविशत्वमात्यः ।]

अमात्यः—(उपविश्य) वैजयन्ति, निषिद्धाशेषपरिजना द्वारदेशमशून्यं कुरु ।

प्रतीहारी—जं अमच्चो भणादि । [यदमात्यो भणति ।] (निष्क्रान्ता ।)

पवनंजयः—किमागमनप्रयोजनमत्र भवतः ।

अमात्यः—कुमार, श्रूयताम् ।

पवनंजयः—अवहितोऽस्मि ।

अमात्यः—श्रूयत एव हि कुमारेण यथा दक्षिणार्णवान्तर्वर्तिनि त्रिकूटपर्वते लङ्कापुरमधिवसन् रक्षसां पतिर्दशग्रीवो नाम विद्यत इति ।

1 ᴑ °विलम्बिनः.

पवनंजयः[1]—अस्ति, श्रूयते ।

अमात्यः—तस्य च पश्चिमार्णव[2]संस्थितं पातालपुरमधिवसता वरुणेन सह सुमहानासीद् विरोधः ।

पवनंजयः—ततस्ततः ।

अमात्यः—ततश्च दशग्रीवेणापि खरदूषणप्रभृतिभिरधिष्ठितं महद् वरुणं प्रति नियोजितं दण्डचक्रम् ।

पवनंजयः—ततः ।

अमात्यः—प्रवृत्ते च महति संगरे गृहीता वरुणेन खरदूषणप्रभृतयः।

पवनंजयः—ततः ।

अमात्यः—एतादृशं मानभङ्गमुद्वहन् दशास्यः खरदूषणादीनां मोचनाय दूतमुखेन महाराजमभ्यर्थितवान् ।

पवनंजयः—ततः ।

अमात्यः—एवं चाभ्यर्थितो महाराजः कुमारमाहूय पुरं परिपालयितुमत्रैव समवस्थाप्य स्वयं प्रस्थानाय प्रारभते ।

पवनंजयः—(सहासम्) आर्य कुतोऽयमस्थान एव तातस्य प्रस्थानसंरम्भः ।

निर्भिन्नद्विरदेन्द्रमस्तकतटीनिर्मुक्तमुक्ताफल-
श्रेणीदन्तुरदन्तकुन्तविवरो यो राजकण्ठीरवः ।
सोऽयं मानमहान् स्वयं मृगशिशुव्यापादनव्यापृतः
किं कीर्त्यन्तरमात्मनो जनयति प्रख्यातशौर्योचितम्[3] ॥ १९ ॥

तदिदानीमेतावन्मात्रे वस्तुनि ममैत्र तावद् गमनेन पर्याप्तम् ।

अमात्यः—युक्तमेवाभिहितं कुमारेण । कुतः ।

---

1 D omits पवनंजयः. 2 D °वमध्यस्थं°. 3 B D प्रख्यातकार्योचितः.

पुत्रेष्वनिर्वापितविक्रमेषु[1] विद्याविनीतेषु भवादृशेषु ।
यथावदारोपितकार्यभाराः स्वैरं नरेन्द्राः सुखिनो भवन्ति ॥२०॥

तथापि निर्विचारं क्षुद्र इति नावमन्तव्यो वरुणः । तस्य हि

अधिष्ठानं तावज्जलनिधिरनुलंघ्यमहिमा
शतं पुत्राः शत्रुक्षितिपकुलनिष्पेषकुशलाः ।
स्वयंसेवी[2] विद्याधरनृपतिसार्थोऽप्यभिलषन्
प्रतीहारस्थानं प्रतिदिनमशून्यं च कुरुते ॥ २१ ॥

एवं च पुनरेतादृशे प्रतिपक्षे पराजिते सुमहद्दिह[3] यशः संपत्स्यते महाराजस्य । तदलमत्यावेगेन । कुमारेणैव यावत्प्रत्यागमनं प्रतिपाल्यमानामिच्छत्येनां राजधानीं महाराजः ।

पवनंजयः—(विहस्य) किमिदमार्यस्याप्यनुमतमेव । पश्य तावदचिरात्

आपातालतलात् प्रसह्य रभसान्निर्मूलमुन्मूलितां
तां पातालपुरीं क्षिपाम्ययमहं मध्येसमुद्रं क्रुधा ।
गाढोन्मुक्तपतच्छिलीमुखमुखोद्गीर्णस्फुलिङ्गानल-
ज्वालाभिः कवलीकृतानि समरे शुष्यन्त्वसृञ्जि[4] द्विषाम् ॥ २२ ॥

अमात्यः[5]—किमिदमतिगरीयः कुमारस्य ।

विदूषकः[5]—अमच्च सुट्ठु भणिअं । [अमात्य सुष्ठु भणितम् ।]

अमात्यः—किं प्रतिज्ञात एव कुमारेण संगरः ।

पवनंजयः—अथ किम् ।

---

1 C पुत्रेषु निर्वापितविक्रमेषु. *2* A स्वयं सेव्यद्विद्याधर etc., B C स्वयं सेव्या विद्याधर etc. D स्वयं सेव्यो; the reading in the text is conjectural. *3* B C सुमहद्दैव. *4* A शुष्यन्त्यजस्रं, B रुष्यन्त्यसृञ्जि, C शुष्यन्त्यसृञ्जि. *5* C omits both these speeches.

अमात्यः—तेन हि महाराज एवात्र प्रमाणम् । तदिदानीं महाराजमेव द्रक्ष्यामः ।

पवनंजयः—बाढम् । प्रथमः कल्पः ।

विदूषकः—तेण हि उट्ठेदु वअस्सो । [तेन हि उत्तिष्ठतु वयस्यः ।]

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति ।)

पवनंजयः—

धारानिर्भिन्नविद्विट्कुलगलविगलद्रक्तधाराप्रवाह—
प्रच्छन्नं पश्चिमाम्भोनिधिमुपरचिताकाण्डसंध्यानुरागम् ।
निर्व्याजं शङ्कयन्ती दिशि दिशि निबिडं[1] प्रज्वलद्वाडवाग्निं
स्वैरं संग्रामलीलामनुभवतु मम स्थेयसी खड्गयष्टिः ॥ २३ ॥

विदूषकः[2]—इदो इदो । [इत इतः ।]

(परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति[3] श्रीहस्तिमल्लेन विरचितेऽञ्जनापवनंजयनामनाटके[4] द्वितीयोऽङ्कः ।

तृतीयोऽङ्कः[5] ।

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अहो वरुणस्स णिरवग्गहा सामग्गी, जं दाव एत्तिअं वि कालं दिणे दिणे परिवड्ढमाणजुद्धसंमद्दो पुत्तसदणिक्खित्तसमरधुरो ण कदाइ ओगाहेई[6] संगरंगणं । अहवा वअस्सो एत्थ पसंसिदव्वो । जो एवं राजीवप्पमुहाणं महाबलाणं वरुणणंदणाणं सदेण

1 Thus A B C; it would be better to read निबिडप्रज्वलद्वाडवाग्नि.
2 D विदू । तेण हि उट्ठेदु वयस्सो । इदो । परिष्क्रम्य etc. 3 A B D इति श्रीगोविन्दस्वामिनः सूनुना हस्तिमल्लेन etc. C इति श्रीगोविन्दस्वामिसूनुना हस्तिमल्लेन etc.
4 D विरचितमंजनापवनंजयं नाम नाटकं द्वितीयोंकः ॥ 5 B C D नमः सिद्धेभ्यः।; A adds अथ before तृतीयोऽङ्कः. 6 D ओवाहेइ.

अण्णोण्णसंघरिसं[1]प्पउत्ताहि महाविज्जाहि भआणए रणसिरे एसुं[2] चदुसु वि मासेसु अणुदिणं सविसेसं किज्जंतपरक्कमो वड्ढइ विजएण। (निःश्वस्य) सव्वो वि पुण एसो[3] संगामवइअरो पहसिदस्स एव्व दुव्वरिअपरिवाओ जो एव्वं एक्कदो इमिणा दूसवेणं[4] समुद्दघोसेण, एक्कदो अ परुसेण संणद्धवरूहिणीकोलाहलेण, एक्कदो अ भआणएण णिवडंतसरसद्दसद्देण, एक्कदो कण्णकडुएण धणुग्गुणगुंजिदेण, एक्कदो अ भीसणेण विजअडिंडिमणिग्घोसेण बहिरीकअसवणउडो दिवाणिसं भीदभीदो विसुमरिअणिद्दासुहो वीसद्धं भुंजिदुं पि अलद्धावसरो, तत्तेण रुलट्ठिदिं[5] आअरेमि। सव्वहा उव्वेअणिज्जं खु राअउत्तमित्तत्तणं णाम। विसेसदो एत्थ खरदूसणादिमोअणुच्छाहो बाहेदि मं जं तेसं चेअ हदासाणं खरदूसणादीणं पच्चवाअं आसंकिअ वरुणस्स झत्ति माणभंगं परिहरंतो विज्जाबलेण सणिअं चेअ जुज्झदि वअस्सो। अण्णहा को णाम पदिवक्खो समरसिरंमि संमुहे वअस्सस्स मुहुत्तमेत्तं वि वट्टिदुं पहवदि। अज्ज दु पुण इमस्सिं एक्कस्सिं दिणे मम एव्व बम्हणस्स भाअधेएण उहअपक्खवट्टिहिं सेणावईहिं अण्णोण्णबलविस्समत्थं दिट्ठिआ णिसिद्धो जुद्धवावारो। एवं च पहाददो पहुदि एत्तिअं वेलं चउरंगबलदंसणसमूसुओ अलद्धावसरदाए ण साहु सेविओ मए पिअवअस्सो। दाणिं च सायंतण[6]संझासमुदाआरत्थं अत्थाणदो णिग्गदो[7] कहिं पुण दाणिं वट्टइ। (पुरो विलोक्य) एसा खु धणुग्गाहिणी सरावई। एअं दाव पुच्छिस्सं। (आकाशे) होइ सरावइ, कहिं दाणि वट्टइ वअस्सो। किं भणासि,

---

1 D संघंस. *2* D इमेसु for एसु. *3* D एस. *4* D दुस्सवेण. *5* A रुलट्ठिदं, B रुलट्ठिदिं; C D रुल्लट्ठिदिं [रुग्गट्ठिदिं]; chāyā in A रुगस्थितिम्. *6* A B C सायंक्षणसंझा°. *7* D णिग्गओ.

अज्ज णिव्वट्टिअसंझासमुदाआरो णिसिद्धासेसपरिअणो कुमुइणी-तीरुद्देसे वट्टइ त्ति। तेण हि तहिं गच्छामि। (परिक्रामति) [अहो वरुणस्य निरवग्रहा सामग्री, यत्तावदेतावन्तमपि कालं दिने दिने परिवर्धमानयुद्धसंमर्दः पुत्रशतनिक्षिप्तसमरधुरो न कदाचिदवगाहते सङ्ग्राङ्गणम् । अथवा वयस्योऽत्र प्रशंसितव्यः । य एवं राजीवप्रमुखानां महाबलानां वरुणनन्दनानां शतेन अन्योन्यसंघर्षप्रयुक्ताभिर्[1]महाविद्याभिर्भयानके रणशिरसि, एषु चतुर्ष्वपि मासेषु, अनुदिनं सविशेषं क्रियमाणपराक्रमो वर्धते विजयेन। (निःश्वस्य) सर्वोऽपि पुनरेष संग्रामव्यतिकरः प्रहसितस्यैव दुश्चरितपरिपाको य एवमेकतोऽनेन दुःश्रवेण समुद्रघोषेण, एकतश्च परुषेण संनद्धवरूथिनीकोलाहलेन, एकतश्च भयानकेन निपतच्छरशतशब्देन, एकतः कर्णकटुकेन धनुर्गुणगुञ्जितेन, एकतश्च भीषणेन विजयडिण्डिमनिर्घोषेण बधिरीकृतश्रवणपुटो दिवानिशं भीतभीतो विस्मृतनिद्रासुखो विलब्धं भोक्तुमप्यलब्धावसरः, तस्वेन क्षणस्थितिम् आचरामि । सर्वथोद्वेजनीयं खलु राजपुत्रमित्रत्वं नाम । विशेषतोऽत्र खरदूषणादिमोचनोत्साहो बाधते मां यत्तेषामेव हताशानां खरदूषणादीनां प्रत्यवायमाशङ्क्य वरुणस्य झटिति मानभङ्गं परिहरन् विद्याबलेन शनैरेव युध्यते वयस्यः। अन्यथा को नाम प्रतिपक्षः समरशिरसि संमुखे वयस्यस्य मुहूर्तमात्रमपि वर्तितुं प्रभवति। अद्य तु पुनरस्मिन्नेकस्मिन् दिने ममैव ब्राह्मणस्य भागधेयेनोभयपक्षवर्तिभ्यां सेनापतिभ्याम् अन्योन्यबलविश्रमार्थं दिष्ट्या निषिद्धो युद्धव्यापारः। एवं च प्रभाततः प्रभृत्येतावतीं वेलां चतुरङ्गबलदर्शनसमुत्सुकोऽलब्धावसरतया न साधु सेवितो मया प्रियवयस्यः । इदानीं च सायंतनसंध्यासमुदाचारार्थम् आस्थानतो निर्गतः कुत्र पुनरिदानीं वर्तते । (पुरो विलोक्य) एषा खलु धनुर्ग्राहिणी शरावती। एतां तावत् पृच्छामि। (आकाशे) भवति शरावति, कुत्रेदानीं वर्तते वयस्यः । किं भणसि, आर्य निर्वर्तितसंध्यासमुदाचारो निषिद्धाशेषपरिजनः कुमुद्वतीतीरोद्देशे वर्तत इति। तेन हि तत्र गच्छामि। (परिक्रामति।)]

(ततः प्रविशति पवनंजयः ।)

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य) अहो नु खलु सुखसेव्यता सागरपरिसरोद्देशानाम् । इह हि

---

[1] D प्रवृत्ताभि॰

सेनानेकपरुणचन्दनरसान् गण्डूषयन्तः सरि-
त्तीरोपान्ततमालपल्लवपुटानुद्भेदयन्तः शनैः ।
सद्यो युद्धपरिश्रमापहरणात्संमानिताः सैनिकैः
सेव्यन्ते[2] सुखशीतलाः सुरभयो वेलावनान्तानिलाः ॥ १ ॥

विदूषकः[3]—एसो खु वअस्सो । जाव उवसप्पामि । (उपसृत्य) जेदु पिअवअस्सो । [एष खलु वयस्यः । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) जयतु प्रियवयस्यः ।]

पवनंजयः—कथं वयस्य[4] ।

विदूषकः—भो वअस्स, दक्ख दाव पच्चासण्णचंदोदअस्स दंसणिज्जदं गअणभाअस्स । [भो वयस्य, पश्य तावत्प्रत्यासन्नचन्द्रोदयस्य दर्शनीयतां गगनभागस्य ।]

पवनंजयः—(विलोक्य)

मध्येध्वान्तं प्रविशति हठात् संप्रति प्रेक्षणीयः[5]
प्रालेयांशोः करपरिकरः संनिकृष्टोदयस्य ।
अन्तस्तोयं मरकतशिलाश्यामलस्याम्बुराशे-
र्मन्दाकिन्या इव शशिमणिद्रावगौरः प्रवाहः ॥ २ ॥

विदूषकः—वअस्स पेक्ख, एसो खु विरहिजणहिअअमज्जणलग्गरुहिरलोहिओ भल्लो विअ वंमहस्स, हरिचंदणरसचच्चिदो णिडालपट्टो विअ उक्कंठिअ[6]कामिणीजणस्स, विरहसिहिपढमसिहुग्गमो विअ रहंगमिहुणाणं, जोण्हासवपाणरअणचसओ विअ चओरआणं[7], पुव्वदिसावहूमुहसमालंभण[8]विसेसओ सोहइ सविसेसं अद्धोदिओ दाणिं

---

1 B C D लवङ्ग for तमाल. *2* D सेवंते. *3* D विदू । विलोक्य । *4* A विदूषकः in stead of वयस्य. It would be better to read वयस्यः. *5* B D प्रेक्षणीयम्. *6* B टंकरिअ°. *7* A चउरआणं, B C चवरआणं. *8* D समालहण.

णिसाणाहो । [वयस्य पश्य, एष खलु विरहिजनहृदयमज्जनलग्नरुधिरलोहितो भल्ल इव मन्मथस्य, हरिचन्दनरसचर्चितो ललाटपट्ट इवोत्कण्ठितकामिनीजनस्य, विरहशिखिप्रथमशिखोद्गम इव रथाङ्गमिथुनानां, ज्योत्स्नासवपानरत्नचषक इव चकोरकाणां, पूर्वदिशावधूमुखसमालम्भनविशेषकः शोभते सविशेषमर्धोदित इदानीं निशानाथः ।]

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य)

उन्नमति विधोर्बिम्बं रदमुख[1]मिव हस्तिमल्लस्य ।
निहतरिपुहस्तिमस्तकसरुधिरमस्तिष्कपाटलितम् ॥ ३ ॥

विदूषकः—भो वअस्स, सहिदा एव इमाए कुमुदिणीए तीरदेसेसु कोमुइं सेविस्सम्ह । [भो वयस्य, सहितावेवास्याः कुमुद्वत्यास्तीरदेशेषु कौमुदीं सेवावहे ।]

पवनंजयः—यथाह भवान् ।

(उभौ तथा कुरुतः ।)

पवनंजयः—इतश्च ।

सपदि शिशिरधाम्ने लोलकल्लोलहस्तैः
प्रचुरमभिपतद्भिः पश्चिमेनार्णवेन ।
इह समुपहृतानामर्घ्यमुक्ताफलानां
दधति वियति लक्ष्मीं तारका विप्रकीर्णाः ॥ ४ ॥

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) वअस्स, पेक्ख एत्थ सहअरं अण्णेसंतिं एक्कं चक्कवाइ[2]अं । [वयस्य, पश्यात्र सहचरमन्विष्यन्तीमेकां चक्रवाकिकाम् ।]

पवनंजयः—(दृष्ट्वा) कष्टं भोः, सहचरमन्वेषमाणा शोच्यामेव दशामनुभवति तपस्विनी । पश्य

---

1 A रदमुखमेव मही. B C रदमुखमेवमिह. 2 D चक्काइअं.

मुहुश्चन्द्रं द्वेष्टि प्रविशति मुहुः कैरववनं
मुहुस्तूष्णीमास्ते करुणकरुणं क्रन्दति मुहुः ।
मुहुः पश्यत्याशा निपतति मुहुः सैकततले
मुहुर्मुह्यत्येषा विरहविधुरा कोकवनिता[1] ॥ ५ ॥

(आत्मगतम्) आः कष्टम्, अञ्जनापि मत्प्रवासादेवंप्रायां दशां प्रपद्येत। (स्तिमितस्तिष्ठति।)

विदूषकः—कहं वअस्सो आविट्ठो विअ चिट्ठइ। वअस्स, किं तुण्हीको चिट्ठसि। (हस्तमाकृष्य) भो वअस्स, किं तुण्हीको[2] चिट्ठसि। [कथं वयस्य आविष्ट इव तिष्ठति। वयस्य, किं तूष्णीकस्तिष्ठसि। (हस्तमाकृष्य) भो वयस्य, किं तूष्णीकस्तिष्ठसि।]

पवनंजयः—(सगद्गदम्)

उदिते विनिकीर्य चन्द्रिकां शिशिरांशौ मदनैकसारथौ।
विरहं विपहेत कामिनी ननु का नाम निकामदुःसहम् ॥ ६ ॥

विदूषकः—(आत्मगतम्) कहं उक्कंठिओ विअ वअस्सो। [कथम् उत्कण्ठित इव वयस्यः।]

पवनंजयः—

संग्रामेषु दिने दिने द्विगुणितोत्साहेन तावन्मया
नीतोऽयं परवत्तया न गणितो दीर्घोऽपि कालो गतः।
सेदानीं महतीं महेन्द्रतनया स्वप्नेऽप्यसंभावितां
कष्टं भो विरहव्यथामविपहां सोढुं[3] कथं पारयेत् ॥ ७ ॥

विदूषकः—भो वअस्स, कीस दाणिं तुमं एक्कपदे[4] कादरो होसि। [भो वयस्य, कस्मादिदानीं त्वमेकपदे कातरो भवसि।]

---

1 A विरहविधुराशोकवनिता, B °कोशवनिता. C °कोपवनिता. *2* D तुण्हिक्को.
3 B C D वोढुं. *4* C omits एक्कपदे.

पवनंजयः—(मदनावस्थामभिनयन्)

> इतो धुन्वन्नेलां मलयपवनो याति शनकै-
> रितो ज्योत्स्नापूरं कुमुदविशदं वर्षति शशी ।
> इतो गाढं मुक्तैर्विषमविशिखो विध्यति शरैः
> सखे निःशङ्कस्त्वं कथय कथमाश्वासयसि माम् ॥ ८ ॥

विदूषकः—कहं पउड्ढो दाणिं इमस्स मअणुम्मादो । [कथं प्रवृद्ध इदानीमस्य मदनोन्मादः ।]

पवनंजयः—अहो[3] महदाश्चर्यम् ।

> अस्य हि शराः सुमनसः प्रामास्ते पञ्चतां च बलमबलाः ।
> स्वयमथ तावदनङ्गः कथमयमित्थं जगज्जयति ॥ ९ ॥

विदूषकः—(आत्मगतम्) एसो खु बलिअं उक्कंठिओ, ता विलोहेमि दाव णं । (हस्ते गृहीत्वा) भो वअस्स, एहि दाव अब्भंतरं । पडिवालेन्ति खु राआणो तुमं सेविदुं । [एष खलु बलवदुत्कण्ठितः, तस्माद्विलोभयामि तावदेनम् । (हस्ते गृहीत्वा) भो वयस्य, एहि तावदभ्यन्तरम् । प्रतिपालयन्ति खलु राजानस्त्वां सेवितुम् ।]

पवनंजयः—(अशृण्वन्नेव सनिःश्वासमुपविशति ।)

विदूषकः—(सोपहासम्) साहु अणुट्ठिदं मे वअणं । [साध्वनुष्ठितं मे वचनम् ।]

पवनंजयः—किमस्थाने प्रलपसि । निभृतमुपविश्यताम् ।

विदूषकः—का गई । [का गतिः ।] (उपविशति ।)

पवनंजयः—(सोत्कण्ठम्)

---

1 C वेलाम्. *2* B C मणुम्मादो (=मनउन्मादः). *3* C adds the stage direction अशृण्वन्नेव सनिःश्वासम्.

प्रत्यागमे मम किमप्युपजातलज्ज-
मुत्फुल्लगण्डफलकं स्फुरिताधरोष्ठम् ।
तस्याः कदा नु खलु भो वदनारविन्दं
द्रक्ष्यामि मद्विरहखेदभरातुरायाः ॥ १० ॥

विदूषकः—ण खु एसो अवसरो उक्कंठाए । [न खल्वेषोऽवसर उत्कण्ठायाः[1] ।]

पवनंजयः—नायमवसरः कार्योपदेशस्य ।

विदूषकः—किं दाणिं मए एत्थ करिअदु । [किमिदानीं मयात्र क्रियताम्[2] ।]

पवनंजयः—वयस्य, सोपकरणं चित्रफलकमानीयताम् । यावच्चित्रगतामपि प्रियामिदानीं पश्यामः ।

विदूषकः—का गई । जं भवं भणादि । [का गतिः । यद्भवान् भणति ।] (उत्थाय प्रस्थितः ।)

पवनंजयः—वयस्य, एहि तावत् ।

विदूषकः—(उपसृत्य) आणवेहि । [आज्ञापय ।]

पवनंजयः—

चन्द्रिकातपसंतप्तो[3] मम संजातवेपथुः ।
अयमालिखितुं हस्तः क्षमते न तु किंचन ॥ ११ ॥

विदूषकः—तं कारीअ भवं तं दंसीअ । [तदकार्षीद्भवांस्तदद्राक्षीत्[4]]

पवनंजयः—वयस्य,

विरचय कह्लारदलैः शयनीयमिहैव शीतलस्पर्शैः ।
कदलीदलेन वीजय मलयानिलतप्तमङ्गमिदम् ॥ १२ ॥

अथवा ।

---

1 D उत्कंठितायाः. 2 D क्रियते. 3 D °ताप for तप. 4 D नन आ[illegible] तदद्राक्षीत.

ज्योत्स्नेयं मलयानिलोऽयमपि मे तापाय जातो यथा
कह्लारैः कदलीदलैश्च कथय प्राप्येत का वा धृतिः ।
तद्व्यर्थैर्बहुजल्पितैरिह कृतं बाढं महेन्द्रात्मजा-
गाढालिङ्गनमेव केवलमहं मन्ये समाश्वासनम् ॥ १३ ॥

विदूषकः—साहु सुकरं दाणिं एअं । वेअड्ढे दाव तत्तहोदी, तुमं उणे[1] एत्थ अवरन्तभूमीए वट्टसे । [साधु सुकरमिदानीमेतत् । विजयार्धे तावत्तत्रभवती, त्वं पुनरत्र अपरान्तभूम्यां वर्तसे ।]

पवनंजयः—वयस्य, वयमिदानीं विमानमारुह्य विजयार्धमेव गमिष्यामः । (उत्तिष्ठति ।)

विदूषकः—(उत्थाय) भो वअस्स, सुणाहि दाव । [भो वयस्य, शृणु तावत् ।]

पवनंजयः—स्वैरमभिधत्स्व ।

विदूषकः—एत्थ एव्व महाबले तुह पडिवक्खे वरुणे ठिए खंधावारं उज्झिअ गमिस्ससि त्ति अजुत्तं मे पडिभाअइ । [अत्रैव महाबले तव प्रतिपक्षे वरुणे स्थिते स्कन्धावारम् उज्झित्वा गमिष्यसीत्ययुक्तं मे प्रतिभाति ।]

पवनंजयः—(सकोपम्[2])

सद्यस्त्रैविष्टपानां चकितनिजवधूदत्तकण्ठग्रहाणां
ज्याघोषैः श्रोत्रमार्गं नभसि बधिरयन् वर्षतां पुष्पवृष्टिम् ।
आकर्णाकृष्टमुक्तैर्निशितशरशतैश्छादयन्दिग्विभागान्
अद्याहं शत्रुपक्षं निखिलमपि बलादेष संचूर्णयामि ॥ १४ ॥

विदूषकः—एदं किं पल्हादणंदणस्स असंभाविदं । तहवि एसो ण राजधम्मो [एतत् किं प्रह्लादनन्दनस्यासंभावितम् । तथाप्येष न राजधर्मः ।]

---

1 D पुण. 2 D सकोपं । यद्येवं । सद्य etc.

पवनंजयः—(विहस्य) किं संग्रामो (न[1]?) नाम राजधर्मः ।

विदूषकः—मा मा तुवरेहि । दाणिं खु एक्कं दिअहं उहैअ[2]-बलेहि पडिसिद्धं[3] जुद्धं । [मा मा त्वरस्व । इदानीं खलु एकं दिवसमुभयबलाभ्यां प्रतिषिद्धं युद्धम् ।]

पवनंजयः—वयस्य, साध्वनुस्मारितोऽस्मि । अहो सावशेषं जीवितत्वं परचक्रस्य ।

विदूषकः—एवं च सव्वहा ण जुत्तं इदो दाणिं ते गंतुं । [एवं च सर्वथा न युक्तम् इत इदानीं तव गन्तुम् ।]

पवनंजयः—यद्येवमिदानीमेव गत्वा वयमनुदित एव दिनकृति प्रतिनिवर्तामहे ।

विदूषकः—एदं[4] च ण जुत्तं । एआरिसं पडिवक्खं जेदुं गदो तुमं अपरिणिट्ठिदकज्जो णअरिं पविससि त्ति महाराओ पकिदी अ किं णु खु भणंति । [एतच्च न युक्तम् । एतादृशं प्रतिपक्षं जेतुं गतस्त्वमपरिनिष्ठितकार्यो नगरीं प्रविशसीति महाराजः प्रकृतयश्च किं नु खलु भणन्ति ।]

पवनंजयः—वयस्य, साधूक्तम् । तेन हि अविदितागमनाया[5] अञ्जनायाः संजवनमवतरिष्यामः ।

विदूषकः—इह ट्ठिओ सेणावई मुग्गरो किं दाणिं तुमं ण अण्णेसदि । [इह स्थितः सेनापतिर्मुद्गरः किमिदानीं त्वां नान्वेषते ।]

पवनंजयः—तेन हि मुद्गरेण विदिता एव गमिष्यामः ।

विदूषकः—ण खु एदं तस्स भणिदुं जुत्तं । [न खल्वेतत्तस्य भणितुं युक्तम् ।]

---

1 None of the Mss. reads न; but the sense requires it. 2 B C अबलेहि. 3 D पदिसिद्धं. 4 C एवं. 5 B अविदितागमनाय अंजनायाः । C अविदिताया अंजनायाः ।

पवनंजयः—एवमेतत् । तेन हि केनापि व्याजेन गन्तव्यम् । कः[1] कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

शरावती—आणवेदु कुमारो । [आज्ञापयतु कुमारः ।]

पवनंजयः—शरावति, मद्वचनात्सेनापतिं मुद्गरं ब्रूहि । यथा प्रभाततः प्रभृति चतुरङ्गबलसामग्रीदर्शनानुरोधेन ममेदानीं निद्रामेवाभिकाङ्क्षति मनः[2] । तदिदानीमेव सावधानेन सज्जीकर्तव्यानि सांग्रामिकाणि भवता संविधानकानीति ।

शरावती—जं कुमारो आणवेदि । [यत्कुमार आज्ञापयति ।] (प्रस्थिता)

पवनंजयः—शरावति, एहि तावत् ।

शरावती—(उपसृत्य) आणवेहि । [आज्ञापय ।]

पवनंजयः—यावदहमस्मिन्नेव कुमुद्वतीतीरोद्देशे दुकूलपटमण्डपे शयानो रात्रिमतिवाहयामि, त्वमपि सहैव प्रतिहारवर्गेण निषिद्धाशेषपरिजना प्रवेशद्वारमशून्यं कुरु ।

शरावती—जं कुमारो आणवेदि । [यत्कुमार आज्ञापयति ।] (निष्क्रान्ता ।)

पवनंजयः—वयस्य, किं परं विलम्ब्यते । (विद्यां भावयित्वा) नन्वेतदागतं विमानम् । यावदारोहावः ।

विदूषकः—जं वअस्सो आणवेदि । [यद्वयस्य आज्ञापयति ।]

(उभावारुह्य विमानयानं निरूपयतः ।)

पवनंजयः—(विमानवेगं निर्वर्ण्य)

ज्योत्स्नाम्भसि व्योमपयःपयोधौ धावन्तमत्राशु विमानपोतम् ।
अद्यानुधावन्निव लक्ष्यतेऽसौ प्रालेयरोचिः परिवारपोतः ॥ १५ ॥

---

1 B C D omit the first कः. 2 After this B C D add श्वः खलु प्रातरेव संग्रामाय सन्नद्धव्यम् ।.

विदूषकः—पवणवेगो खु तुमं । [पवनवेगः खलु त्वम् ।] (पुरो निर्दिश्य) वअस्स, एसो खु रअदगिरी चंदमा रूअसारिक्खेण केवलं सजलजलधराअमाणविणीलाए[1] सेणीवणराईए लक्खिज्जइ । [वयस्य, एष खलु रजतगिरिश्चन्द्रमा[2] रूपसादृश्येन केवलं सजलजलधरायमाणविनीलया श्रेणीवनराज्या लक्ष्यते ।]

पवनंजयः—

किमु शिशिरांशोर्निपतति रजतगिरेरेव किमु समुत्पतति ।
इति जनयति मम शङ्कामियमधुना कौमुदी विशदा ॥ १६ ॥

विदूषकः—एदे संपत्त म्ह रअदगिरिं । एअं खु इह ट्ठिअं विमाणं, जाव ओतारेहि[3] । [एते संप्राप्ताः स्मो रजतगिरिम् । एतत्खलु इह स्थितं विमानं, यावदवतर ।]

पवनंजयः—यथाह[4] भवान् । (अवतरणं नाटयति ।)

विदूषकः—वअस्स, एसो खु तत्तहोदीए चदुस्सालमज्झे कोमुदीपासादो, जाव एअस्स हम्मतले ओदरम्ह । [वयस्य, एष खलु तत्रभवत्याश्चतुःशालमध्ये कौमुदीप्रासादो, यावदस्य हर्म्यतलेऽवतरावः ।]

पवनंजयः—यथाह[5] भवान् ।

(उभाववतरतः ।)

(ततः प्रविशति विरहोत्कण्ठिता[6] अञ्जना, शिशिरोपचारव्यग्रा च वसन्तमाला ।)

अञ्जना—(मदनावस्थां नाटयन्ती ज्योत्स्नास्पर्शं निरूप्य) हले[7], ओवारेहि एअं कोमुइं कअलीदलेण । [सखि, अपवारयैतां कौमुदीं कदलीदलेन ।]

वसन्तमाला—(तथा कृत्वा) हुं किं दाणिं एत्थ करिअदु । एसा दिवा वि जोण्हंकुरसंकिणी मुणालवलअपरिकरिआ वेवदि । चंदबिंबसंकिणी मणिदप्पणं ण पेक्खइ । मलआणिलसंकिणी कअलीदल-

1 D जळहरायमाण 2 D चन्द्रिका. 3 D ओत्तारेत (हि?). 4 B C omits आह. 5 C omits आह, D यदाह. 6 A B C °होत्कण्ठिका. 7 B C सखे हले.

मारुअं णिवारेइ । कुसुमाउहसरसअसंकिणी कुसुमसअणं ण सहइ । चंदणद्दवसंकिणी चंदअंतणिस्संदं परिहरइ । [हुं किमिदानीमत्र क्रियताम् । एषा दिवापि ज्योत्स्नाङ्कुरशङ्किनी मृणालवलयपरिष्कृता वेपते । चन्द्रबिम्बशङ्किनी मणिदर्पणं न पश्यति । मलयानिलशङ्किनी कदलीदलमारुतं निवारयति । कुसुमायुधशरशतशङ्किनी कुसुमशयनं न सहते । चन्दनद्रवशङ्किनी चन्द्रकान्तनिष्यन्दं परिहरति ।]

(उभावाकर्णयतः ।)

पवनंजयः—नूनमितो[2] वसन्तमाला व्याहरति ।

विदूषकः—(विलोक्य) ण केवलं वसंतमाला एव, तत्तहोदी वि तुह विरहुक्कंठिदा इह एव चंदअंतपासाददुवारए[3] वट्टइ । [न केवलं वसन्तमालैव, तत्रभवत्यपि तव विरहोत्कण्ठिता इहैव चन्द्रकान्तप्रासादद्वारे वर्तते ।]

अञ्जना—(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) अम्मो फुरइ[4] एअं वामच्छि । [अहो स्फुरत्येतद् वामाक्षि ।]

वसन्तमाला—भट्टिदारिए[5], अविलंबिअं भट्टिणं दक्खिस्सिसि[6] । [भर्तृदारिके, अविलम्बितं भर्तारं द्रक्ष्यसि ।]

अञ्जना—(संतापमभिनयन्ती) किंचिरं वा एअं सिसिरोवआरदुक्खं मए सहिज्जइ । [कियच्चिरं वा एतच्छिशिरोपचारदुःखं मया सह्यते ।]

पवनंजयः—(श्रुत्वा दृष्ट्वा च, आत्मगतम्) कथमिदानीमवस्थान्तरे वर्तते प्रिया । इयं हि

तन्वी विश्लथनीविर्बाष्पाविललोचना सनिःश्वसिता ।
आस्रस्तकेशपाशा संगम इव वर्तते विरहे ॥ १७ ॥

---

1 C omits सअ. 2 B adds वयस्य. 3 B चंदअंचंदअंवपासासअघरअदुवारए, C चंदअंचंदलंदवसासअघरअदुवारए. D चंदअंदवासघरअदु° (chāyā चन्द्रकान्तप्रासादगृहद्वारे). 4 B घुरइ, C घरइ. 5 D °दारिए तेग हि अ°. 6 B C D दक्खसिसि.

अञ्जना—हा अज्जउत्त, कओ[1] मे दंसणसुहं देसि । [हा आर्यपुत्र, कदा मे दर्शनसुखं ददासि ।] (इति मुह्यति)

वसन्तमाला—(ससंभ्रमम्) समासससिहि भट्टिदारिए, समाससिहि । [समाश्वसिहि भर्तृदारिके, समाश्वसिहि ।]

पवनंजयः—(ससंभ्रममुपसृत्य) प्रिये, समाश्वसिहि ।

विदूषकः—(ससंभ्रममुपसृत्य) समाससिदु[2] तत्तहोदी [समाश्वसितु तत्रभवती ।]

वसन्तमाला—(ससंभ्रमम्) कहं भट्टा । जेदु भट्टा । [कथं भर्ता, जयतु भर्ता ।]

अञ्जना—(समाश्वस्य दृष्ट्वा च सोच्छ्वासम्) कहं अज्जउत्तो । [कथम् आर्यपुत्रः ।]

(प्रत्युत्थातुमिच्छति ।)

पवनंजयः—

अलमलमतियन्त्रणया तत्रैव स्वैरमास्यतां तन्वि ।
साक्षात् कटाक्षसाध्ये दासजने कोऽयमुपचारः ॥ १८ ॥

(हस्ते गृहीत्वोपविशति ।)

विदूषकः—सोत्थि होदीए । वअस्ससरिसं पुत्तं लहेसु । [स्वस्ति भवत्यै । वयस्यसदृश पुत्रं लभस्व ।]

अञ्जना—(सविस्मयम्) हंजे वसंतमाले, किं एसो वि सिविणओ आदु परमत्थो । [सखि वसन्तमाले, किम् एषोऽपि स्वप्नो अथवा परमार्थः ।]

---

1 B कइआ, D कइअ. 2 B समास्ससि, A C समासासिहि, D समस्ससिहि. The reading in the text is conjectural.

वसन्तमाला—अदिउज्जुए, भट्टिणं चेअ पुच्छ । [अतिऋजुके भर्तारमेव पृच्छ ।]

पवनंजयः—

स्वप्नेषु विप्रलब्धा पूर्वं बहुशः समागतेन मया ।
प्रत्यागते मयि पुनर्मुग्धेयं नाद्य विश्वसिति ॥ १९ ॥

भवति वसन्तमाले, केनाप्यनुपलक्षितावावामिहागतौ । तदिदानीं यथा न कश्चिदपि आगमनं जानीयात् तथैव प्रयतितव्यम् ।

वसन्तमाला—जं भट्टा आणवेदि । अज्जपहसिअ, एहि दुवारदेसं रक्खिस्सम्ह । [यद् भर्ता आज्ञापयति । आर्यप्रहसित, एहि द्वारदेशं रक्षामः ।]

विदूषकः— जं होदी भणादि । [यद्भवती भणति ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

पवनंजयः—(अञ्जनां निर्वर्ण्य)

मृणालालंकृता सान्द्रचन्दनद्रवचर्चिता ।
सेयमापाण्डुवदना मन्ये ज्योत्स्नाधिदेवता ॥ २० ॥

प्रिये किमिदानीमपि विरहशमनपरिग्रहायासेन[1] । तद्यावदिदमेव संनिहितमणिचन्द्रकान्तवासगृहं प्रविशावः । (हस्ते गृहीत्वा) प्रिये, इत इतः । (निष्क्रान्तौ ।)

इति श्रीहस्तिमल्लेन[2] विरचितेऽञ्जनापवनंजयनामनाटके तृतीयोऽङ्कः ।

---

1 A विरहशमनपरिग्रहाय न यतसे· *2* D °मल्लविरचितमंजनापवनंजयं नाम नाटकं तृतीयोंकः । The Ms. c ends with the end of Act III.

चतुर्थोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति वसन्तमाला ।)

वसन्तमाला—(सहर्षम्) इह जादु आगदस्स चत्तारो मासो[1][2] भट्टिणो । दाणिं च भट्टिदारिआए दोहलं विअ वट्टइ । तस्सा[3] हि णीलुप्पलदलमेचआइ होन्ति थणचूचुआइ, फलिणीफलपण्डुराइ होन्ति कपोलाइ, अंजणलेहा विअ णीला परिप्फुडा होदि उअरे रोमराई । ता एअं सोहणं उत्तंतं भट्टिणीए केदुमदीए विण्णवेमि । (परिक्रम्य, पुरो विलोक्य) का उण एसा इदो अभिवट्टइ । कहं, भट्टिणीए केदुमदीए अणुअरिआ जुत्तिमदी । [(सहर्षम्) इह जात्वागतस्य चत्वारो मासा भर्तुः । इदानीं च भर्तृदारिकाया दोहदमिव वर्तते । तस्या हि नीलोत्पलदलमेचके भवतः स्तनचूचुके, फलिनीफलपाण्डुरौ भवतः कपोलौ[4], अञ्जनलेखेव[5] नीला परिस्फुटा भवत्युदरे रोमराजिः । तस्मादेतं शोभनं वृत्तान्तं भट्टिन्याः केतुमत्या विज्ञापयामि । (परिक्रम्य, पुरो विलोक्य) का पुनरेषा इतोऽभिवर्तते । कथं, भट्टिन्याः केतुमत्या अनुचरिका युक्तिमती ।]

(ततः प्रविशति युक्तिमती ।)

युक्तिमती—आणत्त म्हि भट्टिणीए केदुमदीए । अस्सत्था विअ वहू अंजणेत्ति सुदं । तं जाव तं कुसलं पुच्छिअ आअच्छ त्ति । ता जाव सामिणीए अंजणाए चदुस्सालं गच्छेमि । (परिक्रामति) [आज्ञप्ताऽस्मि भट्टिन्या केतुमत्या । अस्वस्थेव वधूरञ्जनेति श्रुतम् । तद्यावत्तां कुशलं पृष्ट्वागच्छेति । तस्माद्यावत्स्वामिन्या अञ्जनायाश्चतुश्शालं गच्छामि । (परिक्रामति ।)]

वसन्तमाला—एसा खु पिअसही जुत्तिमदी किं वि कज्जंतरक्खित्तहिअआ विअ मं अणवेक्खिअ गच्छइ । जाव इमाए पिट्ठदो

---

1 D इध आदु. 2 Thus A B D; it should be मासा. 3 D तिस्सा
4 D पांडुरे...कपोले. 5 D अंजनरेखेव.

णिहुदं गदुअ अच्छिणी पिहाअ ओहसिस्सं । [एषा खलु प्रियसखी युक्तिमती किमपि कार्यान्तराक्षिप्तहृदयेव मामनवेक्ष्य गच्छति । यावदस्याः पृष्ठतो निभृतं गत्वाऽक्षिणी पिधायापहसिष्यामि ।] (तथा करोति ।)

युक्तिमती—(विभाव्य, सस्मितम्) का णाम अण्णा मए एवं विस्संभीकरेदि । णं पिअसहि वसन्तमाले, जाणिदा खु सि । [का नामान्या मयि[1] एवं विस्रम्भीकरोति । ननु प्रियसखि वसन्तमाले, ज्ञाता खल्वसि ।]

वसन्तमाला—(मुक्तहस्ता, सहासम्) सहि, जुत्तिमदी खु तुमं । सहि, कहिं दाणिं पट्ठिदासि[2] । [सखि, युक्तिमती खलु त्वम् । सखि, कुत्रेदानीं प्रस्थितासि ।]

युक्तिमती—सहि, किंचि अस्सत्था दाणिं[3] अंजणेत्ति भट्टिणीए केदुमदीए आणाए कुसलं पुच्छिदुं गच्छेमि । [सखि, किंचिदस्वस्थेदानीमञ्जनेति भट्टिन्याः केतुमत्या आज्ञया कुशलं प्रष्टुं गच्छामि ।]

वसन्तमाला—मुद्धे, ण खु सा अस्सत्था, दोहलअं खु तं । [मुग्धे, न खलु सा अस्वस्था, दोहदं खलु तत् ।]

युक्तिमती—हला, किं उम्मत्ता सि । [सखि, किम् उन्मत्तासि ।]

वसन्तमाला—सहि, सुणाहि दाव । एक्कदा खु णिसीहे इह पहसिअदुइओ भट्टा आअदुअ गओ । [सखि, शृणु तावत् । एकदा खलु निशीथे इह प्रहसितद्वितीयो भर्ता आगत्य गतः ।]

युक्तिमती—सहि, कहं अम्हेहिं ण जाणिदं । [सखि, कथमस्माभिर्न ज्ञातम् ।]

वसन्तमाला—सहि, सो खु अपरिणिट्ठिदसंगरो णअरं पविट्ठो म्हि त्ति वीरजणोइदाए विलक्खदाए अप्पआसाअमणो रत्तिं अदिवाहिअ पच्चूसे चेअ गदो । [सखि, स खलु अपरिनिष्ठितसंगरो नगरं प्रविष्टोऽस्मीति वीरजनोचितया विलक्षतया अप्रकाशागमनो रात्रिमतिवाह्य प्रत्यूष एव गतः ।]

---

[1] The chāyā in A मयेव. [2] D पट्ठिददासि. [3] D दाणि सामिणी अं°.

युक्तिमती—सहि, जुज्जइ । तुमं दाव कहिं पत्थिदा । [सखि, युज्यते । त्वं तावत् कुत्र प्रस्थिता ।]

वसन्तमाला—एअं सोहणं वुत्तंतं भट्टिणीए विण्णेविदुं[1] । [एतं शोभनं वृत्तान्तं भट्टिन्यै विज्ञापयितुम् ।]

युक्तिमती[2]—सहि, जुत्तं चेअ भट्टिणीए विण्णविदुं । तहवि किंवि पज्जाउलं विअ मे हिअअं । [सखि, युक्तमेव भट्टिन्यै विज्ञापयितुम् । तथापि किमपि प्रत्याकुलमिव मे हृदयम् ।]

वसन्तमाला—किं ति । [किमिति ।]

युक्तिमती—जाणादि एव्व भट्टिणी केदुमदी सामिणीए अंजणाए अप्पडिमं चारित्तं । तहवि विसेसदो इत्थिआसु आहिजाइपरिवालणे एकंतसावहाणा भट्टिणी । ता एदं वुत्तंतं सुणिअ किं पडिवज्जदि त्ति । [जानात्येव भट्टिनी केतुमती स्वामिन्या अञ्जनाया अप्रतिमं चारित्रम् । तथापि विशेषतः स्त्रीषु आभिजात्यपरिपालने एकान्तसावधाना भट्टिनी । तस्मादेतं वृत्तान्तं श्रुत्वा किं प्रतिपद्यत इति ।]

वसन्तमाला—सहि, किं दाणिं मुधा संतप्पिअदि । चदुरेहिं मासेहि परिसमापिअजुद्धो आअमिस्सामि त्ति खु तदा भट्टा गओ । तदो गदा चेअ चत्तारो मासा । ता सुवो वा परसुवो वा सअं चेअ भट्टा एत्थ आअच्छइ । [सखि, किमिदानीं मुधा सन्तप्यते । चतुर्भिर्मासैः परिसमापितयुद्ध आगमिष्यामीति खलु तदा भर्ता गतः । ततो गता एव चत्वारो मासाः । तस्माच्छ्वो वा परश्वो वा स्वयमेव भर्ता अत्रागच्छति ।]

युक्तिमती—तं पि पडिहदं विअ । [तदपि प्रतिहतमिव ।]

---

1 Thus A B D; it should be rather विण्णविदुं or विण्णवेदुं. After विण्णेविदुं A adds तह वि किंवि पज्जाउलं विअ मे हिअअं as forming part of वसन्तमाला's speech. 2 A drops the whole of this speech of युक्तिमती.

वसन्तमाला—कहं विअ । [कथमिव ।]

युक्तिमती—ण खु एण्हिं दाव णिरग्गलं वच्छेण वरुणस्स माण-भंगो कादव्वो । जह खरदूसणादीणं मोअणं अप्पडिहदं भविस्सदि, तह एव्व विज्जाबलेण जुज्झे वट्टिदव्वं त्ति सेणावइणो मुग्गरस्स महा-राएण पच्चहं लेहो पहिअदि[2] । एवं चिराइस्सदि विअ कुमारो । [न खलु इदानीं तावन्निरर्गलं वत्सेन वरुणस्य मानभङ्गः कर्तव्यः । यथा खरदूषणादीनां मोचनमप्रतिहतं भविष्यति तथैव विद्याबलेन युद्धे वर्तितव्य-मिति सेनापतेर्मुद्गरस्य महाराजेन प्रत्यहं लेखः प्रेष्यते । एवं चिरायिष्यते इव कुमारः ।]

वसन्तमाला—तह वि किं चंदलेहा वि गरलं उग्गिरइ, चंदण-लआ वा अग्गिं । ता अलं दाणिं भट्टिणिं केदुमदिं अण्णहा संकिअ । [तथापि किं चन्द्रलेखाऽपि गरलमुद्गिरति, चन्दनलता वाऽग्निम् । तस्मादल-मिदानीं भट्टिनीं केतुमतीमन्यथा शङ्कित्वा ।]

युक्तिमती—तेण हि गच्छदु होदी । अहं वि सामिणीए अंज-णाए संजाददोहलरमणिज्जं रूवं दक्खिअ अच्छीणं फलं अणुहविस्सं । [तेन हि गच्छतु भवती । अहमपि स्वामिन्या अञ्जनायाः संजातदोहदरम-णीयं रूपं दृष्ट्वा अक्ष्णोः फलमनुभविष्यामि ।]

वसन्तमाला[3]—सहि, तहा । [सखि, तथा।] (निष्क्रान्ता ।)

युक्तिमती—(परिक्रामन्ती, आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) भट्टिणि केदुमदि, जाणामि एव दे वहूगअं असाहारणं पेम्मभरं, चारित्तं, सच्चपालणं च । तहवि अत्तणो कादरदाए विण्णवेमि केवलं, परपरिवादसंकिणी मा दाव अप्पणो दक्खिण्णस्स अणुइदं अणुचिट्ठेहि । [भट्टिनि केतु-मति, जानाम्येव ते वधूगतमसाधारणं प्रेमभरं, चारित्रं, सत्यपालनं च ।

---

1 A drops this speech of वसन्तमाला and puts the words कहं विअ in the mouth of युक्तिमती. 2 A पहिस्सअदि. 3 D om. वसन्तमाला.

तथाप्यात्मनो कातरतया विज्ञापयामि केवलं, परपरिवादशङ्किनी मा तावदात्मनः दाक्षिण्यस्यानुचितमनुतिष्ठ ।]

(नेपथ्ये)

भवति युक्तिमति[1] ।

युक्तिमती—(आकर्ण्य) को णु खु मं सद्दावेदि । (पृष्ठतो विलोक्य) कहं कंचुकी लद्धहूदी । [को नु खलु मां शब्दापयति । (पृष्ठतो विलोक्य) कथं कञ्चुकी लब्धभूतिः ।]

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—भवति युक्तिमति ।

युक्तिमती—(उपसृत्य) अज्ज, कीस मं सद्दावेसि । [आर्य, कस्मान्मां शब्दापयसि ।]

कञ्चुकी—अलमिदानीं भवत्यास्तत्र गमनेन । यावद् देव्या एव पार्श्वपरिवर्तिनी भव ।

युक्तिमती—(सशङ्कम्) अज्ज, भट्टिणीए आणाए सामिणिं अंजणं एसु दिअहेसु किंचि किर अस्सत्थं[2] कुसलं पुच्छिदुं अहं पत्थिदा । [आर्य, भट्टिन्या आज्ञया स्वामिनीमञ्जनामेषु दिवसेषु किंचित् किलास्वस्थां कुशलं प्रष्टुमहं प्रस्थिता ।]

कञ्चुकी—स्वयमेव खलु देवी त्वामाह्वयति ।

युक्तिमती—(सविषादम् आत्मगतम्) हुं, जह मए चिंतिदं तह एव संवुत्तं । (प्रकाशम्) अज्ज, जइ एवं, भट्टिणीए पासं गमिस्सं । [हुं, यथा मया चिन्तितं तथैव संवृत्तम् । (प्रकाशम्) आर्य, यद्येवं, भट्टिन्याः पार्श्वं गमिष्यामि ।] (निष्क्रान्ता ।)

कञ्चुकी—(परिक्रामन्) हन्त भोः ।

---

1 D om. युक्तिमति. 2 A B °अस्सभत्थं.

निरवद्यं चारित्रं ज्ञात्वाऽपि निजामिजात्मपरवत्यः ।
बिभ्यति खलु कुलवनिताः परिवादलवादपि प्रायः ॥ १ ॥

यावदिदानीं शाखानगरमेवे गच्छामि । (परिक्रम्यात्मानं निर्वर्ण्य च)

गिरमविशदां[2] कृच्छ्राद् बद्ध्वा व्रजन्नपहास्यतां
. कुकविवदहो भूयो भूयः स्खलामि पदे पदे ।
अवहितमना एव न्यस्यन् पदानि मृदून्यहं
परिणतिमपि प्राप्य प्रौढां कवेः समतां गतः ॥ २ ॥

अथवा

प्रतिनवसहकारोद्भिद्यमानप्रवाल-
प्रणयिनि सुकुमारेणाग्रहस्तेन बाला ।
किमु रचयति पर्णं[4] कर्णमूले विशीर्णं
परिणतिरपि जाता कुत्रचिद्गर्हणीया ॥ ३ ॥

(पुरो विलोक्य) इदं गोपुरम्[3] । यावदनेन निष्क्रम्य शाखानगरं प्रविशामि । (परिक्रम्य) प्रविष्टोऽस्मि शाखानगरम् । (पुरो विलोक्य) एष हि विद्याधरभैरवस्य क्रूरस्य चेटो हिन्तालकः प्रतीतविकसितोत्पलपूलबन्धनसनाथाग्रहस्तः सत्वरमितो धावति । तद्यावदेनमाह्वयामि । रे रे हिन्तालक[5] ।

(प्रविश्य पटाक्षेपेण यथानिर्दिष्टश्चेटः)

चेटः—(दृष्ट्वा) कहं अज्जलद्धहूदी शअं आअदुअ मं शद्दावेदि । (उपसृत्य) भट्टालअ, एशे अहगे णमश्शामि । (प्रणमति ।) [कथमार्यलब्धभूतिः स्वयमागत्य मां शब्दापयति । (उपसृत्य) भट्टारक, एषोऽहं नमस्यामि । (प्रणमति ।)]

---

1 B omits एव. *2* D गिरमशुभां. *3* D इदं पुरगोपुरम्. *4* Thus A B D; it should be प्रत्यग्र°. *5* D हिंताल.

कञ्चुकी—हिन्ताल, मद्वचनात् क्रूरमिहैवाह्वय ।

चेटः—भट्टालअ[1], ण खु एशे अवशले तश्श तुम्हालिशेहिं संजप्पिदुं[2] । [भट्टारक, न खल्वेषो अवसरस्तस्य युष्मादृशैः संजल्पितुम् ।]

कञ्चुकी—किमिति ।

चेटः—(हस्तेन निर्दिश्य) भट्टालअ, एशे खु शुधाशूदिविंबशलिशापाणअ[3]कवालशणाहवामग्गहत्थए घग्घलिआ[4]घग्घलणिग्घोशमुहलचलणजुअले डमलुअतालणलोलदाहिणकले खंधुद्देशशमप्पिअतिशूलदंडए लत्तचंदणतिलअशोहिअणिडालपट्टए जवाकुशुमलोहिअभीशणलोअणे विअ वट्टइ भेलवे विज्जाहलभेलवे । अह अ

> एशे शामी कूले[5] पाऊण शुलं शुदुल्लहं शुलहिं ।
> णच्चइ गायइ घुम्मइ पक्खलइ अकालणे हशइ ॥ ४ ॥

[भट्टारक, एष खलु सुधासूतिबिम्बसदृशापानककपालसनाथवामाग्रहस्तो, घर्घरिकाघर्घरनिर्घोषमुखरचरणयुगलो, डमरुकताडनलोलदक्षिणकरः, स्कन्धोद्देशसमर्पितत्रिशूलदण्डो, रक्तचन्दनतिलकशोभितललाटपट्टो[6], जपाकुसुमलोहितभीषणलोचन इव वर्तते भैरवो विद्याधरभैरवः । अथ च

> एष स्वामी क्रूरः पीत्वा सुरां सुदुर्लभां सुरभिम् ।
> नृत्यति गायति घूर्णति[7] प्रस्खलति अकारणं हसति ॥]

कञ्चुकी—(विलोक्य) कथमुद्वृत्तो मदोन्मोहः[8] । तथा हि

> किमप्यन्तश्चिन्तानमितवदनस्तिष्ठति मुहु-
> र्मुहूर्तं यत्किंचित्किल मृगयमाणो विहरति ।
> अकस्माद्विस्मेरो विहसति मिथस्ताडितकरः
> करीव क्षीबोऽयं त्यजति मदिराशीकरकणान् ॥ ५ ॥

---

1 B भट्टाळआ; D generally भट्टाळआ, and in a few casos स for श. 2 D संजप्पिउं. 3 A °पाणिअ°. 4 A घुग्घुलिआघुग्घुल°, D घ०घळवाघ०घुक्कुणि०घोश. 5 A B कूळ्ळे. 6 D chāyā निटाल for ललाट. 7 The chāyā in A D निद्रायते. 8 Thus A and B. It should be मदोन्मादः.

(सबीभत्सम्) कष्टमुद्वेजनीया खलु परपिण्डगृध्नुता, यन्मयाऽपि तावदेतादृशैरपि[1] निकृष्टचेष्टितैः सह संभाष्यते । भो हिन्तालक, किमत्र क्रियताम् ।

चेटः—भट्टालअ, जाव इमश्श मदावशाणं ताव तुम्हेहि एत्थ जिण्णुज्जाणे[2] पडिवालेदव्वं । [भट्टारक[3], यावदस्य मदावसानं तावद् युष्माभिरत्र जीर्णोद्याने प्रतिपालयितव्यम् ।]

कञ्चुकी—तथा कुर्मः । (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो विद्याधरभैरवः क्रूरः ।)

क्रूरः— (मदं नाटयन्, सबहुमानम्)

अवि जश्श णामहेयं शुलाशुला निशमिऊण वेवंति ।
एशे शे खु क्रूले[4] विज्जाहलभेलवे अहके ॥ ६ ॥
अह य
मंतेण व जंतेण व तंतेण व णत्थि दुक्कलं णाम ।
मह एत्तियम्मि लोए के अण्णे मालिशे पुलिशे ॥ ७ ॥
[अपि यस्य नामधेयं सुरासुरा निशम्य वेपन्ते ।
एष स खलु क्रूरो विद्याधरभैरवोऽहम् ।
अथ च
मन्त्रेण वा यन्त्रेण वा तन्त्रेण वा नास्ति दुष्करं नाम ।
मम एतावति लोके कोऽन्यो मादृशः पुमान् ॥]

चेटः—(उपसृत्य) शामिअ[5] एशे अहके पणवेमि । [स्वामिन्नेषोऽहं प्रणमामि ।]

क्रूरः—पियशिश्शा, जावज्जीवं मं शुश्शूशेहि । [प्रियशिष्य, यावज्जीवं मां शुश्रूषस्व ।]

---

1 B D ईदृशैः. 2 D wavers between जुण्णुज्जाणे and जिण्णुज्जाणे. 3 D भर्तारक. 4 D कुक्कले. 5 B शामिआ.

चेटः—एशे दाशे अणुगहिदे। एदाइं[1] णवुउप्पलाइ। [एष दासोऽनुगृहीतः। एतानि नवोत्पलानि।]

क्रूरः—अले हिंतालअ[2], एत्तिअं वेलं किंति तुमे विलंबिअं। [अरे हिन्तालक, एतावतीं वेलां किमिति त्वया विलम्बितम्।]

चेटः—शामिअ, अय्ये खु लद्धहूदी जिण्णुज्जाणए[3] दाणिं तुमं पडिवालेन्ते चिट्ठइ। तं खु दट्ठूण चिलाइदं। [स्वामिन्, आर्यः खलु लब्धभूतिर्जीर्णोद्यान इदानीं त्वां प्रतिपालयंस्तिष्ठति। तं खलु दृष्ट्वा चिरायितम्।]

क्रूरः—किं ति एण्हिं तुण्हिक्के चिट्ठशि। वाशेहि दाव उप्पलेहिं कुंभाशवं[4]। [किमितीदानीं तूष्णीकस्तिष्ठसि। वासय तावदुत्पलैः कुम्भासवम्।]

चेटः—(हास्यं निरुन्धन्, आत्मगतम्) शु, कहाणं जाणिदे मए अवशले। (प्रकाशम्) जं शामी आणवेदि। [सुष्ठु कथानां ज्ञातो मयाऽवसरः। (प्रकाशम्) यत् स्वाम्याज्ञापयति।] (यथोक्तमनुतिष्ठति।)

क्रूरः—अले हिंतालअ[5], एहि दाव।

उल्लाशंते तिशूलअं णच्चंते अ जहाशमीहिअं।
गाअंते महुलं धुवं [6]विहिए विहलेमि शंपदं॥ ८॥

[अरे हिन्तालक, एहि तावत्।
उल्लासयंस्त्रिशूलकं नृत्यंश्च यथासमीहितम्।
गायन् मधुरां ध्रुवां विद्यां[7] विहरामि सांप्रतम्॥]

(परिक्रामतः।)

क्रूरः—(सहर्षं गायति।)

---

1 D एणाइ. 2 D हिंदाळआ. 3 D जुण्णुज्जाणए. 4 D कुंभआशवं. 5 D हळे हिंताळआ. 6 A वीहिए. 7 The rendering of विहिए by विद्यां is obscure. It should be विधिना or वीथ्या. The chāyā in D is वीयथ्या.

शुहं पिबंतए शाहुपशण्णअं पए पए खलंते अ विशंथुलं[1] ।
महाणुभावए णिब्भलमत्तए शदा विजेदु विज्जाहलभेलवे ॥ ९ ॥
अह अ

शलशं णिहिदुप्पलअं शुलअं पिबिऊण मए वि घडंतशुभे ।
विहलेमि चलेमि खलेमि अले अहके कुलुले कुलुले कुलुले[2] ॥ १० ॥

(स्खलन्)

अले कहं चलेदि पुढवी ।

(सहासम्)

होदि विइअं[3] खु एदं मं वलिअं मदभलेण णिब्भलिअं
अशमत्था धालेदुं शच्चं खु वशुंधला चलइ ॥ ११ ॥

अले हिंतालअ, आवज्जेहि एत्थ आपाणअचशअम्मि कुंभएण वालुणिं । अहव तेण एव्व कुंभएण आअलं पिबिश्शं । (तथा कृत्वा) अले शविशेशं खु शुलशा एशा शुला । (मदं नाटयन्) कहं मं विणा एक्कं महापुलिशं शामण्णमाणुशं शुलोएदि वलाए लोए । ता पडिबोहिश्शं दाव ।

शुणुथ शुणुथ शवे शव्वहा शज्जणा ए
मह चिअ चलणाणं शाहु शुश्शूशएह ।
पिबिअ पिबिअ हालं खेलखेलं खलंते
विहलइ चलअंते जे शलीलं शलीलं ॥ १२ ॥

[सुखं पिबन् साधुप्रसन्नां पदे पदे स्खलंश्च विसंस्थुलम् ।
महानुभावो निर्भरमत्तः सदा विजयतु विद्याधरभैरवः ॥
अथ च ।
सरसां निहितोत्पलां सुरां पीत्वा मदेऽपि घटमानशुभे ।
विहरामि चलामि स्खलामि अरे अहं क्रूरः क्रूरः क्रूरः ॥

---

1 A विसत्थुकं. 2 A omits the third कुलुले. 3 D बिदिअं.

(स्खलन्)

अरे कथं चलति पृथ्वी।

(सहासम्)

भवति विदितं खल्वेतन्मां बलवन्मदभरेण निर्भरितम्।
असमर्था धारयितुं[1] सत्यं खलु वसुन्धरा चलति॥

अरे हिन्तालक, आवर्जयात्र पानचषके कुम्भेन वारुणीम्। अथवा तेनैव कुम्भेन आगलं पास्यामि। (तथा कृत्वा) अरे सविशेषं खलु सुरसा एषा सुरा। (मर्दं नाटयन्) कथं मां विना एकं महापुरुषं सामान्यमानुषं श्लोकते[2] वराको लोकः। तस्मात् प्रतिबोधयिष्यामि तावत्।

शृणुत शृणुत सर्वे सर्वथा सज्जना ये
ममैव चरणयोः साधु शुश्रूषध्वम्।
पीत्वा पीत्वा हालां खेलखेलं स्खलन्
विहरति चलयन् यः शरीरं सलीलम्॥

चेटः—(निर्वर्ण्य) कहं अदिभूमिं[3] आलूढे शामिणो मदभले। तह हि

गंडूशिअ शंपदं शुलं मुहु णिट्ठीवइ शीहलच्छडं।
विज्जाहलभेलवे शअं शशलीले शअले[4] पिहं पिहं॥ १३॥

[कथमतिभूमिमारूढः स्वामिनो मदभरः। तथा हि।
गण्डूषयित्वा सांप्रतं सुरां, मुहुर्निष्ठीवति शीतल[5]च्छटाम्।
विद्याधरभैरवः स्वयं स्वशरीरे[6] सकले पृथक् पृथक्॥]

क्रूरः—(परितोऽवलोक्य[7]) अले कहं पलिदो वि पलावेदि शुलाशमुद्दए। [अरे कथं परितोऽपि पलायते सुरासमुद्रः।]

चेटः—कहं शुलामअभावदाए शव्वदो इमश्श शुलाशमुद्दए पडिहाअइ। [कथं सुरामयभावतया सर्वतोऽस्य सुरासमुद्रः प्रतिभाति।]

---

1 D धर्तुं. 2 D perhaps श्लोकयति. 3 D अइभूमिं. 4 A omits शअले; B शअलि (= शअलि). 5 D शीकरच्छटाम्. 6 The chāyā in A reads स्वशरीराः which makes no sense; D सशरीरां सकलां पृ०. 7 B D विलोक्य.

क्रूरः—(वीचीसंपातं नाटयति) कहं उव्वेलआ एदे तलंगआ । अले हिंतालअ[1], एहि तलिश्शम्ह । (तरणं नाटयन्)

शमुच्चलंते लहलीशदेहिं शुलाशमुद्दे शहशा म्हि मग्गे ।
अले अले किं अहके कलिश्शं[2] कहं तलिश्शं अहवा पिबिश्शं ॥ १४ ॥

(श्रमं नाटयन्) अले बलिअं खु दाणिं अहके पलिश्शंते । ता एदं पलिश्शमं इमिणा मंतजवेण शमइश्शं ।

शुंडा शुला पशन्ना कल्ला काअंबली महू शीहू ।
मइला मज्जं महुला मेलेई वालुणी हाला ॥ १५ ॥

(पुनः पुनः पठति ।) [कथमुद्वेला इमे तरङ्गाः । अरे हिन्तालक, एहि तरिष्यावः[3] । (तरणं नाटयन्)

समुच्चलति लहरीशतैः सुरासमुद्रे सहसाऽस्मि मग्नः ।
अरे अरे किमहं करिष्यामि कथं तरिष्याम्यथवा पास्यामि ॥

(श्रमं नाटयन्) अरे बलवत् खल्विदानीमहं परिश्रान्तः । तस्मादेनं परिश्रममनेन मन्त्रजपेन शमयिष्यामि[4] ।

शुण्डा सुरा प्रसन्ना कल्या कादम्बरी मधुः शीधुः ।
मदिरा मद्यं मधुरा मैरेयी वारुणी हाला ॥

(पुनः पुनः पठति ।)]

चेटः—कहं पलिश्शंते दाणिं शामी । [कथं परिश्रान्त इदानीं स्वामी ।]

क्रूरः—अले कुत्थ[5] एण्हिं विश्शमिश्शं । [अरे कुत्रेदानीं विश्रमिष्यामि ।]

चेटः—(आत्मगतम्) पलिश्शंते विअ शामिणो मदे । ता विण्ण-[6]विश्शं दाव । (प्रकाशम्) शामिआ, [7]अज्जे खु लद्धहूदी जिण्णुज्जाणम्मि

---

1 D हळे हिंताळआ. 2 A कहश्शं, B कहिश्शं (=कथयिष्यामि), D कहि ळ्ळिश्शं. 3 The chāyā in A D तरिष्यावहे. 4 The chāyā in A वारयिष्यमि. 5 B D कत्थ; the usual form is कहिं. 6 A B विण्णमिश्शं. 7 D अय्ये खु.

को कालो शामिणं पडिवालेदि। [परिश्रान्त इव स्वामिनो मदः। तस्माद् विज्ञापयिष्यामि तावत्। (प्रकाशम्) स्वामिन्, आर्यः खलु लब्धभूतिर्जीर्णोद्याने कः कालः स्वामिनं प्रतिपालयति।]

क्रूरः—अले हिंतालअ, किं ति खु एत्तिअं वेलं तुम्हे[1] ण भणिअं। [अरे हिन्तालक, किमिति खल्वेतावतीं वेलां त्वया न भणितम्।]

चेटः—शामिआ, भणिदं खु मए पुव्वं। शामिणा मदभलपलवशेण ण आअण्णिदं। [स्वामिन्, भणितं खलु मया पूर्वम्। स्वामिना मदभरपरवशेन नाकर्णितम्।]

क्रूरः—हुं, मे पमादे[2]। जाव तहिं गमिश्शामो। [हुं, मे प्रमादः। यावत् तत्र गमिष्यामः[3]।]

चेटः—इदो इदो। [इत इतः।] (परिक्रामतः।)

चेटः—शामिआ, एअं खु जिण्णुज्जाणं। [स्वामिन्नेतत् खलु जीर्णोद्यानम्।]

(उभौ प्रविशतः।)

चेटः—(अङ्गुल्या निर्दिश्य) शामिआ, एशे खु अज्जलद्धहूदी तुह आअमणं पडिवालेदि। [स्वामिन्नेष खलु आर्यलब्धभूतिस्तवागमनं प्रतिपालयति।]

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—चिरायते भैरवः। (दृष्ट्वा) कथमासन्न एव नृशंसः। य एषः

आगच्छति वपुर्बिभ्रदतिमात्रभयानकम्।
क्रूरो मूर्तिमतीवासौ वृत्तिरारभटी स्वयम्॥ १६॥

क्रूरः—(उपसृत्य) किं अज्ज, मए कज्जं[4]। [किम् आर्य, मया कार्यम्।]

कञ्चुकी—(सशङ्कं चेटं पश्यति।)

---

1 B तुमे. 2 A पवादे. 3 The chāyā in A गच्छामि. 4 D अज्ज मए कअं.

क्रूरः—किं लाअलहश्शं । [किं राजरहस्यम् ।]

कञ्चुकी—अथ किम् ।

क्रूरः—हिंतालआ, तुमं इमश्श जिण्णुज्जाणश्श बाहिले मं पडिवालेहि । [हिन्तालक, त्वमस्य जीर्णोद्यानस्य बहिर्मां प्रतिपालय ।]

चेटः—जं शामी आणवेदि । [यत् स्वाम्याज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तः ।)

क्रूरः—विश्शद्धं दाणिं भणादु अज्जे[1][2] । [विस्रब्धमिदानीं भणत्वार्यः ।]

कञ्चुकी—देवी केतुमती त्वामाज्ञापयति ।

क्रूरः—चिलश्श खु कालश्श देवीए केदुमदीए शुमलिदो म्हि[3] । [चिरस्य खलु कालस्य देव्या केतुमत्या स्मृतोऽस्मि ।]

कञ्चुकी—(सविषादम्) आः कष्टम् । मयापि तावदिदं संदिश्यते ।

क्रूरः—जं वा तं वा होदु । अणुल्लंघणिज्जा खु शामिणीशंदेशा । [यद्वा तद्वा भवतु । अनुल्लङ्घनीयाः खलु स्वामिनीसंदेशाः[4] ।]

कञ्चुकी—(सबाष्पं कर्णे) एवमिव ।

क्रूरः—(*सविषादं कर्णौ पिधाय*) अहह का गई । [*आः का गतिः ।*]

(निष्क्रान्तः[5] क्रूरः ।)

कञ्चुकी—कथममुष्यापि नाम प्रकृतिनिष्ठुरस्य दुःश्रवमेतत् संवृत्तम् । किम् इदानीमत्र स्थीयते । निष्क्रान्तश्च दुरात्मा क्रूरः । तद्यावन्नगरीमेव प्रविशामि । (परिक्रामन्) दिष्ट्या मोचितोऽस्मि दुर्वृत्तजनसंपर्कात् ।

> इदं तावच्चिन्त्यं सपदि सुकृतादप्यसुकृतं
>
> परं प्रेयः प्रायो भवति निखिलस्यापि जगतः ।

---

1 B विश्शत्थ. *2* D अय्यो. *3* A B म्ह. *4* The chāyā in A स्वामिनं संदेशाः. *5* D इति नि°.

भवत्वेवं तावत्तदिदमविवेकास्पदधिया-
मतत्त्वश्रद्धानव्यसनपरवत्ताविलसितम् ॥ १७ ॥

किं बहुना

भो भो दुश्चरितप्रसक्तमनसः शृण्वन्तु सर्वे जनाः
किं युष्माभिरयं वृथैव सुमहान् कालो जडैर्नीयते ।
तद्यावद् विनिवृत्य पाकविरसादह्नाय दुश्चेष्टिता-
द्वर्तिव्यं[1] पुरुषार्थसाधनपथे[2] जैनेश्वरे साधने ॥ १८ ॥

(परिक्रामति ।)

(आकाशे) हा हा हदा[3] मंदभाआ । किं एअं पि मए दक्खिअदि । सव्वाओ देवआओ, सरणं खु तुम्हे । मम[4] पिअसहीए भट्टा पवणंजअ, रक्ख दे पदिर्णि[5] । हा अज्ज पहसिअ, दक्ख दे पिअसहपदिर्णि । हा महाराअ पडिसूर, रक्ख रक्ख एआरिसिं भाइणेइं । हा महाराअ महिंद, एअं पि तुह दुहिआ[6] अणुहवेदि । हा कुमार अरिंदम, हा पसण्णकित्ति[7], पेच्छह तुम्हाणं लालणिज्जं एवंभूअं कणीयसिं भइणीअं । [हा हा हताऽस्मि मन्दभागा । किम् एतदपि मया दृश्यते । सर्वा देवताः, शरणं खलु यूयम् । मम प्रियसख्या भर्तः पवनंजय, रक्ष ते पत्नीम् । हा आर्य प्रहसित, पश्य ते प्रियसखपत्नीम् । हा महाराज प्रतिसूर्य, रक्ष रक्ष एतादृशीं भागिनेयीम् । हा महाराज महेन्द्र, एतदपि तव दुहिता अनुभवति । हा कुमार अरिन्दम, हा प्रसन्नकीर्ते, पश्यतं युवयोर्लालनीयाम् एवंभूतां कनीयसीं भगिनीम् ।]

---

1 Thus ABD. The form वर्तिव्यम् makes no sense, unless it is taken to stand for वर्तितव्यम्. 2 B °पतेः, D पदे. 3 Thus A and D; we should have म्हि after हदा (हद म्हि). 4 D मह for मम. 5 D पणइणि. 6 B धूआ. 7 A B D कित्ते°.

कञ्चुकी—(श्रुत्वा, सविषादं कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् । कष्टं भोः कष्टम् । एष हि तपस्विन्या वसन्तमालाया आर्तविलापः । फलितमेव क्रूरहतकस्य क्रौर्येण । तदितो वयम् । (परिक्रामन्) अये परिणतम् अहः । तथा हि

एकपद एव संप्रति हतविधिना चक्रवाकमिथुनमिदम् ।
किमपि विवशं विघटितं परस्परप्रेमगुणबद्धम् ॥ १९ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

इति श्रीहस्तिमल्लेन विरचिते[1] अञ्जनापवनंजयनामनाटके चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ।

पञ्चमोऽङ्कः[2] ।

(ततः प्रविशति सेनापतिः ।)

सेनापतिः—अहो नु खलु भोः पवनंजयस्य पराक्रमशालिता ।

सर्वत्राप्यनिवार्यशौर्यमहतः प्रायो वयं केवलं
प्राप्ता यस्य परिच्छदेषु गणनामात्रेण संभावनम् ।
उद्दामारभटीभटो[3] निजभुजः संग्रामरङ्गाङ्गणे
साहाय्यं तु पुनः करोत्यसिलतालास्योपदेशोत्सुकः ॥ १ ॥

अस्तु तावत् कुमारो निजयशोराशिशुभ्राभ्यां दन्तपरिघाभ्याम् उभयतःप्रक्षरद्विशदनिर्झरासारमिवाञ्जनाचलं, पुञ्जीभूतमिव निःशेषं मदभरं गन्धगजवरम्, अतिमात्रलोहिततया कोपाग्निमिव नयनद्वयेनोद्गिरन्तं, मदामोदलुब्धैरपि भीतभीतैर्दूरत एव मधुव्रतैः परिहृतम्, अविरलविगलन्मदजलासारदुर्दिनं कालमेघमारुह्य खरदूषणादिमोचनाय कृतसंगरः संगराङ्गणमवतीर्णः । ततश्च सरभसविघटमानमद-

1 D विहृचितमंजनापवनंजयं नाम नाटकं चतुर्थोध्यायः ॥ * ॥ ४ ॥ * ...
2 D om. this. *3* B D °नटो.

गजघटाबन्धानि चकितहस्तस्रस्तशस्त्रवीरपुरुषाणि लघुपलायनमनोनिश्रयाणि[1] संभ्रान्तसारथिपरिवर्तितरथकड्यानि[2], क्षणादिव दुर्विभेद्यानि[3] निर्भरं भिन्दता व्यूहसहस्राणि, राजीवप्रमुखेष्वपि वरुणनन्दनेषु संत्रासविस्मृतयुद्धव्यतिकरेषु यत्र क्वापि द्रुतविद्रुतेषु, स्वयमपि गन्धसिन्धुरमधितिष्ठन्नभियुक्तः कुमारेण वरुणः ।

अत्रान्तरे स्वयमुदाहृतसाधुकारै-
र्निष्पातिता सुरवरैरपि पुष्पवृष्टिः ।
विद्याधरैर्विरचिताञ्जलिभिः समन्ता-
दुद्घोषितो जयजयेति जयोत्सवोऽ[4]पि ॥ २ ॥

अनन्तरं च पराक्रमा[5]वर्जितमना मुहूर्तमिव स्तिमितं[6] स्थित्वा निषिद्धयुद्धं कुमारमाभाषत वरुणः । यथा

कुमार प्रीताः स्मस्तव सुबहुभिर्विक्रमरसै-
रमीभिर्विस्मेरा[7]स्त्यज समरसंरम्भमधुना ।
किमन्यैरालापैरिह ननु जिता एव भवता
वयं, तत्सौहार्दं भवतु दृढमद्य प्रभृति नः ॥ ३ ॥

अपि च ।

यैरन्योन्यमनेन वापि समरव्याजेन संपादिता
दिष्ट्या प्रेमरसार्द्रबद्धहृदया मैत्री कुमारेण नः ।
शंसन्तः प्रमदेन कीर्तिविभवं रक्षोवरेभ्यस्तव
स्वैरं ते खरदूषणप्रभृतयो गच्छन्तु लङ्कापुरीम् ॥ ४ ॥

---

1 A °निश्रीयानि; B °मनोश्रियानि; D पलायमानाश्रियानि. 2 A D °कड्यानि; sense obscure. 3 D दुर्विभेद्यानि. 4 B जयोत्सवो ज (= जयोत्सवश्च). 5 B D पराक्रमरसावर्जितमनाः. 6 A स्तिमितस्थितौ निषिद्धं कुमारमभाषत वरुणः ।. 7 A O विस्मेरस्त्यज.

इति । एवं च समाकर्ण्य कुमारः सौहार्दसंशब्देन परित्यक्तसमर-संरम्भो वरुणमभाषत । यथा

> तत्त्वेनानवगाह्य हन्त भवतो निर्व्याजरम्यान् गुणान्
> यन्मुग्धाः खलु केवलं वयमितः पूर्वं वृथा वञ्चिताः ।
> तद्विस्रम्भसुखान्समाद्य सुदिनं संवृत्तमित्थं चिरात्
> क्षन्तव्योऽयमतिक्रमश्च समरव्यापारसंघर्षजः ॥ ५ ॥

किं च ।

> वैराय कल्पते युद्धमिति नैकान्तिकं वचः ।
> यत्संजातमनेनैव सौहार्दमिदमावयोः ॥ ६ ॥

इति । इत्थं च परस्परप्रणयरसावर्जितमनसोः पवनंजयवरुणयो-र्बलवती समजायत मैत्री । प्रेषिताश्च मया ह्य एव, 'निर्वृत्तो विजयोत्सवः, श्व एव चागन्तव्यः कुमारः' इति महाराजाय निवेदितुं[1] लेखहस्ता दूताः । अद्य पुनर्वरुणः सहैव राजीवप्रमुखेण पुत्रशतेन स्वयमेवात्रागत्य[2] पश्चिमार्णवसंभूतान्यनर्घाणि रत्नान्युपायनीकृत्य यथोचितसुखसंलापप्रसंगेन मुहूर्तमिव स्थित्वा कुमारमापृच्छ्य गतः । खरदूषणप्रभृतयश्च निशाचरवराः समुचितसत्कारपुरस्सरं लङ्कापुरीं प्रविसर्जिताः कुमारेण । आज्ञप्तं च कुमारेण विजयार्धमेव गन्तुं सज्जीकर्तव्यमिति । अनुष्ठिता च मया कुमारस्याज्ञा । संप्रति हि

> वेलोपान्तवनानि सस्पृहममून्यापृच्छ्य संप्रेक्षितै-
> र्नैत्रैकान्तविलोभनानि सुलभैस्तैस्तैर्विशेषैः सदा ।
> आरोहन्ति वियोगखेदमखिलं संहर्तुकामा इमे
> कान्तासंगमसत्वरेण मनसा यानानि विद्याधराः ॥ ७ ॥

---

1 Thus A B; the correct form should be निवेदयितुम्. 2 D स्वयमेवागत्य.

तदिदानीं वयमपि कर्तव्यशेषं निर्वर्तयिष्यामः । (निष्क्रान्तः ।)

शुद्धविष्कम्भः ।

(ततः प्रविशति पवनंजयो विदूषकश्च ।)

पवनंजयः—संपादिता दृढतरा वरुणेन मैत्री
मुक्ता निशाचरवराः खरदूषणाद्याः ।
संधारितो[1] दशमुखस्य च मानभङ्ग-
स्तातस्य चेयमधुना विहिता मयाज्ञा ॥ ८ ॥

तदिदानीमञ्जनामेव द्रष्टुमुत्कण्ठते मनः । रथस्तावत् ।

(प्रविश्य रथेन)

सूतः—विजयतामायुष्मान् ।

पवनंजयः—सूत, रथमुपश्लेषय ।

सूतः—यथाज्ञापयत्यायुष्मान्[2] । (यथोक्तमनुतिष्ठति ।)

पवनंजयः—वयस्य, एहि तावत् । आरोहामः[3] ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । [यद् भवानाज्ञापयति ।]

(उभावारोहतः ।)

पवनंजयः—सूत, गगनमार्गेण चोदयाश्वान् ।

सूतः—यथाज्ञापयत्यायुष्मान् । (तथा कृत्वा) आयुष्मन्[4], आरूढ एव[5] मेघपदवीं स्यन्दनः । अत्र हि ।

अधितिष्ठता रथमिमं गगनाङ्गणमध्यवर्तिनं भवता ।
साक्षात् सहस्ररश्मेरारूढा सांप्रतं पदवी ॥ ९ ॥

पवनंजयः— सूत, तूर्णं चोदयाश्वान् ।

---

1 A संदारितः. (standing perhaps for संवारितः.?) *2* D यदाज्ञाप°. *3* B D आरोहावः. *4* A B आयुष्मान्. *5* D om. एव.

सूतः—यथा आयुष्मान् आह । (तथा कृत्वा, रथवेगं निरूप्य) आयुष्मन्, पश्य ।

मूर्छन्नस्य रथस्य सांप्रतमसौ वेगानिलोऽपि स्वयं
हुंकारं कुरुते रथानुसरणक्लेशाभिषङ्गादिव ।
स्तब्धेयं मणिकिङ्किणीकरचना किंचिन्न शब्दायते
निष्पन्दप्रसृतोऽप्ययं ध्वजपटो धत्ते वितानश्रियम् ॥ १० ॥

अपि च ।

पार्श्ववर्तिभिरच्छिन्नं दृश्यमानो रथो जवी ।
दृश्यते गगनाम्भोधेः सेतुबन्ध इवायतः ॥ ११ ॥

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य)

मनोरथः पूर्वमसौ रथाच्च मनोरथात्पूर्वमसौ रथश्च ।
अन्योन्यसंघर्षविवृद्धवेगौ प्रधावतो द्वावपि नूनमेतौ ॥ १२ ॥

सूतः—आयुष्मन्, अदूरे[1] एव लक्ष्यते विद्याधरलोकः ।

पवनंजयः—(दृष्ट्वा)

किं धावत्येष रथः स्वयमभिधावति[2] किमेष विजयार्धः ।
इति निर्णेतुमिदानीं नयने न कुतोऽपि जानीतः ॥ १३ ॥

अये प्राप्ता एव विजयार्धम् ।

विदूषकः—मा मा एवं । ण दे विजयड्ढ[3]पत्ती । [मा मा एवम् । न ते विजयार्धप्राप्तिः ।]

पवनंजयः—(स्वगतम्) हन्त सान्तरायेवास्य वचसा विजयार्धप्राप्तिः ।

---

1 D दूरत एव. 2 D स्वयमाधावति. 3 D विजयद्ध°.

विदूषकः—संपुण्णो खु तुए विजओ पत्तो। [संपूर्णः खलु त्वया विजयः प्राप्तः।]

सूतः—(पुरो निर्दिश्य) आयुष्मन् एषा विजयार्धदक्षिणश्रेणि-वनराजिः। इदं च प्रच्छायसंतानवृक्षसनाथं राजतशिखरम्।

पवनंजयः—सूत, इहैव रथमवस्थापय यावद् विलम्बितमपि बलं प्रतिपालयामः।

सूतः—यथा आयुष्मान् आह। (यथोक्तमनुतिष्ठति।)

पवनंजयः—वयस्य, यावदवतरावः।

विदूषकः—जं भवं भणादि। [यद्भवान् भणति।]

(उभाववतरतः।)

विदूषकः—(अग्रतो निर्दिश्य) भो वअस्स, एसा खु जुत्तिमदी अंतवंसिअजणसहिआ तुमं पच्चागमेदुं इदो अभिवट्टइ। [भो वयस्य, एषा खलु युक्तिमती अन्तर्वंशिकजनसहिता त्वां प्रत्यागन्तुमितोऽभिवर्तते।]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा युक्तिमती।)

युक्तिमती—आणत्त म्हि भट्टिणीए केदुमदीए पच्चागमणमंगलं करेहि कुमारस्स त्ति। (पुरो विलोक्य) एसो आअदो कुमारो। जाव उवसप्पिअ जहोइदं अणुचिट्ठेमि। (उपसृत्य, तथा कुर्वती) जेदु कुमारो। [आज्ञप्तास्मि भट्टिन्या केतुमत्या प्रत्यागमनमङ्गलं कुरु कुमारस्येति। (पुरो विलोक्य) एष आगतः कुमारः। यावदुपसृत्य यथोचितमनुतिष्ठामि। (उपसृत्य, तथा कुर्वती) जयतु कुमारः।]

पवनंजयः—अये युक्तिमति, अपि कुशली तातः सहाम्बया।

युक्तिमती—एवं, कुसली। वड्ढेइ[1] महाराओ तुह विजएण। [एवं, कुशली। वर्धते महाराजस्तव विजयेन।]

---

1 D वड्ढेदि.

विदूषकः—होदि, किंति बम्हणो ण पणमिअदि । [भवति, किमिति ब्राह्मणो न प्रणम्यते ।]

युक्तिमती—(सस्मितम्) अलं दाणिं इमिणा अलीअसंलावेण[1] । [अलमिदानीमनेन अलीकसंलापेन ।]

विदूषकः—होदि, कुदो मं उवालहेसि । [भवति कुतो मामुपालभसे ।]

युक्तिमती—अज्ज, कोमुदीपासादं आअदेण वि तुमे ण खु अहं सुमरिदा । [आर्य, कौमुदीप्रासादम् आगतेनापि त्वया न खल्वहं स्मृता ।]

विदूषकः—(सहासम्) वअस्स, दासीए दुहिआ[2] वसन्तमाला अवरद्धा खु रहस्सभेदेण । [वयस्य, दास्या दुहिता वसन्तमाला अपराद्धा खलु रहस्यभेदेन ।]

पवनंजयः—(सस्मितम्) युक्तिमति, अलमिदानीं वयस्यव्याजेनास्मानुपालभ्य । न खलु स तावदस्मदागमनं प्रकाशयितुं समयः ।

युक्तिमती—अज्ज[3], तेण हि वंदामि । [आर्य, तेन हि वन्दे ।]

विदूषकः—सत्थि[4] । [स्वस्ति ।]

सूतः—भवति, न केवलं युष्माकमेव कुमारस्यागमनमविदितम्[5] । अस्माकमपि तावदितः पूर्वं न विज्ञातम्[6] ।

पवनंजयः—(सस्मितम्) युक्तिमति, कच्चित् कुशलिनी ते प्रियसखी वसन्तमाला ।

युक्तिमती—(सविषादम् आत्मगतम्) हुं किं दाणिं भणामि मंदभाआ । होदु । एवं दाव । (प्रकाशम्) एवं, कुसलिणी पिअसही वसन्तमाला सह एव सामिणीए अंजणाए । [हुं किमिदानीं भणामि मन्दभागा । भवतु । एवं तावद् । (प्रकाशम्) एवं, कुशलिनी प्रियसखी वसन्तमाला सहैव स्वामिन्या अञ्जनया ।]

---

1 A °सल्लावेण (=°सल्लापेन) 2 B D दूआ [=धूआ]. 3 D अज्ज. 4 D सोत्थि. 5 A विदितम्. 6 A विज्ञातम्.

विदूषकः—(सस्मितम्) होदि, साहु ओगाहिअं तुए अत्तहोदो हिअअं। [भवति साध्ववगाहितं त्वया अत्रभवतो हृदयम्।]

युक्तिमती—अत्थि अण्णं विण्णविदव्वं। [अस्त्यन्यद् विज्ञपयितव्यम्।]

पवनंजयः—किमिव।

युक्तिमती—सामिणी खु अंजणा अंतव्वदिणी भविअ वसंत-मालाए सह महिंदउरं गआ। [स्वामिनी खल्वञ्जना अन्तर्वत्नी भूत्वा वसन्तमालया सह महेन्द्रपुरं गता।]

विदूषकः—(सपरितोषम्) भो दिट्ठिआ वड्ढसि। [भो दिष्ट्या वर्धसे।][2]

पवनंजयः—युक्तिमति, गृह्यतां पारितोषिकम्।

(स्वहस्तात् कटकमादाय यच्छति।)

युक्तिमती—(आदाय) अणुग्गहिद म्हि। [अनुगृहीतास्मि।]

पवनंजयः—तेन हि वयं प्रियया सहैवागत्य तातमम्बां च द्रक्ष्यामः।

युक्तिमती—(आत्मगतम्) हुं किं दाणिं मए कदं। (प्रकाशम्) कुमार, इद आअदुअ महाराअं भट्टिणिं च अदट्ठूण तुह गमणं अजुत्तं मे पडिभाअइ। [हुं किमिदानीं मया कृतम्। (प्रकाशम्) कुमार, इत आगत्य महाराजं भट्टिनीं चादृष्ट्वा तव गमनमयुक्तं मे प्रतिभाति[3]।]

सूतः—युक्तमुक्तं युक्तिमत्या।

पवनंजयः—आगतमेव मां विद्धि। न खलु मुहूर्तमपि विलम्बिष्ये। तद् यावदिदानीमेवागच्छति पवनंजय इति तातमम्बां च विज्ञापय।

---

1 A B D ओवाहिअं; cf. p. 17, Act I. *2* D After विदूषक's speech सूत आयुष्मन् दिष्ट्या वर्धसे। पव।. *3* D प्रतिभासते.

युक्तिमती—जं कुमारो आणवेदि । (सविषादम् आत्मगतम्) हुं किं णु खु एअं परिणमिस्सदि[1] । [यत् कुमार आज्ञापयति । (सविषादम् आत्मगतम्) हुं किं नु खल्वेतत् परिणमिष्यति[2] ।]

(इति निष्क्रान्ता ।)

पवनंजयः—सूत, त्वमप्यत्र स्थित्वा मद्वचनात् सेनापतिं मुद्गरं ब्रूहि । यावदहं महेन्द्रपुरं गत्वा प्रियया सहैवागत्य तातमम्बां च पश्यामि । भवता[3] पुनरत्रैव सकलेन सह प्रतिपालितव्यम्[4] ।

सूतः—आयुष्मन्, क इदानीम् आनुयात्रिकाः ।

पवनंजयः—ननु सहैवागच्छति वयस्यः । एष हि

कार्येषु तावत्सकलेषु मन्त्री मित्रं परं नर्मसु तेषु तेषु ।
खड्गद्वितीयश्च भुजो रणेषु दुःसाधमेतेन न किंचिदस्ति ॥ १४ ॥

सूतः—तेन हि गम्यताम् । (रथेन सह निष्क्रान्तः ।)

पवनंजयः—(पार्श्वतो विलोक्य[5]) अये अयमागतः[6] कालमेघः । यावदिमम्[7]मेवारुह्य गच्छामः । (आरोहणं नाटयित्वा) वयस्य, एहि तावद् आरोह ।

विदूषकः—वअस्स, ण खु अहं सक्कुणोमि । एसो खु महाजवणो[8] । [वयस्य, न खल्वहं शक्नोमि । एष खलु महाजवनः ।]

पवनंजयः—काममस्तु, मा भैषीः ।

विदूषकः—तह होदु । [तथा भवतु ।]

---

1 D परिणमदि, the chāyā परिणमिष्यति. *2* Thus A B; the correct form would be परिणंस्यति. *3* A B भवताशु. *4* Thus A B D; the correct form would be प्रतिपालयितव्यम्. *5* D पार्श्वतोऽवलोक्य. *6* B adds एव after आगतः. *7* A B D इदमेव. *8* A महाराअवणो (chāyā महाराजवनः); B महाजवणाइ.

पवनंजयः—

मदाम्बुवर्षी गगनं विगाह्य प्रचोद्यमानः पवनेन वेगात् ।

गजो घनश्यामलमूर्तिरेष सत्यं सखे संप्रति कालमेघः ॥ १५ ॥

(पुरो विलोक्य) वयस्य, नातिदूरे पूर्वसागरस्य लक्ष्यते नाभिगिरिः । य एषः

क्षरन्मदाम्भःसृतिनिर्झरान्मुहुश्चलैः सपक्षानिव कर्णपल्लवैः ।

बिभर्ति दन्ती वनगन्धदन्तिनो नितम्बभागे तनयानिवात्मनः ॥ १६ ॥

विदूषकः— भो वअस्स, णिवारेहि गअराअं । [भो वयस्य, निवारय गजराजम् ।]

पवनंजयः—(गजेन्द्रमवस्थाप्य[1]) वयस्य, किमिति ।

विदूषकः—तुह विज्जाबलेण ठिरासणो वि अहं बलिअं खु परिस्संतो इमस्स जवेण । ता इह एव्व हिट्ठंमि[2] भूधरवाडवीहीए[3] एसा सरोवणसरसी दीसइ, जाव इमाए तीरुद्देसे मुहुत्तअं विस्समिअ गच्छामो । [तव विद्याबलेन स्थिरासनोऽप्यहं बलवत् खलु परिश्रान्तोऽस्य जवेन । तस्मादिहैवाधो भूधरवाटवीथ्याम् एषा सरोवणसरसी दृश्यते, यावद्स्यास्तीरोद्देशे मुहूर्तं विश्रम्य गच्छावः ।]

पवनंजयः—यत्ते रोचते । (गजमवतारयन्)

ये दुर्विभावाः प्रथमं पदार्था दूरे लघीयांस इव प्रतीताः ।

सतां स्वभावा इव ते समेत्य दृष्टा महीयांस इमे भवन्ति ॥ १७ ॥

विदूषकः—इअं सरसी । [इयं सरसी ।]

पवनंजयः—यावद्वतरामः[4] ।

(अवतरणं नाटयतः ।)

पवनंजयः—अहो कालमेघ, विश्रमार्थमवगाह्यतामियं सरसी ।

---

1 D गजमहेन्द्रम°. *2* D हेट्ठम्मि. *3* B भूधरवाढविहिए; D corrupt; the chāyā in A भूधरवाटिवीथ्या. *4* B D अवतराव:.

विदूषकः—भो पेक्ख, तुह वअणादो ओगाहइ[1] सरं[2] वि हत्थी। [भोः पश्य, तव वचनादवगाहते सरोऽपि हस्ती।]

पवनंजयः—वयस्य पश्य।

करोन्मुक्तैस्तोयैः करटतटकण्डूरपनयन्
मृणालीकाण्डानि प्रसभमयमुन्मूल्य रसयन्।
तरन्नुत्क्षिप्तास्यः करिमकरलीलामनुभवन्
निमज्जन्नुन्मज्जन्निह सरसि कामं विहरति॥ १८॥

विदूषकः—भो वअस्स, सल्लईरुक्खस्स तले उवविसम्ह। [भो वयस्य, सल्लकीवृक्षस्य तल उपविशामः।]

पवनंजयः—यथाह भवान्। (उपविशतः।)

विदूषकः—किं[3] णु खु अंजणा अंतव्वदिणी भविअ महिन्दउरं गद त्ति भणंती किं वि[4] सुण्णहिअआ विअ जुत्तिमदी जादा। ता ण एत्तिअं एदं। [किं नु खल्वञ्जना अन्तर्वत्नी भूत्वा महेन्द्रपुरं गतेति भणन्ती किमपि शून्यहृदयेव युक्तिमती जाता। तस्मान्नैतावदेतत्।]

---

1 A B D ओवाहइ; cf. supra page 73. *2* Thus A and D; it should be सरसिं. *3* B D read the whole passage as follows:—

विदूषकः—(सविचारम् आत्मगतम्) किं णु खु अंजणा अंतव्वदिणी भविअ महिंदउर गद त्ति भणंती सुण्णहिअआ विअ जुत्तिमदी जादा। ता महंतं खु एअं अपाअट्ठाणं।

पवनंजयः—वयस्य किमपि चिन्ताकुल इव दृश्यसे (D दृश्यते)।

विदूषकः—ण खु किंचि।

पवनंजयः—किं ममापि प्रच्छाद्यते।

विदूषकः—वअस्स सणेहो खु पावं संकइ।

पवनंजयः—कथमिव।

विदूषकः—सामिणी अंजणा अंतव्वदिणी भविअ महिंदउरं गए त्ति भणंती किंपि सुण्णहिअआ विअ जुत्तिमदी जादा। ता ण एत्तिअं एदं।

पवनंजयः—वयस्य मयापि चिन्तितमिदम्। अथ च etc ......

4 D omit किं वि.

पवनंजयः—वयस्य, मयापि चिन्तितमिदम् । अथ च

आभिजात्यपरिपालने रताः सर्वतोऽपि परिवादभीरवः ।

संगृहीतपतिदेवताव्रताः श्लाघनीयचरिताः कुलाङ्गनाः ॥ १९ ॥

विशेषतस्तावदत्राप्यम्बा ।

विदूषकः—एवं एदं । अण्णं च । जइ दाव महिंदउरे तत्तहोदी वट्टइ तदो एत्तिअस्स कालस्स विजादा अंजणे[1] त्ति अम्हाणं ण खु ण आअच्छइ वाचिअं । ता एत्थ महिंदउरे ण वट्टइ त्ति तक्केमि । [एवमेतत् । अन्यच्च । यदि तावन्महेन्द्रपुरे तत्रभवती वर्तते, तत एतावतः कालस्य विजाता अञ्जनेत्यस्माकं न खलु नागच्छति वाचिकम् । तस्मादत्र महेन्द्रपुरे न वर्तत इति तर्कयामि ।]

पवनंजयः—युज्यत एतत् । (विचिन्त्य) यदि तावदञ्जना महेन्द्रपुरं प्रति न गता, कथं तर्हि न[2] युक्तिमती महेन्द्रपुरगमनोत्सुकान्निवारयेदस्मान् ।

विदूषकः—अत्थि एदं । तहवि जइ महिंदउरे वट्टइ तदो एत्तिअस्स कालस्स विजादा अंजण त्ति अम्हाणं आअच्छइ वाचिअं ति सो दोसो तदवत्थो एव्व । [अस्त्येतत् । तथापि यदि महेन्द्रपुरे वर्तते तत एतावतः कालस्य विजाता अञ्जनेति अस्माकमागच्छति वाचिकमिति स दोषस्तदवस्थ एव ।]

पवनंजयः—सेयमुभयतःपाशा रज्जुः ।

विदूषकः—कुदो खु दाव एदं परमत्थदो उवलहम्ह । [कुत खलु तावदेतत् परमार्थत उपलभावहे[3] ।]

---

1 A अंजणे त्ति. *2* A B D read न. But the sense points to the necessity of its omission. *3* The chāyā in A उपलक्ष्यामः (=उपलक्षयामः)

(ततः प्रविशति प्रियासहितो वनचरः ।)

वनचरः—ले ले लवलिए, शोहणं[1] खु वणवाशशोक्खं । एत्थ[2] हि

घलआ सेलगुहाओ भक्खाइ कलीलकंदमूलाइ ।
वणभूमीसु विहाले आहाले वेणुतण्डुलआ[3] ॥ २० ॥

[रे रे लवलिके शोभनं खलु वनवाससौख्यम् । अत्र हि
गृहाणि शैलगुहा भक्ष्याणि करीरकन्दमूलानि ।
वनभूमीषु विहार आहारो वेणुतण्डुलकाः ॥]

लवलिका—अले चमूलंअ[4], शुट्ठु भणिअं । तह हि

णवकिसलआइ वशणं[5] सुलही कत्थूलिआ अ आलेवे ।
कक्कोले मुहवासे हाला गअकुंभमोत्ताओ ॥ २१ ॥

अवि अ

ओदंसिअसिहिबहिणा ताले कण्णेशु[6] दंतपत्ताइ ।
कचलीभलंमि चमलीवालाइ[7] भलंति शवलीओ ॥ २२ ॥

अले चमूलअ, बलिअं वणविहालेण पलिदेशंत[8] म्हि । [अरे चमूरक सुष्ठु भणितम् । तथा हि

नवकिसलयानि वसनं सुरभिः कस्तूरिका च आलेपः ।
कक्कोलो मुखवासो हारा गजकुम्भमुक्ताः ॥

अपि च

---

1 D सोहणं *2* B D यत्थ हि. The chāyā in A D यत्र हि. *3* B वेणु-तण्डुलआ. *4* B D चमूलआ. *5* A B वसण; the Mss. write स even in Māgadhī. If all the Mss. agree स is retained, otherwise श is written in these Māgadhī passages. *6* A B कण्णेसु. *7* A B चमुली°. *8* A पळिस्संत म्हि; B पळिसंत म्ह; D पळिसंत म्हि.

अवतंसितशिखिबर्हास्तालः कर्णेषु वृन्तपत्राणि ।
कबरीभरे चमरीवालानि बिभ्रति शबर्यः ॥
अरे चमूरक, बलवद्वनविहारेण परिश्रान्ताऽस्मि ।]

चमूरकः—तेण हि एहि दाव । शलोवलतीले शल्लईशंडए विश्शमिश्शम्ह । [तेन हि एहि तावत् । सरोवरतीरे सल्लकीषण्डे विश्रमिष्यावः ।]

(परिक्रामतः ।)

विदूषकः—(दृष्ट्वा) हे वअस्स, एसो खु एक्को वणअरो सह-चरीए[2] सह इदो आअच्छइ । [हे वयस्य, एष खल्वेको वनचरः सहचर्या सह इहागच्छति ।]

पवनंजयः—(दृष्ट्वा) महाभागः खल्वेतादृशो जनः । कुतः ।
अननुभूतवियोगकथामपि प्रियतमां प्रणयादुपलालयन् ।
भवति यः परिपूर्णमनोरथो युवजनः सुकृती स हि कामिनाम् २३

चमूरकः—(विलोक्य) कहं इह शल्लईतले दुवे पुलिशा अच्छंति । एशे अ पएशे ण शामण्णमाणुशेहि पवेशिदुं शक्के । ता एशे शव्वहा[3] खेअरजणे । ता जाव उवशप्पिअ पणमेम्ह । [कथमिह सल्लकीतले द्वौ पुरुषावासाते । एष च प्रदेशो न सामान्यमनुष्यैः[4] प्रवेष्टुं शक्यः । तस्मादेष सर्वथा खेचरजनः । तस्माद् यावदुपसृप्य प्रणमिष्यावः[5]]

लवलिका—जं चमूलओ भणादि । [यच्चमूरको भणति ।]

(उभावुपसृप्य प्रणमतः ।)

पवनंजयः—इहैव विश्रम्यताम् ।

चमूरकः—जं शामी आणवेदि । [यत् स्वाम्याज्ञापयति ।]

---

1 The chāyā in A बर्हान्. *2* D सहअरीए. *3* D शव्वह. *4* The chāyâ in A सामान्यजनैः. *5* Thus the chāyā in A D. The correct form would be प्रणंस्यावः. पणमेम्ह in the original Prākrit should be rendered by प्रणमावः.

(उपविशतः ।)

लवलिका—(स्मृतिं नाटयित्वा) अले चमूलआ, एअं उद्देशं दट्ठूण शुमलाविद म्हि । तइआ एत्थ एव्व खु शल्लईतले दिट्ठाओ दुवे अपुव्वाओ इत्थिआओ । [अरे चमूरक, एतमुद्देशं दृष्ट्वा स्मारितास्मि । तदा अत्रैव खलु सल्लकीतले दृष्टे द्वे अपूर्वे स्त्रियौ ।]

चमूरकः—अले शुट्ठु शुमलिदं । [अरे सुष्ठु स्मृतम् ।]

विदूषकः—भद्दे, कहं दिट्ठाओ एत्थ इत्थिआओ, कीरिसीओ वा ताओ । [भद्रे, कथं दृष्टे अत्र स्त्रियौ, कीदृश्यौ वा ते ।]

लवलिका—अज्जे, महंतं खु तं शोअणिज्जं च अवय्यं[2] । [आर्य, महत् खलु तच्छोचनीयं चावद्यम् ।]

पवनंजयः—भद्रमुख, कथ्यतां तावत् ।

चमूरकः—शुणादु शामी । [शृणोतु स्वामी ।]

पवनंजयः—अवहितोऽस्मि ।

चमूरकः—कदाइ खु णिशामुहे एत्थ एव्व अहके इमाए शह आअंदे[3] । [कदाचित् खलु निशामुखे अत्रैवाहमनया सहागतः ।]

पवनंजयः—ततस्ततः ।

चमूरकः—तदो अ एक्केण भेलववेशेण पुलिशेण अहिट्ठिअं अब्भंतलशंठिअइत्थिआजुअलं णहादो ओदिण्णं[4] याणं । [ततश्चैकेन भैरववेषेण पुरुषेणाधिष्ठितम् अभ्यन्तरसंस्थितस्त्रीयुगलं नभसोऽवतीर्णं यानम् ।]

पवनंजयः—ततस्ततः ।

चमूरकः—तदो अ खणं अदिक्कमिअ तेण वि पुलिशेण, 'इदो एहि इत्थिए, किं दाणिं एत्थ कज्जं, गच्छम्ह जाव तुह जम्मभूमिं' त्ति पुणो वि तं णिब्बंधिज्जमाणा अवला इत्थिआ 'ण खु दाव एआ-

---

1 D अज्ज (अय्य). *2* A B अवद्दिअं. *3* D सह आअदो. *4* D ओच्चिण्णं.

लिशी[1] तादं अंबं च दक्खिउं पालेमि' त्ति शबाहं भणंती एत्थ शल्लई-तले ठिआ । [ततश्च क्षणमतिक्रम्य तेनापि पुरुषेण 'इत एहि स्वि, किमिदानीमत्र कार्यं, गच्छामो यावत्तव जन्मभूमिः' इति पुनरपि तं निर्बध्यमाना अपरा स्त्री, 'न खलु तावदेतादृशी तातमम्बां च द्रष्टुं पारयामि' इति सबाष्पं भणन्ती अत्र सल्लकीतले स्थिता ।]

पवनंजयः—(आत्मगतम्) कथमिदानीमापतिष्यति ।

विदूषकः—(आत्मगतम्) णूणं तह एव्व परिणिट्ठिअं । [नूनं तथैव परिनिष्ठितम् ।]

चमूरकः—तदो शा किं बहुणा ण खु इमादो वणादो णिग्गच्छामि त्ति वअणं दाऊण तुण्हिक्का ठिआ । तदो अ अवलाए इत्थिआए 'शहि, तुमं एवं अंतव्वदिणी, कहं दाणिं वणंमि अच्छिउं अज्झवस्ससि, मुंचेहि इमं दुप्पडिण्णं, जाव महिंदउरं गच्छम्ह' त्ति भणिअं । शा[2] वअणं अशुण्णंती लोइदुं पउत्ता । [ततः सा किं बहुना न खल्वस्माद्वनान्निर्गच्छामीति वचनं दत्त्वा तूष्णीका स्थिता । ततश्च अपरया स्त्रिया 'सखि त्वमेवमन्तर्वत्नी, कथमिदानीं वने स्थातुमध्यवस्यसि, मुञ्चेमां दुष्प्रतिज्ञां, यावन्महेन्द्रपुरं गच्छाव' इति भणितम् । सा वचनमशृण्वती रोदितुं प्रवृत्ता ।]

पवनंजयः[3]—कष्टं भोः कष्टम् । अञ्जनैव संवृत्ता । पवनंजयमतः-परं श्रोष्यति[4] ।

विदूषकः—(स्वगतम्) कहं तत्तहोदी एव्व संवुत्ता । [कथं तत्र-भवत्येव संवृत्ता ।]

चमूरकः—तदो अ तेण वि पुलिशेण 'होवि, शामिणीए केदुमदीए आणाए जम्मभूमिं पावेदुं तुमं गण्हिअ आअदे, कहं दाणिं तुमं मग्गमज्झे वणगहणे पलित्तजिअ गच्छामि' त्ति भणिअं । तदो

---

1 A B एआरिसी, D एआळिशी. 2 A शे आ; B D शे अ. 3 D पव । आत्म ।. 4 D °मितःपरं श्रोष्यसि ।

ताए वि 'किं दाणिं बहुजप्पिदेण[1], जम्मभूमिं चेअ मए शा पाविअ त्ति तुह शामिणीए भणाहि, अम्हे पुणो[2] जह कहं पि शअणशआशं गमिस्सम्ह' त्ति भणिअं। [ततश्च तेनापि पुरुषेण 'भवति, स्वामिन्याः केतुमत्या आज्ञया जन्मभूमिं प्रापयितुं त्वां गृहीत्वा आगतः, कथमिदानीं त्वां मार्गमध्ये वनगहने परित्यज्य गच्छामि' इति भणितम्। ततस्तयापि 'किमिदानीं बहुजल्पितेन, जन्मभूमिमेव सा मया प्रापितेति तव स्वामिन्यै भण, आवां पुनर्यथा कथमपि स्वजनसकाशं गमिष्यावः' इति भणितम्।]

पवनंजयः—ततस्ततः।

चमूरकः—तदो अ तेण वि 'का गई। तुमं वि खु एक्का मम शामिणी। ता तुह वि आणा ण मए उल्लंघिअव्वा। अण्णं अ। एव्वमेअ तुह जम्मभूमिं पावेदुं अहके वि णिग्घिणे ण पालेमि। ता शव्वहा तुम्हेहिं शअणशआशे ओशप्पिदव्वे। खंतव्वे अ मए पलणिओअपलवंतेण कए ण मे अदिक्कमे' त्ति भणिअ 'शव्वाओ देवदाओ लक्खह एअं पअत्तेण' त्ति मंतिअ णहं उप्पडिअं। [ततश्च तेनापि 'का गतिः। त्वमपि खल्वेका मम स्वामिनी। तस्मात्तवाप्याज्ञा न मयोल्लङ्घितव्या। अन्यच्च। एवमेव तव जन्मभूमिं प्रापयितुम् अहमपि निर्घृणो न पारयामि। तस्मात् सर्वथा युवाभ्यां स्वजनसकाशं उपसर्पितव्यः। क्षन्तव्यश्च मया परनियोगपरवता कृतो न मे अतिक्रम इति भणित्वा 'सर्वा देवताः रक्षत एतां प्रयत्नेन' इति मन्त्रयित्वा नभ उत्पतितम्।]

पवनंजयः—(सविषादम्) ततः।

चमूरकः—तदो अ इमादो भूधरवाडवीहिदो इमं चेअ पाअशत्तशअशंकिण्णं माअंगमालिणिं णाम वणगहणं एशा पाअपदणलंभंतीए[3] शह शहीए पविट्ठा। [ततश्च इतो भूधरवाटवीथित इदमेव पार्क्[4]-

---

1 D जप्पिएण. 2 D उणो. 3 obscure; D पाअपडण ल°. 4 The word पाअ in the original Prākrit could be better rendered by पाप (dangerous, ferocious).

सत्त्वशतसंकीर्णं मातङ्गमालिनीं नाम वनगहनम् एषा पादपतनलम्बमानया सह सख्या प्रविष्टा ।]

पवनंजयः—(साक्रोशम्) प्रिये,[2] केदानीं वर्तसे । (मुह्यति ।)[3]

विदूषकः—(सबाष्पम्) तत्तहोदि, णिट्ठुरा खु सि संवुत्ता । [तत्रभवति, निष्ठुरा खल्वसि संवृत्ता ।]

चमूरको लवलिका च—अज्ज[4], के शे । [आर्य, कः सः ।]

विदूषकः—एसो खु तिस्से भट्टा । [एष खलु तस्या भर्ता ।]

उभौ—हद्धि । [हा धिक् ।]

विदूषकः—समस्ससिहि वअस्स, समस्ससिहि । [समाश्वसिहि वयस्य, समाश्वसिहि ।]

पवनंजयः—(समाश्वस्य)

यो मासैरविलम्बितं त्रिचतुरैः प्रत्यागतं विद्धि मा-
मित्यापृच्छय गतस्तदाहमियता कालेन चास्म्यागतः ।
इत्थं तन्वि तवैक एव महतः कृच्छ्रस्य हेतुः स्वयं
निर्लज्जः परिदेव्य एव स कथं प्राणप्रियः संप्रति ॥ २३ ॥

विदूषकः—अहो देव्वस्स[5] दुव्विलसिअं । [अहो दैवस्य दुर्विलसितम् ।]

पवनंजयः—

निरर्गलं क्रूरमृगैरधिष्ठिता वनान्तभूमीरवगाहमानया ।
अयं जनः संप्रति कान्दिशीकतामनीयत प्रेयसि खण्डितस्त्वया ॥२४॥

चमूरकः—अज्ज, का एत्थ पडिवत्ती । [आर्य, कात्र प्रतिपत्तिः ।]

विदूषकः—कहं विअ एअं समस्सासेमो । [कथमिवैनं समाश्वासयामः ।]

---

1 obscure *2* D हा प्रिये. *3* D omits मुह्यति and विदूषकः. *4* D अज्ज (अय्य). *5* A B D दव्वस्स.

पवनंजयः—

प्रसह्य विद्याधरसुन्दरीभिरहं न जातो हृतपूर्णपात्रः ।
कथं प्रसूतासि मृगाङ्कनाभिः सार्धं वने तन्वि निरीक्ष्यमाणा ॥ २५ ॥

(सविशेषकरुणम्) अयि महेन्द्रराजपुत्रि,

क मनो मयि सक्तमात्मनः क च दाक्षिण्यमयि स्वभावजम् ।
कथमेकपदे त्वया वयं शिथिलीभूतमनोरथाः कृताः ॥ २६ ॥

किम् अपरमिह स्थीयते । यावदहमप्यञ्जनामनुसरामि ।

(उत्तिष्ठति ।)

विदूषकः—(ससंभ्रममुत्थाय) अविह । कहं विअ साहसं काउं अज्झवससि । अवस्सं खु तत्तहोर्दि वणवासिणीओ[1] देवदाओ रक्खंति । एसा अरण्णाणी ण खु तुम्हे[2] एक्केण मग्गेउं सक्का । ता वेअड्ढं गदुअ सव्वेण वि विज्जाहरजणेण सह आअदुअ अण्णेसिअव्वं । [भवत । कथमिव साहसं कर्तुम् अध्यवस्यसि । अवश्यं खलु तत्रभवतीं वनवासिन्यो देवता रक्षन्ति । एषा अरण्यानी न खलु त्वया एकेन मार्गितुं शक्या । तस्माद् विजयार्धं गत्वा सर्वेणापि विद्याधरजनेन सहागत्यान्वेषितव्यम् ।]

पवनंजयः—नैतत् समीचीनम् ।[3]

अशरण्यमिदमरण्यं मम तावत् प्राणवल्लभा याता ।
चेतःसंमोहकरं गरमिव नगरं कथं सेवे ॥ २७ ॥

विदूषकः—तह वि जइ कदाइ तत्तहोदी अंजणा, अप्पणो कारणादो अत्तहोदो असहाअस्स अणपेक्खिअजीविअस्स वणप्पवेसं सुणइ तदो अत्ताणं[4] मोइस्सदि । ता ण हु जुत्तो तुह एत्थ माअंगमालिणीपवेसो ।

---

1 D वणणिवा° (and also chāyā वननिवा°). 2 A तुम्मेण. 3 D adds पश्य. 4 D अप्पाणं.

[तथापि यदि कदाचित् तत्रभवती अञ्जना, आत्मनः कारणाद् अत्रभवतोऽसहायस्यानपेक्षितजीवितस्य वनप्रवेशं शृणोति, तत आत्मानं मोचयिष्यति। तस्मान्न युक्तस्तवात्र मातङ्गमालिनीप्रवेशः।]

पवनंजयः—

प्रियायाः संदिग्धं प्रियसखमयं जीवितमपि
क तावद् वृत्तान्तं मम समधिगन्तुं च समयः।
कदाचिज्जीवेत् सा यदि तु विधिना जीवितरुचिं
बलात्तस्या मन्ये नियमयति मद्दर्शनरतिः॥ २८॥

विदूषकः—दाणिं खु तुमं महिंदउरं गमिस्सामि त्ति भणिअ पत्थिदो। [इदानीं खलु त्वं महेन्द्रपुरं गमिष्यामीति भणित्वा प्रस्थितः।]

पवनंजयः—अथ किम्।

विदूषकः—एवं च महाराओ किं ति चिराअदि वच्छो त्ति महिंदउरे वओहरजणं पट्ठावइस्सदि। तदो तहिं वि तुइ अदिट्ठे किं पडिवज्जस्संति महाराअपल्हादो, महिंदराओ, अंबा केदुमदी, तत्तहोदी मणोवेआ सव्वा वि अण्णहासंकिणीओ। [एवं च महाराजः किमिति चिरायति वत्स इति महेन्द्रपुरे वचोहरजनं प्रस्थापयिष्यति। ततस्तत्रापि त्वय्यदृष्टे किं प्रतिपत्स्यन्ते महाराजप्रह्लादो, महेन्द्रराजो, अम्बा केतुमती, तत्रभवती मनोवेगा, सर्वा अपि अन्यथाशङ्किन्यः।]

पवनंजयः—(विदूषकं हस्ते गृहीत्वा) वयस्य, अनुल्लङ्घितपूर्वं भवता मद्वचनमिति किंचिद् वक्तुकामोऽस्मि।

विदूषकः—विस्सद्धं भणाहि। [विस्रब्धं भण।]

पवनंजयः—वयस्य, विजयार्धमेव गत्वा त्वरितम् अञ्जनान्वेषणाय भवता विद्याधरजनैः सहागन्तव्यम्।

विदूषकः—(सावज्ञम्) अलं दाणिं अदो वरं सुदेण। [अलमिदानीमतः परं श्रुतेन।]

पवनंजयः—वयस्य, अलमस्मद्विरहकातरतया, कार्यमेव पर्यालोचय।

विदूषकः—वणमज्झे वअस्सं मोत्तूण कहं किर णअरं गच्छेमि। [वनमध्ये वयस्यं मुक्त्वा कथं किल नगरं गच्छामि।]

पवनंजयः—मच्छरीरस्पृष्टिकया[1] शापितोऽसि। गच्छेदानीं कार्यनिष्पत्तये। अहमपि यावद्भवदागमनम् अत्रैव प्रतिपालयिष्यामि।

विदूषकः—(सास्रम्) का गई। (स्वगतम्) होदु। जाव अहं पि तत्तहोदिं अण्णेसिदुं सव्वं पि विज्जाहरजणं इहं[2] आणेमि। [का गतिः। (स्वगतम्) भवतु। यावदहमपि तत्रभवतीमन्वेष्टुं सर्वमपि विद्याधरजनमिहानयामि।]

(निष्क्रान्तः[3]।)

पवनंजयः—(उत्थाय) यावदञ्जनामन्वेष्टुं मातङ्गमालिनीं गच्छामि।

चमूरको लवलिका च—(उत्थाय) जाव बंधुजणो आअमिश्शदि दाव किं ण शामिणा पडिवालेदव्वं। [यावद्बन्धुजन आगमिष्यति तावत् किं न स्वामिना प्रतिपालयितव्यम्।]

पवनंजयः—विद्याधरजनोऽपि प्रवेक्ष्यत्येव[4] मातङ्गमालिनीम्। तेषां चास्मत्प्रवेशनिवेदनाय भवताप्यत्रैव आसितव्यम्।

चमूरकः—शच्छंदचालिणो[5] खु पहुणो होंति। [स्वच्छन्दचारिणः खलु प्रभवो भवन्ति।]

(प्रणम्य निष्क्रान्तः सह लवलिकया।)

पवनंजयः—(परिक्रामन्, पृष्ठतो विलोक्य) कथमिदानीमपि मामनुसरति कालमेघः।

---

1 D स्पृष्टिकतया. 2 D इध. 3 D इति निष्क्रान्तः। 4 A B D प्रेक्षत्येव which makes no sense and is ungrammatical. 5 D शच्छंदशालिणो हु प°.

भद्र त्वं नवसल्लकीकिसलयान्यास्वादयन् कानने
भूयः पद्मसरोऽवगाहनसुखैरात्मानमाराधयन् ।
सार्धं प्राप्य करेणुभिश्च कलभैः स्वेच्छाविहारोत्सवान्
कामं निर्विश गन्धसिन्धुरपते यूथाधिराज्यश्रियम् ॥ २९ ॥

कथम् असावसाधारणेन प्रेम्णा मामेवानुवर्तते । तेन हि इतस्तावत् । (परिक्रम्य, पुरो विलोक्य)

यत्र याता प्रिया सेयं प्राप्ता मातङ्गमालिनी ।
यावदत्र परिभ्राम्यन् मृगये मृगलोचनाम् ॥ ३० ॥

(निष्क्रान्तः ।)

इति श्रीहस्तिमल्लेन विरचिते अञ्जनापवनंजयनाटके पंचमोऽङ्कः[1] समाप्तः ।

षष्ठोऽङ्कः[2] ।

(ततः प्रविशतो वीणां वादयन् गन्धर्वो मणिचूडः सहचरी च रत्नचूडा ।)

मणिचूडः—

नवतोयबिन्दुपतनेन मीलिते
सरसीरुहे सहचरीं तिरोहिताम् ।
प्रथमोदये जलमुचां मधुव्रतो
विरहातुरो मृगयते समन्ततः ॥ १ ॥

रत्नचूडा—जलदसमए वहू पिअविरहिआ विअ उअ पदुमिणी इमा इह परिमिलाअदि । [जलदसमये वधूः प्रियविरहितेव पश्य पद्मिनी इयमिह परिम्लायति ।]

---

1 D °विरचितमंजनापवनंजयं नाम पंचमोऽङ्कः ॥ ५ ॥ *2* D om. षष्ठोऽङ्कः.

उभौ—

उद्दामपञ्चबाणे पयोदकाले सुदुस्सहे के वा
धीरा विहाय जायासमागमं केवलं च जीवन्ति ॥ २ ॥

रत्नचूडा—अंमो णेण एव्व गीदवत्थूवग्घादेण सुमेरिद म्हि किं वि उम्मत्तो सो राअउत्तो जो तारिसिं पि तं पिअं अंजणं विरहिअ एत्तिअं कालं वट्टइ। [अहो अनेनैव गीतवस्तूपोद्घातेन स्मारितास्मि किमपि उन्मत्तः स राजपुत्रो यस्तादृशीमपि तां प्रियामञ्जनां विरहय्य एतावन्तं कालं वर्तते ।]

मणिचूडः—

विहाय विरहक्लान्तामियन्तं कालमञ्जनाम् ।
स्थितः स खलु यत्सत्यमुन्मत्तः पवनंजयः ॥ ३ ॥

रत्नचूडा—सव्वहा णिट्ठुरा खु पुरिसा। [सर्वथा निष्ठुराः खलु पुरुषाः।]

मणिचूडः—प्रिये, मैवं वादीः । विधिरेवात्रोपालम्भनीयः । अन्यथा

क्वासौ महेन्द्रतनया क्वेदं मातङ्गमालिनीगहनम् ।
अनुभाव्य एव बाढं जन्मान्तर एव कर्मपरिपाकः ॥ ४ ॥

रत्नचूडा—एव्वं एदं । अण्णहा तारिसीए विणा सहअरीए कहं किर सो एत्तिअं कालं वट्टिदुं पहवदि । जं अहं वि णाम अइरपरिइदा एत्तिअं वि कालं अपेक्खंती दिढं [3]म्हि उक्कंठिदा । सव्वहा महाणुभावो खु सो पुत्तो जस्स जम्मेण ताए वणवासदुक्खं अदिवाहिअं। [एवमेतत् । अन्यथा तादृश्या विना सहचर्या कथं किल स एतावन्तं कालं वर्तितुं प्रभवति। यदहमपि नाम अचिरपरिचिता एतावन्तमपि कालमपश्यन्ती

---

[1] A सुमरदम्ह, B सुमराघम्ह. It should be सुमराविद म्हि. [2] A कहं कीरिसो (chāyā—कथं कीदृशः). [3] A दिढं हि (chāyā—दृढास्मि).

इदमस्मि उत्कण्ठिता । सर्वथा महानुभावः खलु स पुत्रो यस्य जन्मना तस्या वनवासदुःखमतिवाहितम् ।]

मणिचूडः—एवमेतत् । (स्पर्शं रूपयित्वा)

संप्रति सुदति प्रतिनवजलकणिकारेणुहारिणा मरुता ।
तिम्यति वीणातन्त्रीरियं शनैः प्रावृषेण्येन ॥ ५ ॥

तदितो गच्छावः ।

रत्नचूडा—जं अज्जउत्तो आणवेदि । [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

(उत्थाय निष्क्रान्तौ ।)

मिश्रविष्कम्भः ।[2]

(ततः प्रविशत्युन्मत्तवेषः पवनंजयः ।)

पवनंजयः—(सकोपम्) आः पापे, मत्प्रभावानभिज्ञे निकारशालिनि मातङ्गमालिनि

इतश्चेतश्चैवं मयि मृगयमाणेऽपि सुचिरं
न चोरि[3] त्वं धार्ष्ट्यान्मम सहचरीं दर्शयसि चेत् ।
कृतं संदेहेन प्रसभमधुना त्वामयमिषु-
र्मुखोद्गीर्णज्वालाजटिलदववह्निर्ज्वलयति ॥ ६ ॥

(ज्यामास्फाल्य शरं संधातुमिच्छति[5] । विहस्य) न भेतव्यम् । कथमस्थान एवायमस्माकमावेगः । इत्थमस्थिरप्रकृतेः कुतोऽस्याश्चोरयितुं च प्रागल्भ्यम् । अस्मज्ज्याघोषमात्रेणैव सर्वतोऽपि व्याकुलितेयमरण्यानी । तथा हि ।

गुहामुखविसर्पिभिः प्रतिरवैरसौ दुःश्रवैः
स्फुटस्फुटितकन्दरः सपदि भूधरः क्रन्दति ।

---

1 ताए in the original Prākrit could also be rendered by तया
2 D om. मिश्रविष्कम्भः ।, *3* B हेरि. *4* B मुखोदीर्ण°. *5* B इच्छत्, D इच्छन्.

अमी च भयविह्वला वनमपोह्य कण्ठीरवाः
सहैव शरभैरितः क्वचन विद्रवन्ति द्रुतम् ॥ ७ ॥

(पुरो विलोक्य) अये, अयं च पुनरस्मदीयः कालमेघः ।

प्रवृद्धमदनिर्झरः स्तिमितकर्णतालः क्रुधा
दहन्निव दिशो दशाप्यसकृदेव नेत्रार्चिषा ।
विलोकयति सत्वरोन्नसितसव्यदन्तार्गला-
निवेशितकरः पुरः समरशङ्कया संप्रति ॥ ८ ॥

अहो गन्धसिन्धुरवर, अलमलमविषय एवामुना समरसंरम्भेण । अन-पराधैव खल्वेषा तपस्विनी मातङ्गमालिनी । पश्य ।

चलकिसलयहस्तैरादरादाह्वयन्ती
नततरुविटपाग्रप्रश्रयप्रह्वमेषा ।
उपहरति पुरस्तादुच्छ्रसन्मालुधानी-
कुसुमनिकरपातैरर्घ्यलाजाञ्जलिं नः ॥ ९ ॥

तदिदानीमस्माभिरनन्विष्टपूर्वेषु वनोद्देशेष्वन्वेषणीयम् । एहि तावत् ।

तव खलु कराकाराबृह गतिर्गतिरेव ते
तव मदमपीरेखा रोमावलिं तुलयत्यलम् ।
स्तनतटयुगं यस्याः कुम्भस्थलेन समं तव
द्विप मृगवधूनेत्रां तां भो वयं मृगयामहे ॥ १० ॥

(परिक्रम्य, अग्रतो विलोक्य च सशोकम्)

कष्टं भोः कष्टमियं वनस्थली दर्भसूचिकण्टकिता ।
कथमिव हन्त गता स्यादिह दयिता पादचारेण ॥ ११ ॥

(विचिन्त्य) नैव तावदेतादृशेषु मार्गेषु सख्यागमनं सहते वसन्त-

---

1 B omits समर. 2 A हस्तगता.

माला । तदितो वयं विचिनुमः । (परिक्रम्य विलोक्य च सहर्षम्) दृष्ट एव मया प्रियाया मार्गः । तथा हि

नातिदूरे मया तस्या लक्ष्यते गतिशंसिनी ।
पादपङ्क्तिरितः[1] सेयमलक्तकरसाङ्किता ॥ १२ ॥

तद्यावदिदानीं तेनैव मार्गेण गच्छामि । (उपसृत्य, निरूप्य च सखेदम्) कथममी

कदम्बपुष्पप्रकरानुकारिणो धृतेन्द्रचापद्रवबिन्दुबन्धुराः ।
महेन्द्रगोपाः खलु मन्मथानलस्फुलिङ्गभङ्गा घनकालशंसिनः १३

तत्प्रवृत्त एवायं विरहिजनसंक्षोभवैशसदुर्ललितो वर्षासमयः । (नभो विलोक्य)

गर्जन्नुच्चैः पर्जन्योऽयं वर्षत्याराद्वारां धाराः ।
विद्योतन्ते विद्युन्माला हा हा धिग्धिक्कष्टं कष्टम् ॥ १४ ॥

(परिक्रम्य, विलोक्य च सहर्षम्) लक्षित एव मानिन्या मार्गः । इह हि

मयि प्रवासेन कृतापराधे रुषा स्खलन्त्या गतिषु प्रियायाः ।
दृष्टो मया मौक्तिकहार एष संरम्भविच्छिन्नगुणो विशीर्णः[2] ॥ १५ ॥

(निर्वर्णयन् विलोक्य) कथमसौ पार्श्वतः प्रत्यग्रमौक्तिकप्रसवोपशोभितां शङ्खकुटुम्बिनीं विडम्बयन्ती गजदन्तार्गला । एतान्यपि तावदस्माकं विपर्यस्तभागधेयतया गजदन्तमुक्ताफलानि संवृत्तानि । तदन्यतो विचिनुमः । (परिक्रम्यावलोक्य[3] च) एष खलु पादपेषु संभावनीयो रक्ता-

---

1 Thus A B D. पदपङ्क्तिः would be better. 2 B विकीर्णः. 3 B adds before this stage direction, the following:—अये एष युगपत्प्रवर्तमानसर्वर्तुविभवसुभगो निपतितसुखोपसेव्यवर्षातपः प्रेक्षणीयो वनदेवताविहारोद्यानदेशो वनोद्देशः । विशेषतो विविक्तविहारोत्सुकाश्च विद्याधरस्त्रियः । तदेनमेव तावदवगाहिष्ये !; D also has this passage (which begins with (परिक्रम्य पुरो विलोक्य च) and ends with (परिक्रम्यावलोक्य च).

शोकः । भवतु, एनमभ्यर्थयिष्ये । अङ्ग महीरुह महत्तर रक्ताशोक,

नितम्बिनीं तां मम दर्शय त्वं संभावयिष्यामि ततो भवन्तम् ।
अकालपुष्पोद्गमदायिना ते वामेन तस्याश्चरणाम्बुजेन ॥ १६ ॥

(विचिन्त्य, सोद्वेगम्)

शोच्यां दशां प्रपन्ने मयि शोकपराङ्मुखो निभृतम् ।
सोऽयं प्रकाशयति निजमन्वमर्थशोक इति नाम ॥ १७ ॥

तदितो वयम् । (अन्यतो गत्वा विलोक्य च) एष खलु कामिनीजनवदन-मदिरागण्डूषरसदोहली बकुलः । तद्यावदेनमभ्यर्थये । अयि भोः केसर,

मम प्रियां त्वं नवपुष्पमेखलागुणप्रियां तां यदि दर्शयिष्यसि[1] ।
वितारयिष्यामि ततोऽहमेव ते ध्रुवं सखे तन्मुखवासदौहृदम्[2] ॥ १८ ॥

(निरूप्य) कथमसावस्मानविदिताञ्जनावृत्तान्ततया दलाग्रनिष्यन्दिभि-र्वर्षाग्रबिन्दुभिः[3] कृताश्रुमोक्षस्तूष्णीक एव शोचति । तेन हि वि-सर्जिताः स्मः । (परिक्रम्यावलोक्य च सोत्कण्ठम्)

एष श्यामाविटपः[4] प्रत्यग्रशिरीषमालिकाश्यामः ।
स्मरयति तदञ्जनाया बाहुलतायुगलमंसौ मे ॥ १९ ॥

(पुरो विलोक्य) अये, इयमितस्तमालपादपस्याधस्तादिन्द्रनीलशिलापट्ट-मधिशेते चमरी । यावदेनां पृच्छामि । अयि चमरि,

पृच्छामि त्वां मम दयितया ब्रूहि संभावितः किं
पादन्यासैः स्खलितविषमैः काननोद्देश एषः ।
शोकायासाद्विरहगुणितं विश्लथं केशपाशं
कान्त्या यस्याः स्फुटमनुकरोत्येष ते बालभारः ॥ २० ॥

---

1 B वर्णयिष्यसि. 2 A दौहृदम् (=दोहदम्?). 3 A omits वर्षाग्रबिन्दुभिः.
4 A श्यामो विटपः.

कथमसौ नवजलकणिकासेकभयादस्यैव पार्श्ववर्तिनः पर्वतस्य दरीगृहं प्रविष्टा। सर्वत्रापराधी खलु जाल्मो जलदकालः। (विचिन्त्य) भवतु। अनन्विष्टपूर्वां चाहमेनां पर्वतोपत्यकां यावद्विचिनोमि। (परिक्रम्याव-लोक्य च)

एष हि स पञ्चबाणो[1] धनुर्धरो वर्तते पुरो रुन्धन्।
संरब्धः संहर्तुं प्रोषितजनधैर्यसर्वस्वम् ॥ २१ ॥

तदिदानीमभियोक्ष्ये।

पूर्वं तावदनङ्ग इत्यविरतामारोप्य रूढिं परां
विध्यन् वञ्चितकेन सायकशतैः प्रच्छन्नचारी स्थितः।
अद्य त्वेवमिहागतोऽसि सहसा सज्जः स्वयं मूर्तिमान्
किं त्वं दुर्मद मन्मथापसद मामन्यादृशं मन्यसे ॥ २२ ॥

(विचिन्त्य) सर्वथा नैष तावदस्माकमेतादृशमुपालम्भमर्हति। कुतः।

चिरतरं विधिना प्रतिबन्धिना विघटितानि मिथो मिथुनान्यपि।
घटयितुं प्रभवत्यचिरादिव स्वयमसौ भगवान् रतिवल्लभः ॥ २३ ॥

तदिदानीमेनमनुयोक्ष्ये। अहो मकरध्वज,

कथय कथय या ते दर्पसर्वस्वभूमिः
किसलयसुकुमारं मूर्तिमज्जीवितं मे।
स्वयमिव वनलक्ष्मीः संचरन्ती वनान्ते
चकितहरिणनेत्रा सा त्वया दृष्टपूर्वा ॥ २४ ॥

(विभाव्य, सहासम्) उन्मत्तः खल्वहम्। न त्वयं हन्त कुसुमधन्वा। इदं हि पर्वतनितम्बभागावष्टम्भिन्यां स्फाटिकशिलाभित्तौ संक्रान्तम् अस्मत्प्रतिबिम्बम्। तदन्यतो विचिनोमि। (परिक्रम्य विलोक्य च, सोत्कण्ठम्)

---

1 B पंचबाणैः.

संप्रति शुचिस्मितायाः समुच्छ्वसद्विशदकुसुमरमणीया ।
मामिह कुन्दलतेयं स्मरयति मन्दस्मितं तस्याः ॥ २५ ॥

एषा हि तावदिहैव संनिहिता रम्भा। तदेनामेव प्रक्ष्यामि। अयि रम्भे,

जातामप्सरसां कुले सुविदिते त्वां साधु जानीमहे
पृच्छामः प्रणयान्तदत्रभवतीं दत्तावधाना भव ।
लावण्येन भवेत यूयमपि यां दृष्ट्वा स्वयं विस्मिताः
सा विद्याधरसुन्दरी नयनयोः किं ते गता गोचरम् ॥ २६ ॥

(विचिन्त्य) अयं रम्भासाम्येन कदलीमेव खल्वहमप्सरोमुग्धो व्याहरामि। भवतु। एतामनुयोक्ष्ये ।

ऊरुद्वयोपमां यस्याः प्राप्य त्वं श्लाघ्यसे भृशम् ।
रम्भोरुः किमितो याता सा मम प्राणवल्लभा ॥ २७ ॥

अथवा नैतदपि सुसंगतम् । कुतः ।

अद्यापि शीतलोऽयं रम्भास्तम्भो लभेत नैव मनाक् ।
ऊरुद्वयेन साम्यं वर्षासु सुखोष्मणा तस्याः ॥ २८ ॥

तत् कथमिवैनां प्रक्ष्यामि । (विचिन्त्य) सर्वथा नैव तावदस्याः पार्श्वगता[1] दयिता । अन्यथा हि ।

विरहानलतापमञ्जनाया ननु नामापनयेद्वसन्तमाला ।
शिशिरैः कदलीदलैर्गृहीतैरिह शय्यां रचयेच्च वीजयेच्च ॥ २९ ॥

अलूनदलैव चेयं कदली । तदन्यतो विचिनोमि । (परिक्रम्य, स्पर्शं रूपयित्वा) इममेव तावद्वनविहारव्यसनिनं पुरोवातं प्रक्ष्यामि । अयि भोः समीरण, शृणु तावत् ।

---

1 D पार्श्वमुपगता.

अत्रैव पत्नी किमु वत्स्यतीयमस्यास्त्वमाकेकरलोचनायाः ।
रतिश्रमाशंसिकपोललेखास्वेदोदबिन्दूनपनेतुमीशः ॥ ३० ॥
(गन्धमाघ्राय सहर्षम्)

एष खलु गन्धवाहो दयितानिःश्वासपरिमलोद्गन्धिः ।
अवचनमाह पुरस्तादियं प्रिया ते स्थितैवेति ॥ ३१ ॥

तदस्यैव गन्धग्राहस्य प्रतीपमधुना गच्छामि । (परिक्रम्य दृष्ट्वा च) कथमसौ कर्पूरतरोरधस्तादचिरविरूढशैलेयपटलं शिलातलमधितिष्ठन् कस्तूरिकामृगः । भवतु । एतमपि तावदनुयोक्ष्ये । अयि वनलक्ष्मी-समालंभन कस्तूरिकामृग,

मम प्रिया मद्विरहेण दीर्घं निःश्वस्य निःश्वस्य किमत्र याता ।
निर्व्याजमेवानुकरोति यस्या निःश्वासगन्धं तव नाभिगन्धः ॥ ३२ ॥
(²सरोषम्)

धिग् ग्रन्थिपर्णकवलं स्वैरमसौ रसयितुं समारभते ।
तदितो वयं किममुना स्वकार्यमात्रैपिणा कार्यम् ॥ ३३ ॥

(अन्यतो गत्वा विलोक्य च) एष हि सर्वतः समुद्भिद्यमानकोरकाङ्कुर-सुकुमारः सहकारः । यावदेनमनुयुञ्जे ।

ललिता सहकारमञ्जरीयं तव यस्याः श्रवणावतंसयोग्या ।
क गता गजखेलगामिनी सा श्रवणान्तायतलोचना नतभ्रूः ॥ ३४ ॥

(सहर्षम्) अये, समुच्चलितेनैव किसलयहस्तेन पश्चिमां दिशमसौ निर्दि-शति, तदित एव खलु प्रस्थिता । यावदहमनेनैव मार्गेण गच्छामि । (प[रि]क्रामति ।)

---

1 B किमवत्स्यतीयम्; D अत्रैकपत्नी वर्त्तते मे यस्या°; the first Pāda is obscure. *2* B D add विलोक्य before सरोषम्.

(आकाशे)

धारेमि मंदभाआ अत्ताणं[1] केत्तिअं पुणो कालं।

[धारयामि मन्दभागा आत्मानं कियन्तं पुनः कालम्।]

(इत्यर्धोक्ते)

पवनंजयः—(परिक्रान्तेन कर्णं दत्त्वा) कथं प्रियाया इव स्वरयोगः।

(पुनराकाशे)

पिअसहि वसन्तमाले उवेक्खिआ अज्जउत्तेण[2]॥ ३५॥

[प्रियसखि वसन्तमाले उपेक्षिता आर्यपुत्रेण॥]

पवनंजयः—(सहर्षम्) अये प्रियैव संवृत्ता। यावदुपसर्पामि।
(उपसर्पन्)

प्राणसमामयि भवतीमयं जनः कथमुपेक्षितुं क्षमते।

इत्थं यो विरहार्तस्त्वामेकमपेक्षते[3] शरणम्॥ ३६॥

(उपसृत्य, परितो विलोक्य, ससंभ्रमम्) क नु खलु तिरोहिता स्यात्।
(आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा)

त्वद्दर्शनोत्सवसमुत्सुकचेतसि त्वं

प्रत्यागते मयि किमन्तरिताद्य चण्डि।

अस्थान एव कुपिता विरहात्तथा मां

खिन्नं पुनः किमसि खेदयितुं प्रवृत्ता॥ ३७॥

भवति वसन्तमाले, किमिदानीं त्वमपि प्रियसखीं न प्रसादयसि।

(पुनरप्याकाशे धारेमि मंदभाआ इति पूर्वोक्तमेव पठ्यते।)

पवनंजयः—(श्रुत्वा दृष्ट्वा च) कथमयं फलापीडभरविनम्रां दाडिमीं यष्टिमधितिष्ठन्[4] शुको व्याहरति। अनेन खलु दयितास्वरानुकारिणा कलमधुरेण वयमालापेन विप्रलब्धाः स्मः। (विचिन्त्य) अथवा

---

1 D अप्पाणं. 2 D अज्ज (ज्य!) उत्तेण. 3 B एक उपेक्षते. A 4 अधिष्ठितः सन्.

सुमहदुपकृतमनेन । यदनया जातिस्वभावनिसर्गपाण्डित्यबलेनावधारितया गाढया वसन्तमालया सहितायाः प्रियाया इहैव स्थितिः सूचिता । तदेनमेव विदिताञ्जनावृत्तान्तं शुकं प्रक्ष्यामि ।

यस्यास्त्वं शुक चारुरत्नवलये वामप्रकोष्ठे स्थितः
शोभां प्राप्य मदंसभागसुहृदि प्रीतिं परां लप्स्यसे ।
वाचा मञ्जुलया ययासि तुलितो यस्या नखानां रुचिं
धत्ते चञ्चुरियं च ते कथय सा कान्ता क मे वर्तते ॥ ३८ ॥

कथमसौ परिपाकविदलितं दाडिमीफलमास्वादयितुं प्रवृत्तः । मुहुरस्मत्परिप्रश्ननिर्बन्धेन मा भूदस्य स्वाभिलाषभङ्गो येनेदानीमिहैवोद्देशे प्रियायाः स्थितिरावेदिता । (कर्णं दत्त्वा सहर्षम्)

इतः किंचित्काञ्चीगुणरणितमाकर्णितमिदं
पृथुश्रोणीभारालसगमनशंसि श्रुतिसुखम् ।
भवद्दुःखं ध्वस्तं हृदय, विरता ते विधुरता
नतभ्रूरत्रैव स्वयमुपनता सा तव पुरः ॥ ३९ ॥

यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) कथमिदं सारसविरुतम् ।

मदमन्थरमुच्चरता रशनाक्वणितानुकारिणा तस्याः ।
दूरं विलोभयति मां सारसविरुतेन सरसीयम् ॥ ४० ॥

(विचिन्त्य) इहापि तावदागतया भवितव्यमञ्जनया । शिशिरोपचारसत्वरा हि विरहिता गवेषयन्ति प्रायः संतापनिर्वापणक्षमाणि सरसीतीराणि । तद्यावदेनां पृच्छामि । अयि भोः सरसि, श्रूयताम् ।

भ्रूलेखे लहरी, भुजौ बिसलता, चेतः प्रसन्नं पयः
श्रोणी सैकतमाननं सरसिजं, नेत्रे च नीलोत्पलम् ।

---

1 B inserts जन्म before स्वभाव, D inserts जन्म between स्वभाव and निसर्ग.

यस्मास्ते तुलयन्ति यां प्रियतमां पद्मोदरस्थायिनी
लक्ष्मीश्चानुकरोति सा किमबला याता तवोपान्तिकम् ।। ४१ ।।

किमियमदत्तोत्तरा यथापुरमेव स्थिता सरसी । दर्शिता खल्वनया सांप्रतमात्मनो जडात्मता । यावदिमामेव तीरोपान्तस्थितां केतकीं पृच्छामि ।

अयि केतकि किं नु कामिनां ते सुमनःपत्रमनङ्गलेखयोग्यम् ।
अकरोत् स्वकपोलपाण्डु कर्णे प्रणयिन्या मम दन्तपत्रलीलाम्।।४२।।

(विचिन्त्य) मा तावद्भोः । अस्मद्विरहखेदिताया महेन्द्रदुहितुः क इव नाम प्रसाधनावसरः । (विलोक्य) इतस्ततोऽयं कुसुमासवलंपटः परिभ्रमति भ्रमरः । यावत् पृच्छामि । अहो[1] मधुकरीजीवितेश्वर[2]

अपि किल कलकण्ठ्याः शून्यगानस्वनस्ते
श्रुतिमरमयदस्मत्संगमोत्कण्ठितायाः ।
अनुगुणनमनुच्चैरुच्चरन् यस्य लब्धुं
प्रभवति भवतोऽयं हारिझंकार[3]नादः ।। ४३ ।।

कथमनवस्थितो न मुञ्चति चञ्चरीकभूयम् । (विहस्य) किं वासौ मधुपः पृष्टः[4] प्रतिब्रूयात् । इतो वयम् । (परिक्रान्तकेनावलोक्य) अये, स्वैरविहारार्हमिदं रजतगिरिशिखरतलपुलिनम्[5] । (सोत्कण्ठं प्रत्यक्षवदाकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा)

मम समवलम्ब्य हस्तं निजघनजघनस्थलोपमं शनकैः ।
आरोह वरारोहे नलिनसरस्तीरपुलिनमिदम् ।। ४४ ।।

(पुरो विलोक्य, निर्वर्ण्य च) इदमेव पुलिनतलविरूढस्थलकमलिनीसान्द्रच्छायानिषण्णं चक्रवाकमिथुनं प्रक्ष्यामि ।

---

1 D इंहो for अहो. 2 A मधुकरीश्वर. 3 A हारिझंकारिनादः. 4 A पृष्टं. 5 B °धवलपुलिनम्, D °धवलं पुलिनं.

अलं तुलयितुं यस्याः स्तनद्वयमिमौ युवाम् ।
किं तया कान्तया दत्तो युवयोर्नयनोत्सवः ॥ ४५ ॥

कथमिमौ

परस्परप्रेमरसोपनीतं मृणालमास्वादयितुं प्रवृत्तौ ।
विस्रम्भलीलासुखमेवमेतौ यथेप्सितं[1] निर्विशतां चिराय ॥ ४६ ॥

(सान्तःखेदं[2] निःश्वस्य, आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) प्रिये महेन्द्रराजपुत्रि,

मुक्ताञ्जनं मा स्म कृथाः सबाष्पं नेत्रद्वयं ते पवनंजयं च ।
सानन्दबाष्पं विरहान्तपूर्णैर्मनोरथै रञ्जय तच्च मां च ॥ ४७ ॥

(परिक्रामन्) हन्त किमिदम् ।

इदानीमङ्गानि स्वयमलघु सीदन्ति विवशं
धनुः स्रस्तं हस्ताच्चकितचकितादत्र सशरम् ।
गतिः खिन्ना पादौ स्खलयति वचो गद्गदमभूद्
दृशौ बाष्पारुद्धे किमपि हृदयं क्षुभ्यति मम ॥ ४८ ॥

(पुरो विलोक्य)[3] तदिममेव प्रच्छायचन्दनतरुसनाथं नवविकसितवनसरसीकुसुमम[4]करन्दपरिचयसुरभिणा मन्दानिलेन समासेवितं लतामण्डपं प्रविश्य, स्वयंविगलितवासन्तीकुसुमरचितप्रस्तरे चन्द्रकान्तमणिशिलापट्टे चन्दनद्रुममेवावष्टभ्य कंचित्कालं विश्रमिष्यामि ।

(तथा कृत्वा)

दशान्तरमहं नीतो विरहव्यथयाऽनया ।
महेन्द्रराजदुहितुः कः प्रवृत्तिं निवेदयेत् ॥ ४९ ॥

---

1 B adds सकौतुकं before यथेप्सितं, disturbing the metre. 2 A सान्तर्भेदम्, B सान्तःखेदम्. 3 D पुरोवलोक्य. 4 A omits all the words from मकरन्द upto रचित. It reads नवविकसितवनसरसीकुसुमरञ्जितास्तरे चन्द्रकान्त etc.

(ततः प्रविशति प्रतिसूर्यः ।)

प्रतिसूर्यः—आदिष्टोऽस्मि दूतमुखेनाहं राजर्षिणा प्रह्लादेन यथा विजयार्धान्निर्गत्य दन्तिपर्वतं प्रति गच्छन् विश्रमाय सरोवणसरसीमवतीर्णो भूधरवाटनिवासिनो वनचरादञ्जनाया मातङ्गमालिन्यां प्रवेशमुपलभ्य नाहमवश्यमञ्जनामपश्यन्नितो गमिष्यामीति तत्रैव बलवता मन्युना स्थितः पवनंजय इति प्रहसितादुपलभ्य सर्वेऽपि वयं सरोवणतीरमवतीर्णाः । ततश्च तत्रत्येन वनचरेण मातङ्गमालिनीमेवाञ्जनामन्वेष्टुमसौ प्रविष्ट इत्यादिष्टम् । एवं च वत्सामञ्जनां पवनंजयं[2] चान्वेष्टुं भवताप्यागन्तव्यमिति[3] । मया चेयं प्रविष्टा मातङ्गमालिनी । यावदिदानीं कुमारपवनंजयमन्विष्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) अये इन्द्रचापभङ्ग[4]चित्रितं गगनतलम् । इन्द्रगोपपटलकृतोपहारं महीतलम् । ककुभकेसरधूसराः[5] ककुभः । प्रस्फुटितकेतकीपरागपांसुलो मन्दानिलः । नवविदलितकन्दली[6]मुकुलशबला वनस्थली । केकारवा[7]बाधैर्निपतितेन्द्रधनुःखण्डविभ्रमं बिभ्राणैस्ताण्डवचुञ्चुभिश्चन्द्रकितानि शिखण्डिभिर्गन्धशैलशिखराणि । इत्थं च मन्ये कष्टामेव दशामिदानीमनुभवति पवनंजयः । परितश्च निरीक्षिता मातङ्गमालिनी । तदस्यैव गन्धर्वराजमणिचूडावासभूतस्य रत्नकूटशैलस्य पादोपवनोपशल्यवनराजिं वनमालामन्विष्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) अये, इयं सिकतिलतलेषु मतङ्ग[8]जपदपङ्क्त्यनुसृतस्खलितविषमा पदपद्धतिः । (निरूप्य)

---

1 A प्रविशति. 2 B कुमारपवनंजयं. 3 भवताद्यागन्तव्यमिति. 4 B भक्ति. 5 D ककुभकुसुमकेसर°. 6 A omits कन्दली. 7 B केकारववाबाधैः. 8 B मातङ्गजपदपङ्क्त्या. The sense is मतङ्गजपदपङ्क्त्यनुसृता स्खलितविषमा पदपद्धतिः. After °पदपङ्क्त्या B has a lacuna extending upto कथं सापि पदपद्धतिरिह etc. infra.

इमानि विद्याधरराजलक्ष्मीसाम्राज्यचिह्नानि परिस्फुटानि ।
तत्साधु दृष्टा पदपङ्क्तिरेषा प्रह्लादसूनोः पवनंजयस्य ॥ ५० ॥

एतानि नूनं तत्सहचारिणः कालमेघस्य पदानि । तदिदानीमिमामेव पदपङ्क्तिमनुसरन् गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) कथं सापि पदपद्धतिरिह जगति[1] संस्थिते शिलातले न दृश्यते । तत् क इवात्रोपायः । (विलोक्य) अये, अयं मकरन्दवापिकातीरोपान्ते पवनंजयस्य प्रियसखनिर्विशेषो गजवरः कालमेघस्तिष्ठति । तद् दृष्ट एव पवनंजयः । (उपसृत्य)

भद्रं भद्रगजप्रवेक भवते किं त्वं सुखं वर्तसे
कच्चित्ते कुशली स च प्रियसखः प्रह्लादराजात्मजः ।
यत्स्नेहादनुगच्छतात्रभवता कृच्छ्रानुभूता दशा
केदानीं पवनंजयः स दयिताविश्लेषदुःखी स्थितः ॥ ५१ ॥

(कर्णं दत्त्वा) अये, मन्द[2]स्निग्धेन कण्ठगर्जितेन तिर्यगावलितकन्धरो मद्वचनमसौ प्रतिगृह्णाति, तदासन्नवर्तिना भवितव्यं पवनंजयेन । यावदिहैव मकरन्दवापिकातीरोद्देशे विचिनोमि । (परिक्रम्य, पुरो विलोक्य च सशङ्कम्)

कस्येदं सशरं धनुर्निपतितं (निरूप्य) नामाक्षराणि स्फुटं
दृश्यन्ते पवनंजयस्य विशिखेष्वेतानि (सशोकम्) तत् किं न्विदम् ।
(विभाव्य) मन्ये प्राणसमावियोगविवशात्तस्याग्रहस्तादिदं
[3]स्रस्तं तत्कुसुमायुधेन स कथं कष्टां दशां नीयते ॥ ५२ ॥

(पुरो विलोक्य, सशङ्कम्[4])

कोऽयं भोः कुसुमास्तरे कमलिनीतीरे लतामण्डपे
ध्यानैकाग्रमना निमील्य नयने रोमाञ्चमामुञ्चति ।

---

1 B D पर्वतजगति. *2* D मंद्र for मंद. *3* B D insert before स्रस्तं the stage direction सविषादम्. *4* D विलोक्य दृष्ट्वा सशङ्कम् ।

आं ज्ञातं विरहे मनोरथशतप्रत्यक्षितप्रेयसी-
गाढालिङ्गनसंगमोत्सवरसव्यापारपारंगतः ॥ ५३ ॥

(निरूप्य) कथमयं पवनंजय एव संवृत्तः[1] ।

एतन्मातङ्गकण्ठे गुणकषणकिणोद्भासि जङ्घाद्वयं तत्
सोऽयं ज्याघातशंसी कृतबहुसमरैः[2]श्यामितार्धः प्रकोष्ठः ।
ऊर्णा सेयं ललाटे कथयति विजयार्धैकसाम्राज्यलक्ष्मीं
तेजश्चैतत्तदेव प्रतिहतनिखिलारातिचक्रप्रभावम् ॥ ५४ ॥

(सास्रम्) तत् कथमेनमाश्वासयिष्यामि । (विचिन्त्य)

प्राप्तस्यैवं शोचनीयामवस्थां प्रत्याश्वासायास्य नान्योऽस्त्युपायः ।
अर्हत्येका सा समाश्वासनायामित्थंभूतस्याञ्जना वल्लभस्य ॥ ५५ ॥

तदिदानीं किमपरं विलम्ब्यते । भवतु । एवं तावत् । (इति निष्क्रान्तः प्रतिसूर्यः ।)

(ततः प्रविशत्यञ्जना वसन्तमाला च ।)

अञ्जना—हला वसंतमाले, अत्तणो मंदभाअत्तणं जाणंतीए अज्ज वि अज्जउत्तदंसणसंभावणं ण पत्तिआअदि मे हिअअं । [सखि वसन्तमाले, आत्मनो मन्दभागत्वं जानन्त्या अद्याप्यार्यपुत्रदर्शनसंभावनं न प्रत्याययति मे हृदयम् ।]

वसन्तमाला—असंपत्तिए[3], किं महाराअपडिसूरो अण्णहा कहेइ । ता तुवरदु भट्टिदारिआ । [असंप्रत्यये, किं महाराजप्रतिसूर्यो अन्यथा कथयति । तस्मात् त्वरतां भर्तृदारिका ।]

(उभे परिक्रामतः ।)

वसन्तमाला—(पुरो निर्दिश्य) भट्टिदारिए, एअं चंदणलआघरअं जाव पविसम्ह । [भर्तृदारिके, एतच्चन्दनलतागृहं यावत्प्रविशावः ।]

---

[1] B D add तथा हि. [2] B °समरः. [3] A असंपत्तीए.

(उभे प्रविशतः ।)

अञ्जना—(दृष्ट्वा, सविषादं सहसोपसृत्य[1] कण्ठे गृह्णाति)

वसन्तमाला—(सबाष्पम्) हुं किं एदं । [हुं किमेतत् ।] (पादयोः पतति)

पवनंजयः—(यदृच्छया परिष्वजन् स्पर्शं रूपयित्वा सोच्छ्वासम्)

एतत्तावत्कुसुमसदृशं बाहुयुग्मं तदेव
प्रेयस्या मे स्तनतटयुगं पीनमेतत्तदेव ।
किं संकल्पा मम परिणताः किं मनोभ्रान्तिरेषा
किं स्वप्नोऽयं भवतु नयने नाहमुन्मीलयामि ॥ ५६ ॥

अञ्जना—(सास्रम्) अधण्णाए मए एआरिसं दसं णीदो अज्जउत्तो । [अधन्यया मयैतादृशीं दशां नीत आर्यपुत्रः ।]

पवनंजयः—(सोत्कण्ठम्) प्रियादर्शनकुतूहलि त्वरयति मामिदं मनः । भवतु । शनैरुन्मील्य पश्यामि । (तथा दृष्ट्वा, सहर्षं सविस्मयं च) कथं दिष्ट्या स्वयमेव प्रिया संवृत्ता । (आत्मानं प्रति)

त्वत्संकल्पैरग्रतो वर्तमाना या बाहुभ्यां गाढमालिङ्गिताद्य ।
आत्मन्दिष्ट्या वर्धसे[2] सा स्वयं ते साक्षादेषा प्राणनाथैव जाता ॥ ५७ ॥

(उत्थाय परिष्वजते ।)

अञ्जना—(सबाष्पम्) जेदु अज्जउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

वसन्तमाला—जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

पवनंजयः—(सस्मितम्[3]) वसन्तमाले, कथमिदानीं युवामिह[4] गते ।

वसन्तमाला—भट्टा, एत्तिअं कालं महाराअपडिसूरो इमादो वणादो पसूदाए भट्टिदारिआए तुह महाभाएण पुत्तेण सह अम्हे घेत्तूण अप्पणो अणूरुहदीवं[5] गदुअ तहिं चेअ ठाविअ ठिओ । [भर्तः,

---

1 Thus A B. The word पवनंजयं is to be expected before कण्ठे.
2 A वर्तसे. *3* B D सविसयम्. *4* A omits इह. *5* B हणूरुहदीवं.

एतावन्तं कालं महाराजप्रतिसूर्योऽस्माह्वनात्प्रसूतायां भर्तृदारिकायां तव महाभागेन पुत्रेण सहास्मान् गृहीत्वा आत्मनोऽनूरुहद्वीपं गत्वा, तस्मिन्नेव स्थापयित्वा स्थितः ।]

पवनंजयः—(सहर्षम्) केदानीमाञ्जनेयः ।

वसन्तमाला—भट्टा, वेअड्ढिअं गदुअ महूसवपुरस्सरं पुत्तप्पढमदंसणं कादव्वं ति दाणिं महाराअपडिसूरेण जादो ण आणीदो । दाणिं च महाराअपडिसूरेण तुह उत्तंतणिवेदणपुरस्सरं भट्टिदारिअं गण्हिअ[1] इध आअदेण णिद्दिट्ठं चंदणलआघरअं अम्हेहि पविट्ठं । [भर्तः, विजयार्धं गत्वा महोत्सवपुरःसरं पुत्रप्रथमदर्शनं कर्तव्यमितीदानीं महाराजप्रतिसूर्येण जातो नानीतः । इदानीं च महाराजप्रतिसूर्येण तव वृत्तान्तनिवेदनपुरःसरं भर्तृदारिकां गृहीत्वा इहागतेन निर्दिष्टं चन्दनलतागृहमस्माभिः प्रविष्टम् ।]

पवनंजयः—(सहर्षम्) क नु खलु तत्रभवान् प्रतिसूर्यः ।

वसन्तमाला—अम्हाणं एत्थ पुव्वोवआरिणं गंधव्वराअमणिचूडं तुह दंसणत्थं सद्दावेदुं इमं चेअ तेसं[2] आवासं रअणऊडगिरिं आरूढो । [अस्माकमत्र पूर्वोपकारिणं गन्धर्वराजमणिचूडं तव दर्शनार्थं शब्दापयितुमिममेव तेषामावासं रत्नकूटगिरिमारूढः ।]

(पुरो निर्दिश्य)

एसो अ सह एव्व तेण आअच्छदि । [एष च सहैव तेनागच्छति ।]

पवनंजयः—

प्रत्यवस्थापितो येन नमिवंशो महात्मना ।
[3]तमिदानीं वयं तन्वि द्रक्ष्यामस्तव मातुलम् ॥ ५८ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति श्रीहस्तिमल्लेन विरचितेऽ[4]ञ्जनापवनंजयनाम नाटके
षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।

---

1 A गेण्हआ, B गण्हेअ *2* A omits तेसं. *3* A B D तदिदानीं. *4* D °तमंजनापवनंजयं नाम नाटकं षष्ठोङ्कः ।

अथ सप्तमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशत्यलङ्कृतो विदूषकः ।)

विदूषकः—(आत्मानं निर्वर्ण्य) कस्स खु एदाणि भूसणरअणुम्मेस-दुप्पेक्खाइ अंगाइ मे दंसिअ सलाहेमि । (पुरो विलोक्य) एसा खु वसंतमाला इदो आअच्छदि । जाव इमाए दंसेमि [कस्य खल्वेतानि भूषणरत्नोन्मेषदुष्प्रेक्ष्याणि अङ्गानि मे दर्शयित्वा श्लाघयामि । (पुरो विलोक्य) एषा खलु वसन्तमाला इत आगच्छति । यावदस्या दर्शयामि ।]

(प्रविश्य)

वसन्तमाला—[2]अंमो, एसो खु विसंघडिअभूसणप्पहाविअडंगो आगच्छइ अज्जपहसिओ । [अहो, एष खलु विसंघटितभूषणप्रभाविकटाङ्ग आगच्छति आर्यप्रहसितः ।]

विदूषकः—(उपसृत्य) होदि वसंतमाले, दक्ख मे रूअसोहग्गं । [भवति वसन्तमाले, पश्य मे रूपसौभाग्यम् ।]

वसन्तमाला—(सस्मितम्) अज्ज, केण खु सि एवं पसाहिओ । [आर्य, केन खल्वस्येवं प्रसाधितः ।]

विदूषकः—होदि, अअं खु अरिंदमपसण्णकित्तिपमुहेहि तत्तहोदीए अंजणाए भाउजणेहि वअस्सस्स जोव्वरज्जाभिसेअकल्लाणे जामादुणो पिअवअस्सो त्ति करिअ एवं पसाहिओ । [भवति, अयं खल्वरिंदमप्रसन्नकीर्तिप्रमुखैस्तत्रभवत्या अञ्जनाया भ्रातृजनैर्वयस्यस्य यौवराज्याभिषेककल्याणे जामातुः प्रियवयस्य इति कृत्वा एवं प्रसाधितः ।]

वसन्तमाला—जुज्जइ । [युज्यते ।]

विदूषकः—कहिं दाणिं तुमं[3] सत्तरं पत्थिदा । [केदानीं त्वं सत्वरं प्रस्थिता ।]

---

1 D has श्रीमत्प्रभेंदुमुनये नमः and omits अथ सप्तमोऽङ्कः; B adds सयमदारिणे (?) before this stage direction. *2* D अंम्हो. *3* D तुवं.

वसन्तमाला—अज्ज, दाणिं खु महाराअपडिसूरो अणूरुह-दीवादो वच्छं हणूमंतं गण्हिअ आअमिस्सदि । ता मिस्सकेसिपुर-स्सरेण सह सहीअणेण वच्छं हणूमंतं पच्चागमिदुं गच्छेमि । [आर्य, इदानीं खलु महाराजप्रतिसूर्योऽनूरुहद्वीपाद्वत्सं हनूमन्तं गृहीत्वा आगमिष्यति । तस्मान्मिश्रकेशीपुरःसरेण सह सखीजनेन वत्सं हनूमन्तं प्रत्या-गन्तुं गच्छामि ।]

विदूषकः—सव्वो वि खु मिस्सकेसिपमुहो तुह सहीअणो अन्ते-उरमहत्तराए जुत्तिमदीए सह पच्चागमणसत्तरो को कालो णिग्गओ । ता एहि, वअस्सस्स पासं गमिअ तेण एव्व सह वच्छं हणूमंतं पेक्खिस्सम्ह । [सर्वोपि खलु मिश्रकेशीप्रमुखस्तव सखीजनोऽन्तःपुरमहत्त-रया युक्तिमत्या सह प्रत्यागमनसत्वरः कः कालो निर्गतः । तस्मादेहि, वयस्यस्य पार्श्वं गत्वा तेनैव सह वत्सं हनूमन्तं पश्यावः ।]

वसन्तमाला—जइ एवं, एहि तहिं गच्छम्ह । [यद्येवम्, एहि तत्र गच्छावः ।] (परिक्रम्य निष्क्रान्तौ ।)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति कृताभिषेकः पवनंजयः सहाञ्जनया, विदूषको वसन्तमाला च ।)

विदूषकः—इदो इदो (सर्वे परिकामन्ति ।) एसो अत्थाणमंडवो । जाव पविसदु वअस्सो (सर्वे प्रविशन्ति ।) (पुरो निर्दिश्य) वअस्स एअं खु सज्जिअं मोत्तिअविआणस्स अधोतले सीहासणं । जाव अलंकरिज्जउ । [इत इतः । (सर्वे परिकामन्ति ।) एष आस्थानमण्डपः । यावत्प्रविशतु वयस्यः । (सर्वे प्रविशन्ति ।) (पुरो निर्दिश्य) वयस्यैतत्खलु सज्जितं मौक्तिकवितानस्या-धस्तले सिंहासनम् । यावदलंक्रियताम् ।]

पवनंजयः—प्रिये, उपविश्यताम् ।

(सर्वे यथोचितमुपविशन्ति ।)

अञ्जना—हला वसंतमाले, ण खु दुक्करं[1] णाम दव्वस्स, जं अम्हे वि णाम सव्वलोअसंभाविअं अज्जउत्तपासं पुणो वि आअदा। [सखि वसन्तमाले, न खलु दुष्करं नाम दैवस्य यदावामपि नाम सर्वलोकसंभावितमार्यपुत्रपार्श्वं पुनरप्यागते ।]

वसन्तमाला—भट्टिदारिए, जं सच्चं जम्मंतरं विअ एअं मे पडिभाअइ । [भर्तृदारिके, यत्सत्यं जन्मान्तरमिवैतन्मे प्रतिभाति ।]

पवनंजयः—

एको विधिः कृतदयः प्रतिसूर्य एकः
सत्यं सखीसहचरो मणिचूड एकः ।
एते पुनः परिणता मम भागधेयात्
त्वद्दर्शनाय ननु गात्रनिबन्धनानि[2] ॥ १ ॥

चिरायते खलु वत्सं हनूमन्तमानेतुं गतो महाराजप्रतिसूर्यः ।

वसन्तमाला—(विलोक्य) जह एसो हरिसुप्फुल्लवअणो समंतदो परिब्भमइ जणो, तह तक्केमि आअदो वच्छं हणूमंतं गण्हिअ महाराअपडिसूरो त्ति । [यथैष हर्षोत्फुल्लवदनः समन्ततः परिभ्रमति जनः, तथा तर्कयामि, आगतो वत्सं हनूमन्तं गृहीत्वा महाराजप्रतिसूर्य इति ।]

पवनंजयः—(विलोक्य) वसन्तमाले सम्यगुपलक्षितम् । इह हि

संरम्भात् कबरीभरे विशिथिले विन्यस्य वामं करं
नीवीं विश्लथमेखलां करतलेनान्येन संधार्य च ।
अंसादुच्छ्वसितां स्तनांशुकदशां धृत्वा कपोलेन च
प्रीत्या धावति सर्वतोऽपि सहसा शुद्धान्तकान्ताजनः ॥ २ ॥

अपि च

भूयो यष्टिमितस्ततः क्षितितले न्यस्यन् पुरश्चञ्चलं
संभ्रान्तः शिरसाऽऽकुलाकुलमसावुष्णीषपट्टं दधत् ।

---

1 D दुक्खरं. 2 obscure; B नात्र निबन्धनानि.

उद्धृत्यैव च लम्बलम्बमधुना प्रेङ्खोलितं कञ्चुकं
हृष्यन्नेष पुराणकञ्चुकिजनः कृच्छ्रादितो धावति ॥ ३ ॥

वसन्तमाला—अंमो, सअलं वि राअउलं हरिसणिब्भरं लक्खिज्जइ[1]।
[अहो, सकलमपि राजकुलं हर्षनिर्भरं लक्ष्यते ।]

पवनंजयः—(अञ्जनां विलोक्य)

दृशौ हर्षोद्बाष्पे विगणितनिमेषव्यतिकरे
कृतार्थीकुर्वाणः शिरसि मुहुराघ्राय च मुदा ।
भुजाभ्यामाश्लिष्यन् घनपुलकिताभ्यां तव सुतं
हनूमन्तं कुर्यां सुतनु पदमाशासनगिराम् ॥ ४ ॥

विदूषकः—(सहर्षं, पुरो निर्दिश्य) वअस्स, दक्ख । एसो खु महाराअपडिसूरो वच्छं हणूमंतं गण्हिअ दंतवलहिवट्टिणो महेंदराअपमुहेहि सहिअस्स महाराअस्स सआसादो णिग्गमिअ इह[2] आअच्छइ । [वयस्य, पश्य । एष खलु महाराजप्रतिसूर्यो वत्सं हनूमन्तं गृहीत्वा दन्तवलभिवर्तिनो महेन्द्रराजप्रमुखैः सहितस्य महाराजस्य सकाशान्निर्गत्य इहागच्छति ।]

(सर्वे दृष्ट्वा सहर्षमुत्तिष्ठन्ति ।)

पवनंजयः—(निर्वर्ण्य)

प्रभातरम्यामुदयाचलस्य लक्ष्मीं बिभर्ति प्रतिसूर्य एषः ।
उद्यन्निवासौ तरुणो विवस्वान् वत्सो हनूमानमिवंशकेतुः ॥ ५ ॥

(ततः प्रविशति हनूमन्तमादाय प्रतिसूर्यः ।)

प्रतिसूर्यः—वत्स हनूमन् पश्य ते पितरं, य एष
प्रभावमहतो[3] विश्वजगदाह्लादकारिणः ।
सतो गुणगणस्यापि प्रभवो भवतोऽपि च ॥ ६ ॥

हनूमान्—(विलोक्य सहर्षम्) एसो[4] अ आउओ । [एष च आवुकः ।]

---

1 A D दक्खिज्जइ, D chāyā लक्ष्यते. 2 A B D इद (=इध). 3 A B प्रभातमहतः. 4 A B असो अअपउंबि(?); D chāyā एषः आउकः, corrected as आर्यपुत्रः.

विदूषकः—(उपसृत्य) जेदु महाराओ । [जयतु महाराजः ।]

अञ्जना—(उपसृत्य) माउल, वंदामि । [मातुल, वन्दे ।]

प्रतिसूर्यः—वत्से, कल्याणिनी भव ।

पवनंजयः—महाराज, एष प्राह्लादिः प्रणमति ।

प्रतिसूर्यः—युवराज, चिरं जीव । वत्स हनूमन्, अभिवन्दस्व ते पितरम् ।

हनूमान्—आउअ, वंदामि । [आवुक, वन्दे ।]

पवनंजयः—(सस्नेहम्) वत्स, आयुष्मान् एधि । (परिष्वजते ।)

वसन्तमाला—एअं भद्दासणं जाव अलंकरेदु महाराओ । [एतद्भद्रासनं यावदलंकरोतु महाराजः ।]

प्रतिसूर्यः—युवराज, आसनमलंक्रियताम् ।

(सर्वे यथोचितमुपविशन्ति ।)

पवनंजयः—हनूमन्, वन्दस्व ते पितृसखम् ।

हनूमान्—(उत्थायोपसृत्य) ताद, वंदामि । [तात, वन्दे ।]

विदूषकः—(सस्नेहं परिष्वज्य, अङ्कमारोप्य च) वच्छ, दिग्घाऊ होहि । वच्छ, पणमेहि अत्तहोदिं । [वत्स, दीर्घायुर्भव । वत्स, प्रणमात्रभवतीम् ।]

हनूमान्—(उत्थायोपसृत्य च) अंब, वंदामि । [अम्ब, वन्दे ।]

अञ्जना—जाद, दिग्घाऊ होहि । [जात, दीर्घायुर्भव ।]

वसन्तमाला—जाद, उपविसेहि । (आत्मनोऽङ्क उपवेश्य) अंमो, सच्चं खु तं, जीअंतो भद्दं पावेइ त्ति । जं अम्हे अपदाणसदाणं भाअणं जादा । [जात, उपविश । (आत्मनोऽङ्क उपवेश्य) अहो, सत्यं खलु तत्, जीवन् भद्रं प्राप्नोतीति । यद्वयमपदानशतानां भाजनं जाताः ।]

---

1 D अम्हे सदाणं कल्लाणाणं भाअणं.

विदूषकः—होदि वसंतमाले, भणाहि दाव तुम्हाणं माअंगमालिणीउत्तंतं। [भवति वसन्तमाले, भण तावद्युवयोर्मातङ्गमालिनीवृत्तान्तम्।]

वसन्तमाला—अज्ज, कहं विअ भणामि तं अइदारुणं उत्तंतं जं दाणिं वि सुमरंतीए वेवदि मे हिअअं। अज्ज किं ति गअं पि तं सुमरावेध[1] [आर्य, कथमिव भणामि तमतिदारुणं वृत्तान्तं यमिदानीमपि[2] स्मरन्त्या वेपते मे हृदयम्। अद्य किमिति गतमपि तं स्मारयथ।]

प्रतिसूर्यः—तेन हि श्रूयताम्।

विदूषकः—अवहिदो म्हि। [अवहितोऽस्मि।]

प्रतिसूर्यः—ततः खलु तावत्सरोवणसरस्तीरान्निरुद्धापि मुहुः सास्रमियमञ्जना महेन्द्रपुरमवगन्तुं प्रोत्साहयन्त्या वसन्तमालया, जीवितनिरपेक्षत्वाद्, व्यामुग्धत्वाच्च स्त्रीप्रकृतेः, तादृग्विधत्वाच्च भवितव्यस्य, तद्वचनमप्यनभ्युपगच्छन्ती, प्रेर्यमाणेव प्रतीपवर्तिना विधिना, तामेव क्रूरमृगदूषितां, दुःसंचरस्थपुटपाषाणशकलशर्कराचिताम्, आमूलकण्टकितव्रततिकच्छवृताममानुषगोचरां मातङ्गमालिनीं प्राविक्षत्[3]।

विदूषकः[4]—तदो। [ततः।]

प्रतिसूर्यः—ततस्तामेव मातङ्गमालिनीमदृष्टमार्गतया निर्लक्ष्यं समन्ततः परिभ्रमन्तीभ्यां यदृच्छया गन्धर्वराजमणिचूडावासस्य रत्नकूटगिरेः पादोपशल्यभूमिरुत्पत्तिस्थानमिव कुसुमसमयस्य, विहारोद्देश इव गन्धवहस्य, प्रणयिनीव नन्दनवनस्य, वनमाला समासादिता।

पवनंजयः—ततः।

---

1 A सुमरापिथ, chāyā स्मारयिथ (=स्मारयथ). *2* A chāyā यदिदानीमपि. 3 B प्राविशत्. *4* B D add before this the following विदूषकः—णिट्ठुरा खु वत्तहोदी। पवनंजयः—दुरतिक्रमा हि भवितव्यता।

प्रतिसूर्यः—ततश्च किंचिदिव समुच्छ्वसितेन हृदयेन तत्रैव निवासयोग्यप्रदेशं मार्गयन्त्याविमे चिरात्तस्यैव गिरेः पूर्वदिग्भागश्रितं विविक्तरमणीयं गुहामुखमासीदताम् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च तत्रैव समेताभ्यामाभ्याम्

आत्मन्येकमकल्मषं निशमयन्नात्मानमेवात्मना
निर्ग्रन्थो मुनिपुङ्गवो नियमिताशेषेन्द्रियोपप्लवः ।
पर्यङ्कासनमास्थितोऽमितगतिस्त्रैलोक्यदर्शी[1] तपः
साक्षान्मूर्तिमदग्रतः स भगवान् दिष्ट्या समालोकितः ॥ ७ ॥

पवनंजयः—नमो भगवते त्रिज्ञानचक्षुषे ।

प्रतिसूर्यः—ततश्चैते तद्दर्शनसौख्येन सहसाविस्मृतवनगहनपरिभ्रमणायासे परितुष्टेन मनसा भगवन्तममितगतिं विधिवत्परीत्य भक्त्या कृतप्रणामे नातिसंनिकृष्टमुपविष्टे ।

अञ्जना वसन्तमाला च—णमो तस्स आवण्णसरण्णस्स । [नमस्तस्मा आपन्नशरण्याय ।]

प्रतिसूर्यः—ततश्च स भगवानमितगतिस्तत्काल एव परिनिष्ठापितयोगः करुणार्द्रचक्षुषा मुहूर्तमेव निरीक्ष्य प्रशान्तगम्भीरया गिरा समभाषत । यथा । वत्से अञ्जने, मा स्म शोच । इदं हि ते जन्मार्जितं कर्म यद्भर्तृविरहोऽनुभूयते । पर्यवसितप्रायं च तत्कर्म । अचिरेणैव च महाभागं पुत्रं प्रसविष्यसे । ततश्च कियत्यपि गते काले भर्तारं च ते द्रक्ष्यस्येव पवनंजयमिति । एवं च[2] श्रुतिसुखमाकर्ण्य मुनेर्वचः प्रत्यक्षेणैव सर्वमप्यनुभवन्त्याविव तं वृत्तान्तमुपरचितप्रणामाञ्जली भगवन्तमवन्देताम् ।

---

1 D °त्रैकाल्यदर्शी. 2 After एवं च B D add सविस्मयं सहर्षं च.

पवनंजयः—दिव्यचक्षुषो हि महर्षयः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च कंचित्कालं कृतयथोचितसुखसंभाषणः स्थित्वा स सूनृतवाक्, 'भद्रे युवाभ्यामस्यामेव गुहायां यावत्प्रसूतिसमयं स्थातव्यम्'इत्युक्त्वा स्वयमन्तर्धिमगात् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च तस्यामेव भगवतो मुनेरमितगतेः पर्यङ्केण कृतयथार्थनाम्नि[1] पर्यङ्कगुहायामिमे चिरमवसताम् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—अथ कदाचिदवतरति सवितरि पूर्वेतरं दिशो भागं स्वावासोन्मुखेपु च वनमृगेपु समन्ततः संचरत्सु

दंष्ट्राचन्द्रकलाकरालवदनः संक्षोभयन्काननं
विस्फूर्जद्घनगर्जितप्रतिभयस्तां भूमिमभ्यापतत् ।
[2]हेलादारितगन्धसिन्धुरशिरोनिष्ठ्यूतरक्तच्छटा-
चर्चाभ्यर्चितभूरिकेसरभरः पञ्चाननः क्रोधनः ॥ ८ ॥

अञ्जना—(ससाध्वसम् अक्षिणी निमील्य) कहं पच्चक्खं विअ दक्खिअदि दाणिं पि सो भीसणो पंचाणणो । [कथं प्रत्यक्षमिव दृश्यते इदानीमपि स भीषणः पंचाननः ।]

वसन्तमाला—भट्टिदारिए, दाणिं वि केसरिहदअं सुमरन्तीए वेवदि मे हिअअं । [भर्तृदारिके, इदानीमपि केसरिहतकं स्मरन्त्या वेपते मे हृदयम् ।]

पवनंजयः—

वसन्तमालासहितां सजीवितामिहाञ्जनां मे पुर एव पश्यतः ।
मनो न विश्वासमुपैति कातरं वने हरिं कः किल वारयेदिति ॥ ९ ॥

---

1 A कृतयथार्थनाम्नीं पर्यंकगुहामिमे चिरमावसताम्. 2 D हेलोद्दारित°.

विदूषकः—(सविषादम्) अत्तहोदीपासं सीहो आअदो त्ति सुणं-तस्स वि मे बलिअं संखुहिअं हिअअं । किं पुण पच्चक्खं दक्खंतीए[1] वराईए वसंतमालाए । [अत्रभवतीपार्श्वं सिंह आगत इति शृण्वतोऽपि मे बलवत्संक्षुभितं हृदयं, किं पुनः प्रत्यक्षं पश्यन्त्या वराक्या वसन्तमालायाः ।]

प्रतिसूर्यः—ततश्चैषा वसन्तमाला ससंभ्रमं 'परित्रायध्वं परित्रा-यध्वमिमां केसरिसकाशाद्वनवासिन्यो देवता भर्तृदारिकाम्'इत्युच्चैर्वि-लपन्ती, बलवतस्तस्मात् कृच्छ्रा[2]दमानुषगोचरे परित्रातारमपश्यन्ती, भगवतो मुनेरमितगतेरपि वचनमन्यथाकारं शङ्कमाना तस्यैव हस्तत्रय-मात्रप्रकृष्टस्य केसरिणः पुरस्तादपतत् ।

पवनंजयः—कष्टम्, अ[3]तिदुःश्रवं संवृत्तम् ।

विदूषकः—तारिसो खु सहीसिणेहो । [तादृशः खलु सखीस्नेहः ।]

प्रतिसूर्यः—ततश्च तद्गिरिनिवासिनो गन्धर्वराजमणिचूडस्य देवी रत्नचूडा स्त्रीजनार्तविलापश्रवणेन किमिदमिति तत्रैव दृष्टिमितस्ततो निपातयन्ती सम्यग् दृष्ट्वा ससंभ्रमम् 'आर्य[4], परित्रायस्व त्वरितमिमे अशरणे स्त्रियौ त्वत्प्रतिग्रामवर्तिन्यौ कृतान्तसदृशादमुष्मान्मृगरिपोः' इति न्यवेदयत् ।

अथ स च मणिचूडस्तत्र गन्धर्वराजो
विकृतशरभरूपस्त्रातुकामो निपत्य ।
मृगपतिमभियातं तत्क्षणं तं गृहीत्वा
विबुधप[5]थमुपेतो नीतवान् क्वापि दूरम्[6] ॥ १० ॥

---

1 B D पेक्खंतीए. 2 A omits कृच्छ्रात्. 3 A B D अपि, perhaps for अति. 4 D आर्यपुत्र. 5 B °पदम्. 6 B दूरे.

पवनंजयः—इयं महतां शैली ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च शरभव्यापारदर्शनाधिकतरसंजातसंत्रासविक्लवे पुनरेते समाश्वासयितुं तत्कालसंनिहिता रत्नचूडा, 'सख्यौ मा स्म भैष्टम्' इति समवस्थापयन्ती, यथावन्निवेदितस्ववृत्तान्ता, के युवां, कुतो वा पुनरागते, किं वा युवयोरिहागमनस्य कारणमित्यप्रच्छत् ।

अञ्जना—णिज्जणे वि अरण्णे तारिसं समस्सासं लंभिअ एआरिसभाअधेआ अहं पुणो वि अज्जउत्तं दक्खिस्सं ति समुच्छसिदं तह हिअअं । [निर्जनेप्यरण्ये एतादृशं समाश्वासं लब्ध्वा एतादृशभागधेयाहं पुनरप्यार्यपुत्रं द्रक्ष्यामीति समुच्छ्वसितं तथा हृदयम् ।]

प्रतिसूर्यः—ततश्च यथावद्वसन्तमालानिवेदिताञ्जनावृत्तान्ता रत्नचूडा संजातसखीस्नेहा संवृत्ता । अनन्तरं च स्वयमागत्य गन्धर्वराजमणिचूडो रत्नचूडानिवेदिताञ्जनावृत्तान्तः संजातसौहार्देन मनसा, वत्से मा स्म शोच, अहं हि ते महाराजमहेन्द्रनिर्विशेषः, तत् त्वामिमां भूमिमनुप्रविष्टासि स्वैरमिहैव स्थीयतामित्यभ्यधात् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—इत्थं च रत्नचूडया प्रतिदिनप्रवर्धमानविस्रम्भतया सुखेन गच्छति काले कदाचित्

बालार्कमिव माहेन्द्री दिक् परं तेजसां निधिम् ।
इमं वत्सं हनूमन्तं प्रासविष्टेयमञ्जना ॥ ११ ॥

पवनंजयः—ततः ।

---

1 D खवमप्यागत्र. 2 A omits प्र.

प्रतिसूर्यः—ततश्च यदृच्छया[1] विमानमारुह्य तत्रैव गच्छता मया वत्साया अञ्जनाया वनगहनाभ्यन्तरे प्रसवं शोचन्त्याः श्रुतो वसन्तमालाया विलापध्वनिः ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च तस्मिन्नमानुषगोचरे विपिने स्त्रीजनपरिदेवनाकर्णनेन किमिदमिति रणरणकेन तामेव पर्यङ्कगुहामवातरम् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च मद्दर्शनादेते संजातप्रत्याश्वासे अपि स्त्रीजनसुलभया कातरतया पुना रोदितुं प्रवृत्ते ।

पवनंजयः—अनुभूतं हि शोकं द्विगुणयति बन्धुजनसांनिध्यम्[2] ।

प्रतिसूर्यः—ततश्चाहं वसन्तमालानिवेदिताञ्जनावृत्तान्तोऽनूरुहद्वीपमेव वत्सामञ्जनां नेतुं व्यवसितमनास्तत्रैव रत्नचूडया सह वत्सामेव कुशलं प्रष्टुमायातेन गन्धर्वराजमणिचूडेन कृतसमुचितसंभाषणः क्षणमतिष्ठम् ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ताभ्यां दर्शितस्नेहा[3]नुबन्धाभ्यामनुमोदितगमना वत्सा कथंकथमपि विसर्जिता ।

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च प्रथममेव विमानमारुह्य रत्नकूटकटकस्थिताया वसन्तमालाया हस्ताभ्यामानेतुकामस्य मम हस्तावप्राप्यैव विमाना-

---

1 D adds तत्रैव after यदृच्छय.. 2 A B सान्निध्ये. 3 B °प्रेम° for स्नेह.

हितैरत्नकिरणोन्मेषतिरोहितैः[2] समादित्सुरिव रविबिम्बमुत्प्लवन्[3] सहसा शिलातले न्यपतत् ।

पवनंजयः—(सविषादं, कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् ।

विदूषकः—(सशोकं, कर्णौ पिधाय) अहह । [अहह ।]

अञ्जना—(सास्रम्) अंमो णिट्ठुरदा मे[4] जीविअस्स, जं तदा पच्चक्खं एव्व वच्छं हणूमंतं सिलोच्चए पडंतं दक्खिअ णिट्ठुरं एव्व ठिअं । [अहो निष्ठुरता मे जीवितस्य, यत् तदा प्रत्यक्षमेव वत्सं हनूमन्तं शिलोच्चये पतन्तं दृष्ट्वा निष्ठुरमेव स्थितम् ।]

वसन्तमाला—(हनूमतोऽङ्गानि स्पृशन्ती) वच्छ, दिग्घाऊ होहि । [वत्स, दीर्घायुर्भव ।]

विदूषकः—महाराअ, अदो संगडादो परं सिग्घं कहेहि । [महाराज, अतः संकटात्परं शीघ्रं कथय ।]

प्रतिसूर्यः—ततश्च शोकावेगावष्टब्धयोरेतयोः स्थितयोरहमप्यन्तः-शुष्कहृदयः ससंभ्रमम् इमे मा स्म बिभीतमिति[6] समाश्वासयन्

तां वज्रपातादिव तत्क्षणेन शिलामपश्यं कणशो विशीर्णाम् ।
मध्ये शयानं च महानुभावं तवात्मजं[7] बालमबालकृत्यम् ॥१२॥

पवनंजयः—(हनूमन्तमादाय परिष्वज्य च) वत्स, चिरं जीव ।

प्रतिसूर्यः—ततश्च सविस्मयं सहर्षं च तमेनं हनूमन्तं चरम-देहोऽयमिति सबहुमानमादाय वयं विमानमारोप्य अनूरुहद्वीपमेव गताः ।

---

1 A विमानाहितप्रवरत्न etc. 2 B °विलोहितः (? विलोभितः ?), D °न्मेष-विलोहितस्य. 3 B उत्प्लुतो वत्सः. 4 A omits मे. 5 A omits स्थितयोः. 6 A बिभेताम्, B D बिभीताम्. 7 B तदात्मजम्.

पवनंजयः—ततः ।

प्रतिसूर्यः—ततस्तत्रैव यथावदनुष्ठितजातकर्मादिक्रियेष्वस्मासु गच्छति काले महाराजप्रह्लादेन महेन्द्रराजेन च [1]भवद्वृत्तान्तनिवेदनपुरःसरमाहूतो भवन्तमेवान्वेष्टुं मातङ्गमालिनीमवगाह्य समन्तादन्विच्छन् रत्नकूटगिरेर्वनमालामध्यवर्तिन्या मकरन्दवापिकायास्तीरे चन्दनलतागृहे वर्तमानं कल्याणाभिनिवेशनमुपलभ्य सहैव वत्सया अञ्जनया तत्रैव पुनरहमागतः ।

विदूषकः—महाराअ, किं बहुणा सव्वे वि अम्हे [2]तुए पच्चुज्जीविद म्ह । [महाराज, किं बहुना सर्वेऽपि वयं त्वया प्रत्युज्जीविताः स्मः ।]

प्रतिसूर्यः—आर्य प्रहसित, मैवं वादीः । सर्वमेवैतद्गन्धर्वराजमणिचूडस्य प्रसादविलसितम् ।

(ततः प्रविशत्याकाशादवतीर्णो गन्धर्वराजो मणिचूडः ।)

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति ।)

मणिचूडः—

सोऽयमस्मत्प्रियसखः कुमारपवनंजयः ।
अभ्युत्तिष्ठति मामद्य साञ्जनोऽपि निरञ्जनः ॥ १३ ॥

यावदु[3]पसर्पामि । (उ[3]पसर्पति ।)

(सर्वे प्रणमन्ति ।)

मणिचूडः—महाराज प्रतिसूर्य ।

प्रतिसूर्यः—आज्ञापय ।

मणिचूडः—संभावितसौहार्देन वरुणेन पूर्वोपकृतिचोदितेन च लङ्केश्वरेण विजयार्धाधिराज्यलक्ष्मीमस्मिन्नेव यौवराज्याभिषेकमहो-

---

1 B D add लेखमुखेन before भवद्वृत्तान्त etc. *2* B D तुमे. *3* A omits.

त्सवे कुमारपवनंजयाय विश्राणयितुमहमिदानीमभिहितः। इत्थं च महाराजप्रह्लादेन महेन्द्रराजेनान्यैश्च श्रेणिद्वयगतैर्विद्याधरमहत्तरैरभ्यनुज्ञातः स्वयमिहागतोऽस्मि। तद्भवताप्येतदनुमन्यताम्।

प्रतिसूर्यः—(सहर्षम्) अनुमतमेव नः। संजातसौहार्दे भवति किं नाम जगति दुरवापम्।

विदूषकः—(सहर्षम्) वअस्स, कल्लाणपरंपराए वड्ढेसि। [वयस्य, कल्याणपरंपरया वर्धसे।]

मणिचूडः—

दत्ता तुभ्यमसौ नभश्चरगिरेः साम्राज्यलक्ष्मीर्मया
भो विद्याधरराजवंशतिलक प्रह्लादराजात्मज।

पवनंजयः—अनुगृहीतोऽस्मि।

मणिचूडः—(पुरो निर्दिश्य)

पश्य प्रश्रयनम्रमौलिशिखरन्यस्त[2]प्रणामाञ्जलि-
स्त्वां विद्याधरलोक एष परितः पर्युत्सुकः सेवते ॥ १४ ॥

प्रतिसूर्यः—सुसदृशमेवैतद्भवतोऽनुग्रहस्य।

मणिचूडः—

त्वय्यासक्तं मुखरयति मामत्र सौहार्दमेतत्
किं ते भूयः प्रियमुपहराम्यन्यदाचक्ष्व सौम्य।

पवनंजयः—

प्राप्ता कान्ता तनयसहिता खेचरश्रीश्च लब्धा
का दुष्प्रापा भवति सुमुखे श्रीस्तथाप्येतदस्तु ॥ १५ ॥

---

1 A श्रेणिद्वयागतैः. 2 A शिखरस्तस्य, B शिखरस्तत.

भूपालाः पालयन्तु प्रशमितनिखिलोपप्लवां भूतधात्रीं
काले काले पयोदा जगदभिलषितामेव वर्षन्तु वृष्टिम् ।
स्थेयासुः काव्यबन्धा बहुमतिमुचितां प्राप्य सद्भिः कवीनां
भव्यानां जैनमार्गप्रणिहितमनसां शाश्वतं भद्रमस्तु ॥ १६ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे[2] ।)

इति श्रीगोविन्दभट्टारकस्वामिनः सूनुना श्रीकुमारसत्य-वाक्यदेवरवल्लभोदयभूषणानामार्यमिश्राणामनुजेन, कवेर्वर्धमानस्याग्रजेन कविना हस्तिमल्लेन विरचिते[3]ऽञ्जनापवनंजयनामनाटके सप्तमोऽङ्कः[4] ।

॥ समाप्तं चेदम् अञ्जनापवनंजयं नाम नाटकम् ॥

---
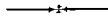
1 Thus A B D; better सद्भ्यः. *2* B D omit this. After this A B D add the following two stanzas: श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे निजभुजा-दण्डावलम्बीकृतं कर्णाटावनिमण्डलं पदनतानेकावनीशेऽवति । तत्प्रीत्यानुसरन् स्वबन्धु-निवहैर्विद्वद्भिराप्तैः समं जैनागारसमेतसंततनमे (D समेतसत्वनिगमे) श्रीहस्तिमल्लोऽ-वसत् ॥ १ ॥; (A D add here निष्क्रान्ताः सर्वे) इति हस्तिमल्लकविचक्रवर्तिनः कविसत्यवाक्यसदृशानुजन्मनः । रचनागुणाभिरमणीयमञ्जनापवनंजयं जयति नाटकं महत् ॥ २ ॥ *3* A विरचिनाञ्जनापवनंजयनामनाटके, B विरचितम् अञ्जनापवनंजयं नाम नाटकं सप्तमोऽङ्कः. *4* After this A reads समाप्तं चेदमञ्जनापवनंजयनाम-नाटकम् । श्रीरस्तु । शुभं भवतु लेखकपाठकयोश्च श्रीरस्तु ।, B समाप्तं चेदम् अञ्जनापव-नंजयं नाम नाटकम् । कृतिरियं भट्टहस्तिमल्लस्य । श्रीचन्द्रप्रभाय नमः । श्रीमत्प्रमेन्दुमुनये नमः ।, D विरचितं अंजनापवनंजयं नामनाटकं सप्तमोऽङ्कः ॥ ७ ॥ समाप्तं चेदमंजनाप-वनंजयं नाम नाटकं । कृतिरियं भट्टहस्तिमल्लस्य ॥ ... ॥ श्रीमते नमः ॥

सुभद्रा

नाम

नाटिका

※

आर्हन्तीमतुलामवाप्य तपसामेकं फलं भूयसां
यो नैराश्यधनत्रयस्य जगतामभ्यर्हणायाः पदम् ।
स्वीचक्रे स्तवनातिवर्तिविभवां सिद्धिश्रियं शाश्वती-
माद्यस्तीर्थकृतां कृती स वृषभः श्रेयांसि पुष्णातु नः ॥ १ ॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—(नेपथ्याभिमुखमालोक्य) आर्ये, इतस्तावत् ।

(प्रविश्य)

नटी—अय्यं, इअमम्हि । [आर्य, इयमस्मि ।]

सूत्रधारः—आर्ये, संपूर्णा नः संप्रति मनोरथाः सुदुर्लभपरिषल्लाभेन । तथा हि

अनुभवितुं सूक्तिरसान् वक्तुं च सुभाषितानि सुभगानि ।
गुणदोषांश्च विवेक्तुं व्यक्तं जानाति परिषदियम् ॥ २ ॥

यावदेनामनुरूपेण प्रयोगेणाराधयामः ।

---

1 At the beginning A has श्रीः । श्रीमते नमः । सुभद्रानाटकम्. B श्रीमत्पञ्चगुरुभ्यो नमः । नमः सिद्धेभ्यः. *2* Both A and B read अय्य here as well as in the sequel. It is uniformly taken to stand for अय्य (=आर्य)

नटीः—अय्य, कदमो उण पओओ परिसदो आराहइत्तओ तुह पडिभाइ। [आर्य, कतमः पुनः प्रयोगः परिषद आराधयिता तव प्रतिभाति।]

सूत्रधारः—आर्ये, किमन्यत्। ननु भट्टारगोविन्दस्वामिसूनोर्भट्टहस्तिमल्लस्य कृतिर्नाटिका सुभद्रा।

नटीः—अइ भरनकुलुत्तंस, कुदो खु से[1] एव्व तुह रोअदि। [अयि भरतकुलोत्तंस, कुतः खलु से एव तव रोचने।]

सूत्रधारः—

सुकुमारभावरम्या कान्तिमसाधारणीमसौ दधती।
आवर्जयति सुभद्रा भरतस्य समुत्सुकं चेतः॥ ३॥

(निष्क्रान्तौ।)

(प्रस्तावना।)

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च।)

राजा—

अभ्येतो निधिरम्भसामचलितः कल्पान्तवातैरपि
प्राप्तश्च प्रथमः कुलक्षितिभृतां व्योमापगाजन्मभूः।
दृष्टोऽसौ रजताचलश्च वसतिर्विद्याधराणां मया
द्रष्टव्यं ननु दृष्टमेव सकलं दिग्जैत्रयात्राच्छलात्॥ ४॥

विदूषकः—णाणादेसपरिब्भमो णाम एक्कं सोक्खं पुरिसस्स। [नानादेशपरिभ्रमो नामैकं सौख्यं पुरुषस्य।]

राजा—सम्यगाह भवान्। यतोऽस्माभिः

आसादिता[2] जनपदा बहुदर्शनीया
भाषान्तराणि सकलानि सुशिक्षितानि।

---

1 Thus A B; better to read सा. 2 B आपादिता.

देशोचितं परिचितं परिकर्म पुंसां
ज्ञातं च तत्तदनुवर्तनमङ्गनानाम् ॥ ५ ॥

विदूषकः—किं अण्णं आसंघीअदु। भुत्तं खु तेसु तेसु देसेसु सुमिट्ठं तं तं भोअणं। पीआणि अ ताणि ताणि रसायणाणि पाणआणि। खादिआ अ अणिहविआ[1] मोदआ। लीढो अ सो सो दुलहो लेहो। [किमन्यदाशास्यते[2]। भुक्तं खलु तेषु तेषु देशेषु सुमृष्ट तत्तद् भोजनम्। पीतानि च तानि तानि रसायनानि पानकानि। खादिताश्चानेकविधा मोदकाः। लीढश्च स स दुर्लभो लेहः[3]।]

राजा—आस्तामयमौदरिक[4]संलापः।

विदूषकः—भो राअ, किं अण्णं पलवेमि। [भो राजन्, किमन्यत् प्रलपामि।]

राजा—अस्ति वा परमप्यस्माकं द्रष्टव्यम्।

विदूषकः—किं अण्णं दट्ठव्वं। दिट्ठं दाव पुढमं वि दूरादो अभिगमणिज्जं[5] गंगासागरं। [किमन्यद् द्रष्टव्यम्। दृष्टं तावत् प्रथममपि दूरादभिगमनीयं गङ्गासागरम्।]

राजा—दृष्टम्। यत्र

क्षोणीभृतो हिमवतः कटकादुपेतां
दूरं प्रसारिततरङ्गभुजः स्खलन्तीम्।
उच्चां[6]सिविद्रुमलतांशुकमेत्य गङ्गाम्
आलिङ्गतीव सरितां पतिरादरेण ॥ ६ ॥

विदूषकः—दिट्ठो अ सुलहतंबूली-कमुअ-वाडरमणिज्जो दक्खिणावहो। [दृष्टश्च सुलभताम्बूलीक्रमुकवाटरमणीयो दक्षिणापथः।]

---

1 B अणेहिविआ; the reading should be अणेअविहा. 2 Thus A D; it should be आशास्यताम्. 3 A लेह्यः; B मोदकः (?). 4 B औदारिक°. 5 A अभिगमणिज्जपादं; chāya in A however अभिगमनीयम्. 6 A उच्चासि°.

राजा—दृष्टः । यत्र हि

पर्यन्तपर्यस्ततरङ्गभङ्गस्तनांशुकामाकुलमीननेत्राम् ।
अम्भोधिरालिङ्गति ताम्रपर्णीं संमर्दविच्छिन्नविकीर्णमुक्ताम् ॥७॥

विदूषकः—दिट्ठो अ पच्छाअचंदणवणराइपरिभिण्णणिअंबो मलआअलो । [दृष्टश्च प्रच्छायचन्दनवनराजिपरिभिन्ननितम्बो मलयाचलः ।]

राजा—यतः खलु

वहन्ननङ्गस्य पुरःसरोऽसौ मन्दो मरुच्चन्दनगन्धसान्द्रः ।
रतिश्रमं हन्ति समागतानां ददाति मूर्छामसमागतानाम् ॥ ८ ॥

विदूषकः—दिट्ठा अ सुहोपसेव्वदेसा[1] अपरंतभूमी । जहिं खंडिअ-एलाथवएहिं संथारिअणिउत्तरीअपच्छदासु सरसलवंगाअरुपाअवपुलिणअलसेज्जासु सोवंतेहिं सेविओ तुह सेणिएहिं संचरंतकत्थूरिआहरिणणाहिगंधसुरही वेलावणवाओ । [दृष्टा च सुखोपसेव्यदेशा अपरान्तभूमिः । यत्र खण्डितैलास्तबकैः संस्तारितनिजोत्तरीयप्रच्छदासु सरसलवङ्गागरुपादपपुलिनतलशय्यासु स्वपद्भिः सेवितस्तव सैनिकैः संचरत्कस्तूरिकाहरिणनाभिगन्धसुरभिर्वेलावनवातः ।]

राजा—

एलालतानद्धलवङ्गराजीपरिष्कृतां तामपरान्तभूमिम् ।
सकौतुकं स्यान्मृगनाभिगन्धि वेलावनं वीक्ष्य न कस्य चेतः ॥९॥

विदूषकः—तदो अ अणुगअसिंधुतीरेहिं समासादिअवेअड्ढेहिं अत्तहोदो दंडरअणप्पहारुग्घाडिअवज्जकवाडउडं ओवाहिऊण तमिस्सगुहं उत्तिण्णो अम्हेहिं दुत्तरो उम्मग्ग[2]जलाणिमग्गजलाणई-

---

1 A सुहोपसेप्पवद्देमा. B सुहोपसेप्पद्देसा (chāyā in A B सुखोपसर्पदेशा). Reading in the text is conjectural. *2* A उगयजला°; B उरमग्गजलाणई-संघादसंकडो.

संपादसंकडो । [ततश्च अनुगतसिन्धुतीरैः समासादितविजय अत्रभवतो दण्डरत्नप्रहारोद्घाटितवज्रकपाटपुटामवगाह्य तस्मिन्नगुहामुत्तीर्णोऽस्माभिर्दुस्तर उन्मग्नजलानिमग्नजलानदीसंपातसंकटः ।]

राजा—यत्र हि

उन्नमयति सिन्धुपयः सरिदेका युवमनः प्रियेव नवा ।

अवनमयति तु तदेव प्रतीपगा वल्लभेव परा ॥ १० ॥

विदूषकः—पविट्ठो अ पुण तुम्हारिसाणं पिदुप्पदेसो[1] उत्तरभरहो। [प्रविष्टश्च पुनर्युष्मादृशानां पितृप्रदेश उत्तरभरतः ।]

राजा—यत्र खलु

मेघमुखैरुपजनितां प्रावृषमापातुकामतिक्रम्य ।

शरदिव हंसेन मया विलातराजात्मजा प्राप्ता ॥ ११ ॥

विदूषकः—मए अ अत्तहोदीए विलादराअउत्तीए उवहरिअं वेवाहिअं सत्थिवाअणअं । [मया चात्रभवत्या विलातराजपुत्र्या उपहृतं वैवाहिकं स्वस्तिवाचनकम् ।]

राजा—(सस्मितम्) असुलभो लम्भः ।

विदूषकः—दिट्ठो अ तदो कुलाअलाणं पढमो तत्तहोदो विजअ-वावारुत्तरसीमा हिमवंतो । [दृष्टश्च ततः कुलाचलानां प्रथमस्तत्रभवतो विजयव्यापारोत्तरसीमा हिमवान् ।]

राजा—दृष्टः ।

कुलाचलानां प्रथमस्य यस्य मन्दाकिनी मूर्तिमतीव कीर्तिः ।

स्रवत्यजस्रं शुचिनिर्झरश्रीरासागरं व्याप्नुवती धरित्रीम् ॥ १२ ॥

विदूषकः—दिट्ठा अ तदो हिमवंतसिहरादो णिवडंती भअवदी हेमवदी । [दृष्टा च ततो हिमवच्छिखरात् निपतन्ती भगवती हैमवती ।]

---

1 पिदुव्वदेसो; B पिदुप्पवेसो.

राजा—दृष्टा ।

त्रिमार्गगां यां विदुरापतन्तीं सुरालयाद् व्योम ततो धरित्रीम् ।
या पुण्यतोयेति जनस्य मान्या स्वयं पतन्ती पतितं पुनाति ॥१३॥

विदूषकः—दिट्ठो अ पुण एस मंदाइणीवेअड्ढसंगमो दाणिं सिविरसंणिवेसीकदो । [दृष्टश्च पुनरेष मन्दाकिनीविजयार्धसंगम इदानीं शिबिरसंनिवेशीकृतः ।]

राजा—

सुरस्रवन्तीमपरेण कृप्तो विद्याधराणां गिरिमुत्तरेण ।
तैस्तैर्विहारैः सविशेषरम्यः श्लाघ्योऽयमन्तःपुरसंनिवेशः ॥ १४ ॥

पश्य

अस्मिन्नभूदुपवनं विजयार्धपाद-
वेदीवनं कुलगृहं सकलर्तुलक्ष्म्याः ।
लीलासरित् सुरनदीसुभगावगाहा
क्रीडाचलोऽपि रजताचल एष रम्यः ॥ १५ ॥

विदूषकः—एवं । [एवम् ।]

राजा—किमन्यद् द्रष्टव्यं पश्यसि ।

विदूषकः—दिट्ठं दाणि अण्णं दट्ठव्वं । [दृष्टमिदानीमन्यद् द्रष्टव्यम् ।]

राजा—किं तत् ।

विदूषकः—एत्थ खु मंदाइणीवेअड्ढसंगमे कंडअपवादगुहा ण दिट्ठपुव्वा । जाव सा अज्ज दीसउ । [अत्र खलु मन्दकिनीविजयार्धसंगमे काण्डकप्रपातगुहा न दृष्टपूर्वा । यावत्साद्य दृश्यताम् ।]

राजा—तथास्तु ।

विदूषकः—तेण हि उट्ठेदु भवं । [तेन हि उत्तिष्ठतु भवान् ।]

(उत्तिष्ठतः ।)

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) एदं खु अंतेउरणिवेसपासवट्टि पमद-वणीकदं वेदीवणं । जाव ओवाहिज्जउ । [एतत् खलु अन्तःपुरनिवेशपार्श्ववर्ति प्रमदवनीकृतं वेदीवनम् । यावदवगाह्यताम् ।]

राजा—अग्रतो भव ।

विदूषकः—इदो इदो । [इत इतः ।]

(परिक्रामतः ।)

विदूषकः—पविट्ठ म्ह वेदीवणं । [प्रविष्टौ स्वो वेदीवनम् ।]

राजा—(निर्वर्ण्य)

चुम्बन्वायुः स्तबकवदनं दक्षिणश्रूतयष्ट्याः
पौष्पं चूर्णं विकिरति हठाकृष्टभृङ्गालकायाः ।
अन्तर्गुञ्जन्मधुपवलयः पल्लवो वेपतेऽसौ
हस्तस्तस्या धुत इव मुहुर्दष्टपुष्पाधरायाः ॥ १६ ॥

विदूषकः—इदो दक्खीअदु कुलणई गंगा । [इतो दृश्यतां कुलनदी गङ्गा ।]

राजा—अहो जाह्नवीपरिसरे कापि शोभा वासरारम्भस्य । अत्र हि

विमिश्रयन्नम्बुजिनीदलेषु शनैरवश्यायकणान् विकीर्णान् ।
व्याधूनयन्वाति विभातवायुर्व्याकोशकोशानि कुशेशयानि ॥ १७ ॥

(निर्वर्ण्य) असाधारणं च रामणीयकमस्याः । यतः

मन्दाकिनीतीरलतागृहेषु मन्दारपुष्पास्तरणाञ्चितेषु ।
सुराः सदैव त्रिदिवं विहाय समं रमन्ते सुरसुन्दरीभिः ॥ १८ ॥

विदूषकः—एसो अ इदो अत्तहोदो विजअस्स अद्धभूदो जह-त्थणामा विजयद्धाअलो । [एष चेतोऽत्रभवतो विजयस्यार्धभूतो यथार्थनामा विजयार्धाचलः ।]

राजा—(निर्वर्ण्य)

हिरण्यगर्भप्रथमाभिषेककल्याणपीठस्य तनोति शोभाम् ।
क्षीरोदपूरस्नपितस्य गौरो रूप्याचलोऽयं कनकाचलस्य ॥ १९ ॥

विदूषकः—इदो अ एसा गंगापवेसदुवारभूदा कंडअपवाद-गुहा । [इतश्च एषा गङ्गाप्रवेशद्वारभूता काण्डकप्रपातगुहा ।]

राजा—(निर्वर्ण्य)

व्योमापगामुपगतां द्रुतचन्द्रकान्त-
निष्यन्दनिर्मलजलां रजताचलोऽयम् ।
पीत्वेव दूरविवृतेन गुहामुखेन
तद्वासनोपरचितां शुचितां बिभर्ति ॥ २० ॥

विदूषकः—भो वअस्स, इदो सुलहदंसणिज्जासु रयदायलत्थ-लीसु विहरंता दिट्ठीओ विलोहइस्सम्ह । [भो वयस्य, इतः सुलभदर्शनीयासु रजताचलस्थलीषु विहरमाणौ दृष्टीर्विलोभयावः ।]

राजा—यद्भवते रोचते ।

(परिक्रामतः ।)

राजा—(विलोक्य) कथमसौ बालाशोकतले सरसालक्तकाङ्का पदपङ्क्तिः । (निर्वर्ण्य)

चर्चेव कुङ्कुमकृता प्रततेयमग्रे
सन्ध्येन्दुखण्डरुचिरा च पदस्य मध्ये ।
पश्चाद्रुचं वहति यावकपङ्क्तिरार्द्रा
गोरोचनाविरचितस्य विशेषकस्य ॥ २१ ॥

विदूषकः—भो वअस्स, इदो दक्खीअदु बालासोअपाअव-क्खंधणिहित्तं वि एक्कं अलत्तयरसोल्लियं पअं । [भो वयस्य, इतो दृश्यतां बालाशोकपादपस्कन्धनिक्षिप्तमपि एकम् अलक्तकरसार्द्रितं पदम् ।]

राजा—(दृष्ट्वा) कस्याः खल्वयमशोकताडने यत्नः ।

विदूषकः—पाअसो एत्थ विज्जाहरीओ विहरंति । ता णूणं एक्काए विज्जाहरसुन्दरीए सहत्थसंवड्ढणलालिअस्स इमस्स बालासो-अस्स आआलियं कुसुमुग्गमं पेक्खिदुकामाए समप्पिअं तक्खण-रंजिअपिंडालत्तरसणिब्भरिअराअं एअं पअं । [प्रायशोऽत्र विद्याधर्यो विहरन्ति । तस्मान्नूनमेकया विद्याधरसुन्दर्या स्वहस्तसंवर्धनलालितस्य अस्य बालाशोकस्य आकालिकं कुसुमोद्गमं द्रष्टुकामया समर्पितं तत्क्षणरंजितपिण्डा-लक्तकरसनिर्भरितरागम् एतत्पदम् ।]

राजा—सुसंगतस्तर्कः । (अशोकं प्रति, सबहुमानम्) अयि भोः पादपराज[1],

शिरसा प्रार्थनीयेन पुलकोद्भवदायिना ।

संभावितो नितम्बिन्या पादेन सुकृती भवान् ॥ २२ ॥

(निर्वर्ण्य) वयस्य, दृश्यतामनेनैवायममन्दभाग्यसुलभेन विद्याधरीचरण-ताडनेन अतिव्यक्तरागसंलक्षितकोरकोद्भेदः संवृत्तः ।

विदूषकः—(विलोक्य) कहं एस कुप्पंतो विअ कुंभदासीअण-पाअप्पहारेण राअं[2] संदंसेइ । [कथमेष कुप्यन्निव कुम्भदासीजनपाद-प्रहारेण रागं संदर्शयति ।]

राजा—(अशोकं प्रति) शोभनफलश्च ते कुसुमोद्भेदः । येन

वतंसयन्तीं सरसं[3] प्रवालमुत्तंसयन्तीं स्तवकं विनिद्रम्[4] ।

विन्यस्त[5]पुष्पाग्रविशेषकान्तामाराधयिष्यस्यचिरेण कान्ताम् ॥ २३ ॥

---

1 A पार्थिवराज. *2* A B राअंस दंसेइ (chāyā रागं दर्शयति). But evidently it is equal to राअं संदंसेइ=रागं संदर्शयति. *3* B सरसप्रवालम्. *4* B विनिद्रः. *5* B विन्यस्य.

किंतु सापवादं ते वैदग्ध्यम् । कुतः

अङ्कुरान् किसलयानि कोरकान् कुड्मलानि कुसुमानि च क्रमात् ।
स्त्रीपदाहतिमपेक्ष्य चेद्भवान् दर्शयेन्ननु परा विदग्धता ॥ २४ ॥

विदूषकः—इदो दक्खीअदु संताडिअबालासोआए तिस्से णिग्गमपअपंती । [इतो दृश्यतां संताडितबालाशोकायास्तस्या निर्गमपद-पङ्क्तिः ।]

राजा—यावदेनामनुसरामः । (परिक्रम्य विलोक्य च) नूनमस्मिन्नेव प्रच्छायसहकारच्छायातले मुहूर्तमीषदुद्यतैकहस्तावलम्बितप्रलम्बशाखायष्टिरसौ विश्रमाय स्थिता । तथा हि

श्रोणीबिम्बोद्वहनजनितक्लान्तिमाश्वासहेतो-
र्दीर्घोच्छ्वासां पदयुगमिदं शंसतीह स्थितां ताम् ।
एकं भूमौ स्थिरविनिहितं सान्द्रलाक्षारसाङ्कं
पार्श्वे स्रस्तार्पितमबहुलालक्तकं च द्वितीयम् ॥ २५ ॥

अयं च

ब्रवीति तस्याः सरसो नतभ्रुवः
कपोलघर्माम्बुकणापमार्जनम् ।
समुच्छ्वसत्पत्त्रलतोपमर्दना-
द्विभिन्नवर्णः सहकारपल्लवः ॥ २६ ॥

हन्त श्लाघनीयः शोचनीयश्चायं पल्लवः । (पल्लवं प्रति)

स्पृष्टोऽसि तस्याः करपल्लवेन कपोलयोः सादरमर्पितोऽसि ।
आदाय यत्त्वं न कृतोऽसि कर्णे तत्सर्वथा[2] पल्लव वञ्चितोऽसि ॥२७॥

विदूषकः—(विलोक्य) वअस्स, एदाणि इदो वि णिग्गमणपआणि । [वयस्य, एतानि इतोऽपि निर्गमनपदानि ।]

---

1 A णिग्गमणपदपंती (chāyā; निर्गमनपदपङ्क्तिः). 2 B सर्वदा.

राजा—तेन हि ततो गम्यताम्।

(परिक्रामतः ।)

(ततः प्रविशति सुभद्रा मन्दारिका च ।)

सुभद्रा—सहि मंदारिए, कुत्थ[1] एण्हि सहिअणो । [सखि मन्दारिके, कुत्रेदानीं सखीजनः ।]

मन्दारिका—विहारचापलादो किल परिदो वणं परिब्भमंतो । [विहारचापलात् किल परितो वनं परिभ्रमन् ।]

सुभद्रा—तेण हि अण्णेसामो । [तेन हि अन्वेषयावः ।]

मन्दारिका—जं पिअसही भणादि । इदो इदो । [यत्प्रियसखी भणति । इत इतः ।]

(परिक्रामतः ।)

विदूषकः—(कर्णं दत्त्वा) भो वअस्स, इदो[2] मंदारतरुसंडस्स परिदो उग्गीववणविहंगसुणिज्जंतमहुरत्तणो णेउरणिणादो उच्चरइ[3] । [भो वयस्य, इतो मन्दारतरुषण्डस्य परित उद्ग्रीववनविहङ्गश्रूयमाणमधुरत्वो[4] नूपुरनिनाद उच्चरति ।]

राजा—तेन हि मन्दारतरुषण्डान्तरिताः पश्यामः ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । [यद्भवानाज्ञापयति ।]

(तथा कुरुतः ।)

राजा—(दृष्ट्वा, सविस्मयं सौत्सुक्यं च) अहो निर्माणकौशलं विधातुः । (विचिन्त्य)

शृङ्गारमालोक्य रसेषु मुख्यं
तस्योचितं पात्रमियं नु सृष्टा ।

---

1 A केत्थ. *2* A इदो इदो । मंदारतरुसंडस्स etc. *3* B उब्भरइ; chāyā in A उद्भरति, in B उद्भवति. *4* A B °मधुरत्वम्; °महुरत्तणो should better be rendered by °माधुर्यः.

अस्या विशिष्टान्नु गुणान्विलोक्य
शृङ्गारनामा रस एष सृष्टः ॥ २८ ॥

विदूषकः—अहो ईरिसं पि रूअं इमस्सिं लोए संभावीअदि। [अहो ईदृशमपि रूपमस्मिँल्लोके संभाव्यते।]

राजा—पुष्णाति च परं लावण्यमस्या वयोऽवस्था। तथा हि

कुमुद्वतीं चन्द्रमसेव दृष्टां
ज्योत्स्नामिवेन्दोरचिरोदितस्य।
मुग्धत्वमेनां जहतीं क्रमेण
स्पृशत्यसौ संप्रति कापि शोभा ॥ २९ ॥

सुभद्रा—सहि मंदारिए, सच्चं एव्व सो बालासोओ अइरेण कुसुमुग्गमं दंसेइ। [सखि मन्दारिके, सत्यमेव स बालाशोकोऽचिरेण कुसुमोद्गमं दर्शयति।]

विदूषकः—कहं एसा एव्व असोअस्स ताडइत्तआ। [कथम् एषा एव अशोकस्य ताडयित्री।]

राजा—अनन्यगामिन्या पदपङ्क्त्यैव ननु कथितम्।

मन्दारिका—जइ ण मं पत्तिआअसि, सुदो[1] आयमिय दक्खिस्ससि। [यदि न मां प्रत्याययसि, श्व आगत्य द्रक्ष्यसि।]

राजा—दिष्ट्या श्वोऽप्यागन्तव्यमनया।

सुभद्रा—सहि, जाए उण मालईलआए आआलिअकुसुमुब्भेदयरं तुए दिण्णं दोहलयं, जइ एसा वि इमिणा बालासोएण समं कुसुमिआ भवे, [2]तदो अण्णोण्णं इमाणं उव्वाहविहिं संपादइस्सम्ह। [सखि, यस्याः पुनर्मालतीलताया आकालिककुसुमोद्भेदकरं त्वया दत्तं दोहलकं,

1 A सुतो. It should be सुओ or सुवो. 2 A B add अ (=च) before तदो.

यद्येषाऽप्यनेन बालाशोकेन समं कुसुमिता भवेत्, ततोऽन्योन्यमनयोरुद्वाह-विधिं संपादयिष्यावः ।]

मन्दारिका—जेण सो एव्व तुह उव्वाहविहीए पत्थावणा भविस्सदि । [येन स एव तवोद्वाहविधेः प्रस्तावना भविष्यति ।]

विदूषकः—वअस्स, सण्हा[1] तुह दंसणे उवस्सुदी । [वयस्य, श्लक्ष्णा तव दर्शने उपश्रुतिः ।]

राजा—प्रसन्नतर्को भव ।

सुभद्रा—हला, कहिं दाणि सहिअणं अण्णेसामो । [सखि, कुत्र इदानीं सखीजनमन्वेषयावः ।]

मन्दारिका—एसो खु अग्गदो मंदारतरुसंडो दीसइ । जाव णं अण्णेसिज्जइ । [एष खलु अग्रतो मन्दारतरुषण्डो दृश्यते । यावदेषो[2] अन्विष्यताम् ।]

सुभद्रा—जं पिअसही भणादि । [यत् प्रियसखी भणति ।]

(परिक्रामतः ।)

राजा—(निर्वर्ण्य) चिरादवाप्तं फलं चक्षुषोः । (सोत्कण्ठमात्मगतम्)

पट्खण्डेश्वरतां विडम्बनसमां पश्यामि सारोज्झितां
तारुण्यं वयसश्च निष्फलतया कारुण्यमेवार्हति ।
वैदग्ध्यं दयितानुवर्तनविधौ वैयर्थ्यशोच्यं च मे
कन्यारत्नमनर्घ्यमेतदचिराद्दक्षो न चेद्धूपयेत् ॥ ३० ॥

विदूषकः—वअस्स, इह एव्व आअच्छदि । किं ओसरेमो आदु चिट्ठम्ह । [वयस्य, इहैवागच्छति । किमपसरावोऽथवा तिष्ठावः ।]

राजा—प्रत्यासन्ने एवैते । न तावद्दृष्टयोरावयोरपसरणलब्धिः । तदत्र स्थितिरेव वरम् ।

---

1 A सोण्हा. *2* A B एनम्.

मन्दारिका—एसो मंदारतरुसंडो। जाव अण्णेसेमो। [एष मन्दारतरुखण्डः। यावदन्विष्यावः।]

सुभद्रा—सहि, तह। (परिक्रम्य राजानं दृष्ट्वा च ससाध्वसं सौत्सुक्यं चात्मगतम्) अम्मो को एसो। [सखि, तथा। (परिक्रम्य राजानं दृष्ट्वा च ......चात्मगतम्) अहो क एषः।]

मन्दारिका—(सविस्मयम्) को एसो असाहारणमणुससुलहेण रूवसोहग्गेण इमं लोअं अलंकरेदि। [क एषोऽसाधारणमनुष्यसुलभेन रूपसौभाग्येन इमं लोकमलंकरोति।]

राजा—वयस्य, उपसृत्य संभाषणमेवात्रोत्तरम्।

विदूषकः—जं वअस्सस्स रोअदि। [यद्वयस्यस्य रोचते।]

(उपसर्पतः।)

विदूषकः—होदि, चक्कवट्टिणो पाणवल्लहा होहि। [भवति, चक्रवर्तिनः प्राणवल्लभा भव।]

राजा—(आत्मगतम्) सुप्रयुक्तेयमाशीः। (प्रकाशम्)

कर्कशे पादपस्कन्धे निहितस्य नितम्बिनि।
प्रवालसुकुमारस्य कुशलं चरणस्य ते ॥ ३१ ॥

सुभद्रा—(अपवार्य) हला, किं असोअताडणं[1] वि इमिणा दिट्ठं। [सखि, किम् अशोकताडनमप्यनेन दृष्टम्।]

मन्दारिका—(अपवार्य) अलत्तअरसंकिअपअपंतिं अणुसरिअ एदेण आअदेण होदव्वं। [अलक्तकरसाङ्कितपदपङ्क्तिमनुसृत्य[2] एतेन आगतेन भवितव्यम्।]

राजा—

अनेन तावच्चरणाम्बुजेन वामेन वामोरु तथार्चितस्य।
युक्ता तरोः काममशोकतैव शोच्या तु सा प्रागपि तस्य रूढा ॥३२॥

---

1 A °तालणं पि. 2 A B °रसाङ्कां पदपङ्क्तिम् etc.

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अम्मो संभासणे वि कोसलं । (मन्दारिकां प्रति) हला, सहिअणो णं अण्णेसिदव्वो । [अहो संभाषणेऽपि कौशलम् । (मन्दारिकां प्रति) सखि, सखीजनो नन्वन्वेषितव्यः ।]

विदूषकः—अहो अदक्खिणत्तं अत्तहोदीए जं तक्खणदिट्ठं अपुव्वं जणं असंभाविअ अत्तणो सहिअणं अण्णेसिदुं गच्छीअदि । [अहो अदक्षिणत्वमत्रभवत्या यत् तत्क्षणदृष्टमपूर्वं जनमसंभाव्य आत्मनः सखीजनमन्वेष्टुं गम्यते ।]

राजा—सुन्दरि, साप्तपदीनं सख्यं नाम । तत् किमस्मासु न पर्याप्तं सख्यम् । पश्य

अविरतमहं सेवे रम्भोरु विद्यत एव मे
तव चरणयोः श्रान्तौ[2] संवाहनेषु विदग्धता ।
सपदि शिरसा श्लाघ्यामाज्ञां वहामि नियोज्यतां
प्रियसखि ममाप्यार्द्रं सख्यं प्रतीच्छ कृतोऽञ्जलिः ॥ ३१ ॥

(सुभद्रा लज्जां नाटयति ।)

मन्दारिका—(आत्मगतम्) कहं अइमेत्तपसत्तं इमस्स संभासणं । [कथम् अतिमात्रप्रसक्तमस्य संभाषणम् ।]

(नेपथ्ये नूपुरध्वनिः । सर्वे आकर्णयन्ति ।)

मन्दारिका—(ससंभ्रमम्) पिअसहि, एहि एहि । इदो ओसरम्ह । [प्रियसखि, एहि एहि । इतोऽपसरावः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अहं किं दाणिं करेमि । (सोत्कण्ठम्) अवि णाम पुणो वि स एस जणो दक्खिज्जइ । [अहं किमिदानीं करोमि । (सोत्कण्ठम्) अपि नाम पुनरपि स एष जनो द्रक्ष्यते ।]

---

1 A drops ननु. *2* A शान्तौ; B श्रान्ता. Reading in the text is conjectural. This stanza occurs in विक्रान्तकौरवम् V. 75.

मन्दारिका—इदो इदो पिअसहि[1] । [इत इतः प्रियसखि ।]

(निष्क्रान्ते ।)

राजा—(तन्मार्गदत्तदृष्टिः[2]) कथं गतैव सा । (सोत्कण्ठम्) क नु खलु सा पुनरपि दृश्यते ।

विदूषकः—वअस्स, किं एक्कपदे ऊसुओ सि । [वयस्य, किमेकपदे उत्सुकोऽसि ।]

राजा—औत्सुक्यमिति यत्किंचिदेतत् । तथा हि

स्तनतटसमुत्क्षिप्ता मुक्तावली परिवर्तिता
सुनिहितमपि स्पृष्टं कर्णोत्पलं प्रहितः करः ।
नमितवदनं सख्या न व्याजमन्तरितं मुहु-
र्मयि च निपतद्दृष्टौ न्यस्ते दृशौ स्तनचूचुके ॥ ३४ ॥

विदूषकः—वअस्स, समासण्णं तं णेउरसिंजिअं । कदाइ इदोगअं पिअवअस्सं सुणिअ देवी वि आअदा भवे । [वयस्य, समासन्नं तन्नूपुरसिञ्जितम् । कदाचिदितोगतं प्रियवयस्यं श्रुत्वा देव्यप्यागता भवेत् ।]

राजा—युज्यते च ।

(ततः प्रविशति देवी चेटी च ।)

देवी—हंजे रइसेणे, कहिं दाणिं अय्यउत्तो । [चेटि रतिषेणे, कुत्रेदानीमार्यपुत्रः ।]

चेटी—भट्टिणि, वेदिवणं गदो त्ति सुदं मए परिअणादो । ता इदो एदु भट्टिणी । [भट्टिनि, वेदीवनं गत इति श्रुतं मया परिजनात् । तस्मादित एतु भट्टिनी ।]

---

1 B पिअसही, chāyā प्रियसखी. 2 A तन्मार्गगतदृष्टिः.

(परिक्रामतः ।)

चेटी—(पुरो विलोक्य) भट्टिणि, इदो दक्ख, मंदाइणीतोअम्मि विअ हेमंबुअराइं राअदाअलत्थलम्मि लद्धपरभाअं अलत्तअरसंकं पअपंतिं । [भट्टिनि, इतः पश्य, मन्दाकिनीतोय इव हेमाम्बुजराजिं राजताचलस्थले लब्धपरभागाम् अलक्तकरसाङ्कां पदपङ्क्तिम् ।]

देवी—(दृष्ट्वा सशङ्कम्) हला, इदो एव्व गदो अय्यउत्तो त्ति भणासि । इअं पि अलत्तअरसंका काए वि इत्थिआए पअपंती । ता अलं एत्तिएण । किं ति पुणो वि अण्णेसीअदि अय्यउत्तो । एहि णिव्वत्तम्ह । [सखि, इत एव गत आर्यपुत्र इति भणसि। इयमपि अलक्तकरसाङ्का कस्या अपि स्त्रियाः पदपङ्क्तिः । तस्मादलमेतावता । किमिति पुनरप्यन्विष्यते आर्यपुत्रः। एहि निवर्तावहे ।]

चेटी—भट्टिणि, णं एस विज्जाहरलोओ । सुलहो हु एत्थ संचरंतो विज्जाहरिजणो । अलं अत्थाणे माणव्वसणेण । जइ पच्चक्खदो दक्खिस्सिसि[1] भट्टिणो अवराहं तदा जुत्तं कोवेदुं । ता एहि । इमं पअपंतिं अणुसरेमो । जेण अवरद्धो अणवरद्धो वा भट्टा जाणीअदि । [भट्टिनि, नन्वेष विद्याधरलोकः । सुलभः खल्वत्र संचरन् विद्याधरीजनः । अलमस्थाने मानव्यसनेन । यदि प्रत्यक्षतो द्रक्ष्यसि भर्तुरपराधं तदा युक्तं कोपितुम् । तस्मादेहि । इमां पदपङ्क्तिमनुसरावः । येन अपराद्धो अनपराद्धो वा भर्ता ज्ञायते ।]

देवी—जह पिअसही भणादि । [यथा प्रियसखी भणति ।]

(परिक्रामतः ।)

विदूषकः—(विलोक्य) वअस्स, एसा खु देवी आअच्छदि । दिट्ठिआ गदा एव्व सा अम्हाणं पाणाइं दाऊण विज्जाहरकण्णआ । [वयस्य, एषा खलु देवी आगच्छति । दिष्ट्या गतैव सा आवयोः प्राणान्दत्त्वा विद्याधरकन्यका ।]

---

1 A दक्खिस्सेसे, chāyā द्रक्ष्यसे.

राजा—(दृष्ट्वा) कथमलक्तकरसाङ्कामिमामेव पदपङ्क्तिमनुसरति देवी। संप्रति हि

शङ्कानिश्चललोचना करतलं विन्यस्य सख्याः करे
लाक्षाङ्कानि पदानि वीक्ष्य सुचिरं सेर्ष्यां गतिं भिन्दती।
दृष्ट्वा मां च विजिह्मतारकमसावुन्नम्य किंचिन्मुखं
नेत्रे तत्क्षणमेव हन्त हरति प्रान्तोपरुद्धाश्रुणी॥ ३५॥

तत्किमत्रोत्तरम्।

विदूषकः—वअस्स, मा भआहि[1]। अहं ते एत्थ णित्थारइत्तओ[2]। [वयस्य, मा बिभेहि। अहं तेऽत्र निस्तारयिता।]

देवी—(राजानं दृष्ट्वा) असंतुट्ठे, किं दाणिं पि ण णिवत्तेसि। णं एसो इदं[3] एव्व दिट्ठो अय्यउत्तो। [असंतुष्टे, किमिदानीमपि न निवर्तसे। नन्वेष इहैव दृष्ट आर्यपुत्रः।]

चेटी—भट्टिणि, ण एत्तिएण कोविदुं अरिहेसि। [भट्टिनि, नैतावता कोपितुमर्हसि।]

विदूषकः—(उपसृत्य) जेदु अत्तहोदी। [जयतु अत्रभवती।]

राजा—(उपसृत्य)

स्वयमागमनेन तनुः सुकुमारा किमिति खेदिता सुतनु।
ननु नाहूतः कस्मादयं जनः परिजनमुखेन॥ ३६॥

देवी—कज्जंतरसत्तरजणो[4] कहं आहूअदि। [कार्यान्तरसत्वरो जनः कथमाहूयते]

राजा—अयि मुग्धे

---

1 Thus A B; the usual form is भाआहि. *2* B णिद्धारइत्तओ° chāyā निर्धारयिता (A B). *3* A इदं. Really we should have इह or इहं. *4* Thus A B; it should be °सत्तरो जणो.

न युद्धं प्रतियोद्धॄणामभावान्मम विद्यते ।
रक्षिताश्च प्रजाः सर्वाः कस्मिन् कार्यान्तरे त्वरा ॥ ३७ ॥

देवी—[1]जं सच्चं मुद्धो एस जणो । अय्यउत्त, तुह हिअअं एत्थ सक्खि[2] होदि । [यत्सत्यं मुग्ध एष जनः । आर्यपुत्र, तव हृदयमत्र साक्षि भवति ।]

विदूषकः—अत्तहोदि, सह एव्व वत्तंतो[3] ण खु अहं जाणामि । [अत्रभवति, सहैव वर्तमानो न खल्वहं जानामि ।]

देवी—अविणअसइव, अलं ते मंतरक्खणकोसलं दंसिअ । [अविनयसचिव, अलं ते मन्त्ररक्षणकौशलं दर्शयित्वा ।]

विदूषकः—होदि रइसेणे, किं एदं । [भवति रतिसेने, किम् एतत् ।]

(चेटी संज्ञया तर्जयति[4] ।)

देवी—अय्य कच्चाअण, किं साहु णिव्वत्तिओ मम पिअस्स अहिलसिएण जणेण समाअमो । [आर्य कात्यायन, किं साधु निर्वर्तितो मम प्रियस्य अभिलषितेन जनेन समागमः ।]

विदूषकः—(यज्ञोपवीतं स्पृष्ट्वा) अत्तहोदि, इमिणा मे बम्हसुत्तेण सवामि । ण कावि अण्णा इह दिट्ठा, ण अ संभासिदा । [अत्रभवति, अनेन मे ब्रह्मसूत्रेण शपामि । न काप्यन्येह दृष्टा, न च संभाषिता ।]

राजा—देवि, सत्यमाह कात्यायनः ।

देवी—(हस्तेन निर्दिश्य) इअं चेअ णं पअपंती सूएदि इमस्स सच्चवाइत्तणं । [इयमेव ननु पदपङ्क्तिः सूचयत्यस्य सत्यवादित्वम् ।]

(राजा विदूषकं पश्यति ।)

विदूषकः—(सस्मितम्) वअस्स, जिदं अम्हेहिं । कहं ण एसा

---

1 One would expect आत्मगतम् before जं सच्चं etc., and प्रकाशम् before अय्यउत्त etc. 2 A B सक्खी; chāyā साक्षीभवति. 3 A वद्धंतो, chāyā वर्धमानः; B वत्थंतो. 4 A तर्जयते.

अत्तहोदीए पअपती । अत्तहोदि, इमं खु पअपंतिं तुह केरअं मुणंता अम्हे तुमं इदो मग्गिअ अवेक्खंता दाणिं णिअत्त म्ह । दिट्ठिआ दिट्ठा अ एत्थ अत्तहोदी । [वयस्य, जितमस्माभिः । कथं नैषा अत्रभवत्याः पदपङ्क्तिः । अत्रभवति, इमां खलु पदपङ्क्तिं युष्मदीयां जानन्तो वयं त्वामितोऽन्विष्य अवेक्षमाणा इदानीं निवृत्ताः स्मः । दिष्ट्या दृष्टा चात्र अत्रभवती ।]

राजा—देवि, यथावृत्तं वदति वयस्यः । (आत्मगतम्) साधु वयस्य, साधु ।

चेटी—भट्टिणि, जुज्जइ । [[1]देवि, युज्यते ।]

देवी—अदिउज्जुए, ण आणासि तुमं परमत्थओ अय्यउत्तं । [अत्यृज्वि, न जानासि त्वं परमार्थत आर्यपुत्रम् ।]

राजा—

विशङ्कसे मानिनि यन्ममुं जनं कृतव्यलीकं ननु युज्यते भयम् ।
व्यलीकसंकल्पनिरुत्सुके जने करोति शङ्का मनसः परां रुजम् ॥३८॥

देवी—(आत्मगतम्) कहं मए अत्थाणे जूरंतीए धूमाविदं मणो अय्यउत्तस्स । [कथं मयाऽस्थाने कुध्यन्त्या संतापितं मन आर्यपुत्रस्य ।]

(नेपथ्ये वैतालिकौ)

विजयतां चक्रवर्ती । सुखाय मध्यंदिनसमयो भवतु देवस्य ।

प्रथमः—

अन्तस्तोयं विजयकरिणो लम्भितैः पुष्करैस्ते
पूर्वोपात्तं सलिलमधुना प्रोज्झ्य निर्णिक्तनासाः ।
व्याकोचानां मधुभिरसकृद्वासितं पङ्कजानां
गाङ्गं तोयं तुहिनशिशिरं गाहमानाः पिबन्ति ॥ ३९ ॥

---

[1] भट्टिणि is usually rendered by भट्टिनि.

द्वितीयः—

यस्मिन्नेनां जयति पृथिवीमभ्युपेत्याभिषेकं
गङ्गासिन्धू स्वयमकुरुतां पावनैः स्वैः पयोभिः ।
त्वां संप्राप्ताः स्नपयितुमिमां[1] वारमुख्याङ्गनास्त्वां[2]
सज्जस्नानोपकरणशता मज्जनागारभूमिम् ॥ ४० ॥

(सर्वे आकर्णयन्ति ।)

विदूषकः—पउत्ता मज्जणवेला । ता इदो एदु पिअवअस्सो । [प्रवृत्ता मज्जनवेला । तस्मादित एतु प्रियवयस्यः ।]

राजा—देवि, इतः । (परिक्रम्य) कथं मध्याह्नः । अद्य हि

मध्याह्नतापादवगाह्य भूयः पयांसि पद्मासववासितानि ।
आपातशैत्यादिव मन्दमन्दं मन्दाकिनीगन्धवहा वहन्ति ॥ ४१ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति श्रीभट्टारगोविन्दस्वामिसूनुना हस्तिमल्लेन विरचितायां[3] सुभद्रानाटिकायां प्रथमोऽङ्कः ।

द्वितीयोऽङ्कः[4] ।

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अम्मो तत्तहोदो पिअवअस्सस्स अणिरूविअलाहोवाओ अत्थिणो विअ बम्हणस्स अहिणिवेसो । जं दाव अजादविस्संभस्स अविण्णादणिवासस्स जदिच्छोवणदस्स वि तस्स इत्थिआरअणस्स उक्कंठेदि । सव्वहा असंतुट्ठा खु राआणो । जेण विज्जमाणस्स एव्व

---

1 Thus A B; better to read इमा(=इमाः). 2 Thus A B; better to read त्वाम्. 3 A विरचितं सुभद्रा नाम नाट (टि ?) का प्रथमोऽङ्कः, B विरचितसुद्रानाटिकायाम्. 4 A B add अथ before द्वितीयोङ्कः.

णिज्जिदसुरसुंदरीसोंदेरस्स अवरोहकामिणीजणस्स तस्सिं चेअ कण्णआ-रदणे अदिमेत्तं उत्तम्मदि तत्तभवं। अब्भुदाचरिदा अ सा कण्णआ। जाए साअरादो वि गहिरं, कुलाअलादो वि थिरं सव्वादो ओवाहिअ संचालिअं च तत्तहोदो हिअअं। सो उण जदा एव्व अत्तणो धीरा-वक्खंदणकरी दिट्ठा सा दुट्ठकण्णआ तदप्पहुदि मदाअत्तरज्जकज्जा-लोअणोवाअदाए णिज्जंतणणिव्वत्तिअदेव्वसिअणिअमो ण दाव धम्मा-सणं आरुहइ, ण[1] देइ सेवावसरं राअलोअस्स, ण बंधावेइ कलाको[2]-सलं, ण पेक्खइ पेक्खणआइ, णाणुमण्णइ विहारविणोदाइ। केवलं झाणाविट्ठो विअ णिरुद्धचित्तो, गहगहिओ विअ विवेअसुण्णहिअओ, मुच्छिदो विअ णिच्चलसव्वंगो, अंधो विअ ण किं वि पेक्खइ, बहिरो विअ ण किं वि सुणइ, मूओ विअ ण किं वि भासइ, राअ-रहस्समंतणं ति किर देवीपवेसं पि णिसेहावेइ। मज्जणवेलं पि तदो[3]-तदो त्ति गमावेइ। (निःश्वस्य) किं बहुणा भोअणवेलं पि अदिवाहंतो सोसावेइ अत्तणो बालवअस्सं एअं[4] कव्वाअणं। सअं पुण रसाअण-सेवा[5]लद्धसिद्धी विअ अभुंजंतो वि विसुमरेइ भोअणं। इअं च पदि-व्वदेव इमं चेअ बम्हणं कंठे गण्हइ बुभुक्खाघरणी। (आत्मानं प्रति) वराअ कव्वाअण, ईदं[6] ते राअमित्तदाफलं जदो तुए रहस्सभेदभीदेण अइसंधाणकुसलचेडीसआउलं देवीपासं पि भुंजिदुं ण गच्छीअदि। (विचिन्त्य) कहिं दाणि राआ भवे। (विलोक्य) एसो खु चीणपट-जवणिआवेढिअपेरंतो रअणमंडवो। एसा अ जवणिअब्भंतरवट्टिणी

---

1 A omits from ण देइ सेवावसरं upto णिरुद्धचित्तो. *2* B कलाकोसलंओ (chāyā कलाकौशलिकान्). *3* A तदातदेत्ति (chāyā in A B ततस्तत इति). *4* B omits एअं. *5* B omits सेवा. (But chāyā has °सेवना°). *6* A B इअं (chāyā इदम्).

पडीहारी जित्तरिआ। जाव पुच्छेमि। (आकाशे) होदि जित्तरिए, कहिं दाणि महाराओ। कहं एसा रअणमंडवं अंगुलीए णिद्दिसइ। ता तहिं चेअ वअस्सेण होदव्वं। जाव रअणमंडवं उवसप्पेमि। (परिक्रामति) [अहो तत्रभवतः प्रियवयस्यस्य अनिरूपितलाभोपायः अर्थिन इव ब्राह्मणस्य अभिनिवेशः। यत्तावदजातविस्रम्भस्य अविज्ञातनिवासस्य यदृच्छोपनतस्यापि तस्य स्त्रीरत्नस्य उत्कण्ठते। सर्वथा असंतुष्टाः खलु राजानः। येन विद्यमानस्यैव निर्जितसुरसुन्दरीसौन्दर्यस्य अवरोधकामिनीजनस्य तस्मिन्नेव कन्यकारत्ने अतिमात्रमुत्ताम्यति तत्रभवान्। अद्भुताचरिता च सा कन्यका। यया सागरादपि गभीरं कुलाचलादपि स्थिरं सर्वस्माद् व्यावृत्य[1] संचालितं च तत्रभवतो हृदयम्। स पुनर्यदैवात्मनो धैर्यावस्कन्दनकरी दृष्टा सा दुष्टकन्यका तदाप्रभृति मदायत्तराज्यकार्यालोचनोपायतया निर्यन्त्रणनिर्वर्तितदैवसिक[2]नियमो न तावद्धर्मासनमारोहति, न ददाति सेवावसरं राजलोकस्य, न बन्धयति कलाकौशलं, न प्रेक्षते प्रेक्षणकानि, नानुमन्यते विहारविनोदान्[3]। केवलं ध्यानाविष्ट इव निरुद्धचित्तो, ग्रहगृहीत इव विवेकशून्यहृदयो, मूर्च्छित इव निश्चलसर्वाङ्गो, अन्ध इव न किमपि प्रेक्षते, बधिर इव न किमपि शृणोति, मूक इव न किमपि भाषते, राजरहस्यमन्त्रणमिति किल देवीप्रवेशमपि निषेधयति। मज्जनवेलामपि ततस्तत इति गमयति। (निःश्वस्य) किं बहुना, भोजनवेलामपि अतिवाहयञ्छोषयत्यात्मनो बालवयस्यमेतं कात्यायनम्। स्वयं पुना रसायनसेवालब्धसिद्धिरिव अभुञ्जानोऽपि विस्मरति भोजनम्। इयं च पतिव्रतेव इममेव ब्राह्मणं कण्ठे गृह्णाति बुभुक्षागृहिणी। (आत्मानं प्रति) वराक कात्यायन, इदं ते राजमित्रताफलं, यतस्त्वया रहस्यभेदभीतेन अतिसन्धानकुशलचेटीशताकुलं देवीपार्श्वमपि भोक्तुं न गम्यते। (विचिन्त्य) कुत्र इदानीं राजा भवेत्। (विलोक्य) एष खलु चीनपटयवनिकावेष्टितपर्यन्तो रत्नमण्डपः। एषा च यवनिकाभ्यन्तरवर्तिनी प्रतीहारी जित्वरिका। यावत्पृच्छामि। (आकाशे) भवति जित्वरिके, कुत्रेदानीं महाराजः। कथमेषा रत्नमण्डपम् अङ्गुल्या निर्दिशति। तस्मात्तत्रैव वयस्येन भवितव्यम्। यावद्रत्नमण्डपमुपसर्पामि। (परिक्रामति।)]

---

1 Thus A B; the correct rendering would be अपवाह्य. *2* Meaning obscure. *3* A °दैवविहारविनोदान.

(ततः प्रविशति पर्यङ्किकायां निरसहनिषण्णः सोत्कण्ठो राजा ।)

राजा—हन्त भोः

सौन्दर्यमन्यत्र न दृष्टपूर्वमज्ञातपूर्वाणि विचेष्टितानि ।
तस्याः कथं मां गमयन्ति दूरमप्राप्तपूर्वामपरामवस्थाम् ॥ १ ॥

यतश्च मे

व्युपरतलतान्तररतेर्मधुकृत इव पारिजातमञ्जर्याम् ।
इतरत्र रतिमकुर्वच्चेतस्तस्यां समापतति ॥ २ ॥

कश्चायमसमीचीनः प्रकारः । येन

न कृतः प्रणयो न जन्म वा विदितं नैव निवासभूरपि ।
अपि[1] गाढमनोरथाकुलो विषमोपक्रम एव मन्मथः ॥ ३ ॥

अथवा न वयमिहैकान्ततोऽपराद्धाः । यतो मदनस्यापि न तत्र पक्षपातितां प्रायः पश्यामि । तथा हि

विभावनीयं विविधैर्विचेष्टितै–
र्न संवरीतुं यतते स्म न स्मरम् ।
न चाशकत्सा निभृतं निगूहितुं
मनस्तु पारिप्लवतामनीयत ॥ ४ ॥

इदं च पुनरिदानीमाक्षिपति चेतः । यदुत

सविभ्रमाकुञ्चितसव्यजानु सा
करेण यान्ती परिवर्तितत्रिका ।
अपाङ्गपर्यस्तविलोचना शनै–
रसञ्जयत्सुस्थितमेव नूपुरम् ॥ ५ ॥

---

1 Thus A B; it should be अतिगाढ°.

विदूषकः—(दृष्ट्वा) एसो खु पिअवअस्सो किं पि उम्मणायंतो जहिं कहिं पि णिच्चलणिहिददिट्ठी[1] पल्लंकतलं अलंकरेदि। जाव उवसप्पामि। (उपसृत्य) जेदु पिअवअस्सो। [एष खलु प्रियवयस्यः किमप्युन्मनायमानो यत्रकुत्रापि निश्चलनिहितदृष्टिः पर्यङ्कतलमलंकरोति। यावदुपसर्पामि। (उपसृत्य) जयतु प्रियवयस्यः।]

राजा—वयस्य, किमिदानीमेवागतोऽसि।

विदूषकः—अह इं। [अथ किम्।]

राजा—तेन हीतो निषीद।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। (उपविश्य) भो वअस्स, कहं अण्णाचित्तो विअ लक्खिज्जसि। [यद्भवानाज्ञापयति। (उपविश्य) भो वयस्य, कथमन्यचित्त इव लक्ष्यसे।]

राजा—सखे[2], किमन्यत्।

दृशौ ममान्यत्र सुदुःस्थिते कृते श्रुती च गानेऽपि पराङ्मुखीकृते।
मनोऽपि निष्ठां क्वचिदप्यनाप्नुवत् प्रसह्य दूरं प्रियया तया हृतम्॥६॥

विदूषकः—वअस्स, पाअसो ताए विज्जाहरकण्णआए लद्धविज्जासिद्धीए होदव्वं। अण्णहा कहं किर सा सरीरादो सहावदुग्गेज्झं पि आअड्ढिदुं[3] पहवदि मणं। [वयस्य, प्रायशस्तया विद्याधरकन्यकया लब्धविद्यासिद्ध्या भवितव्यम्। अन्यथा कथं किल सा शरीरात् स्वभावदुर्ग्राह्यमप्याक्रष्टुं प्रभवति मनः।]

राजा—नैतदेवम्। कुतः

संमोहनाय हृदयस्य सखे समन्ता-
दुत्सादनाय सहसैव च धीरतायाः।
आकर्षणाय च वशीकरणाय चासौ
शक्नोति नेत्रसुखया स्वयमेव कान्त्या॥ ७॥

---

1 B णिहित्त 2 B omits सखे. 3 A आलंबिदुं, B आअडिदुं.

विदूषकः—वअस्स, भवं पि णाम णिज्जिदसअलमहीवेढो काए वि इत्थिआए एवं जिदो त्ति अच्चाहिदं । [वयस्य, भवानपि नाम निर्जितसकलमहीपृष्ठः[1] कयापि स्त्रियैवं जितै[2] इति अत्याहितम् ।]

राजा—नैतावता पर्याप्तम् । कुतः

अव्याजसुन्दरेणैव वपुषा वसुधामिमाम् ।
अशेषामजयत्स्वैरं सा विद्याधरसुन्दरी ॥ ८ ॥

विदूषकः—वअस्स, एक्कवारदंसणं पि किं से तुह एवं ति कहं एत्तिअमेत्तेण वि संतोसो मअणस्स । [वयस्य, एकवारदर्शनमपि किं तस्यास्तवैवमिति कथमेतावन्मात्रेणापि संतोषो मदनस्य[3] ।]

राजा—न खलु साध्यसिद्धये भूयोऽन्याप्तिमाकाङ्क्षति साधनस्य प्रकृष्टगुणता । तथा च

तया प्रहर्तुं प्रसभं मनो मे स्मरस्य भूरिक्षणदर्शनं च[4] ।
एकत्र वस्तुन्यसकृत्प्रहारानपेक्षते जातु न वज्रधारा ॥ ९ ॥

(विचिन्त्य) वयस्य, तद्दर्शनरमणीये वेदीवन एवात्मा विनोदयितव्यः ।

विदूषकः—जं वअस्सस्स रोअदि । (उत्थाय प्रकोष्ठं ददाति) [यद् वयस्यस्य रोचते ।]

(राजा अवलम्ब्योत्तिष्ठति ।)

विदूषकः—इदो इदो पिअवअस्सो । [इत इतः प्रियवयस्यः ।]

(परिक्रामतः ।)

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) वअस्स, एसा खु इदो गंगा, इदो अ एदं वेदिवणं । [वयस्य, एषा खल्वितो गङ्गा, इतश्चैतद्वेदीवनम् ।]

राजा—(निर्वर्ण्य ।)

---

1 A B °महीवेढ'; वेढ should be rendered by पीठ. 2 A B निर्जितः. 3 A मदनस्य. 4 Sense obscure.

आवाति गङ्गापवनो विधुन्वन्नितो विनिद्राणि सरोरुहाणि ।
इतश्च मन्दाररजो विकर्षन्नावाति वेदीवनमातरिश्वा ॥ १० ॥

विदूषकः—वअस्स, एसो खु सो मंदारतरुसंडो, जहिं तुम्हाणं परोप्परदंसणं आसि । [वयस्य, एष खलु स मन्दारतरुषण्डो यत्र युवयोः परस्परदर्शनमासीत् ।]

राजा—(सौत्सुक्यं निर्वर्ण्य)

अतर्कितोपस्थितमत्र मां पुरो विलोक्य वित्रस्तमृगीविलोचना ।
अपाहरत् तत्क्षणमर्धमीलिते दृशौ सलज्जं च ससाध्वसं च सा ॥११॥

(अन्यतो विलोक्य निर्वर्ण्य च)

उत्क्षिप्य सत्रपमिहापि कराङ्गुलिभ्यां वामेतरस्तनमुखच्युतमुत्तरीयम् ।
हारावलीमुपरि तस्य निपातयन्ती तत्संगसुस्थितमकल्पयदुत्पलाक्षी॥ १२

विदूषकः—वअस्स, इमस्स एव्व तुह पिआदंसणसंकेदघरस्स मंदाररुक्खस्स तले फंसाणुमेअमंदारकुसुमकेसरोवहाररमणिज्जे रअद-सिलाअले उवविसदु भवं । [वयस्य, अस्यैव तव प्रियादर्शनसंकेतगृहस्य मन्दारवृक्षस्य तले स्पर्शानुमेयमन्दारकुसुमकेसरोपहाररमणीये रजतशिलातल उपविशतु भवान् ।]

राजा—यदाह वयस्यः । (उपविश्य) वयस्य, मा स्म त्वमुपविश ।

विदूषकः—किं ति । [किमिति ।]

राजा—प्रियादर्शनोत्कण्ठादुर्ललितं चेतस्तत्प्रतिच्छन्देन विनोद-यिष्यामि । तदिदानीमानीयतां सोपकरणं चित्रफलकम् ।

विदूषकः—जं वअस्सो आणवेदि । (निष्क्रम्य, प्रविश्योपसृत्य च) एअं सोवअरणं चित्तफलअं । (उपनीयोपविशति ।) [यद्वयस्य आज्ञा-पयति । (निष्क्रम्य, प्रविश्योपसृत्य च) एतत्सोपकरणं चित्रफलकम् । (उप-नीयोपविशति ।)]

राजा—(आदाय, ध्यात्वा मोहसंस्तम्भमभिनीय)

मुह्यति हृदयमकाण्डे ध्यायते[1] एव प्रियां ममालिखिताम् ।
अध्याते चालेख्ये दुःशकमालेखनं नाम ॥ १३ ॥

तत्किमत्र कर्तव्यम् । भवतु । धैर्यसंस्तंभितात्मा कथंचिदालिखामि । (पुनर्ध्यात्वा चित्रफलकं विलोक्य, सविस्मयम्)

संस्मरणात्तन्मयतां गतेन चित्तेन चित्रफलकमिदम् ।
प्रतिभाति पश्यतो मे तद्रूपमिहालिखितमेव ॥ १४ ॥

तत्किं करोमि । भवतु । अन्तरान्तरा कथंचिदन्तःकरणमाक्षिप्य शनैरालिखामि । (आलिख्य सानुरागं निर्दिश्य) वयस्य, पश्य पश्य

इयं सा दीर्घाक्षी परिणतशरच्चन्द्रवदना
नतभ्रूर्बिम्बोष्ठी स्तननमितमध्या कृशतनुः ।
सुनाभी रम्भोरूर्भुजयुगपरिष्वङ्ग्यजघना
परं या मामित्थं व्यथयति च नाश्वासयति च ॥ १५ ॥

विदूषकः—(विलोक्य) अहो दंसणिज्जदा आलेक्खस्स । अहं पुण समत्थेमि सयं एव्व इहागद त्ति । [अहो दर्शनीयता आलेख्यस्य । अहं पुनः समर्थये स्वयमेवेहागतेति ।]

राजा—(स्मृत्वा) कृता च तत्सख्या पुनरागमनप्रस्तावना । अपि नाम सा[2] प्रत्यागच्छेत् ।

(ततः प्रविशति सुभद्रा मन्दारिका च ।)

मन्दारिका—पिअसहि, तुमं दाणिं अक्खमं मोत्तूण गओ सव्वो वि सहीअणो जलकेलीदोहलादो मंदाइणीतीरपेरंतं । ता जाव सहीओ आअमिस्संति ताव इदो एव्व हरिचंदणलआघरए उवविसम्ह ।

---

1 A B ध्यायत एव. Reading adopted in the text is conjectural.
2 B संप्रत्यागच्छेत्.

[प्रियसखि, त्वामिदानीमक्षमां मुक्त्वा गतः सर्वोऽपि सखीजनो जलकेली-दोहदान्मन्दाकिनीतीरपर्यन्तम्। तद्यावत्सख्य आगमिष्यन्ति तावदित एव हरि-चन्दनलतागृह उपविशावः ।]

सुभद्रा—सहि, तह । [सखि, तथा ।]

(उपविशतः ।)

सुभद्रा—हला, किं दाणिं सो बालासोओ मउलुब्भेदणिवडि-अराओ भविस्सदि । [सखि, किमिदानीं स बालाशोको मुकुलोद्भेदनिपतित-रागो भविष्यति ।]

मन्दारिका—(आत्मगतम्) जाव इमं लज्जाविणिगूहिज्जंतवम्महं वंकभासिदेहि ओवाहिअ हिअअं ते णिवेदेमि[1] । (प्रकाशम्) पिअसहि, सव्वहा तुह दाणि दंसइस्सेदि सो राअं । जेण उव्वाहसंपत्ती अइ-रादो भविस्सदि । [यावदिमां लज्जाविनिगुह्यमानमन्मथां वक्रभाषितैरप-वाह्य हृदयं ते निवेदयामि । (प्रकाशम्) प्रियसखि, सर्वथा तवेदानीं दर्श-यिष्यति स रागम् । येन उद्वाहसंपत्तिरचिराद्भविष्यति ।]

सुभद्रा—(साशङ्कमात्मगतम्) अत्थंतरगब्भं विअ इमाए वअणं । होदु । अजाणंती विअ कहइस्सं । (प्रकाशम्) हला, किं तुह केरआ वि सा मालईलआ मउलुब्भेअपंडुरिआ भविस्सदि । जदो उव्वाह-विहीए अविलंबं कहेसि[2] । [अर्थान्तरगर्भमिवास्या वचनम् । भवतु । अजानतीव कथयिष्यामि । (प्रकाशम्) सखि, किं युष्मदीयापि सा मालतीलता मुकुलोद्भेदपाण्डुरिता भविष्यति । यत उद्वाहविधेरविलम्बं कथयसि ।]

मन्दारिका—मम केरआ वि पच्चग्गदंसिअपंडिमरमणिज्जा अपुव्वसमागमविउणसोहा संफुल्लइ एतस्स कंधे अइरादो लगदि एव्व । [अस्मदीयापि प्रत्यग्रदर्शितपाण्डिमरमणीया अपूर्वसमागमद्विगुणशोभा संफु-ल्लति[3] एतस्य स्कन्धेऽचिराल्लगत्येव ।]

---

1 Thus A B, obscure; better हिअअं से विणोदेमि । (हृदयमस्या विनोद-यामि). 2 A कहेसेति; B कहेहि. 3 A संघलइ, ohāyā संघलति.

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अहो वक्कभासिदे वेअड्डी । (प्रकाशम्) हला, केइ दूरे सो बालासोओ । जइ पच्चासण्णो हवे सहीअणं अणपेक्खिअ तं ओसप्पम्ह । [अहो वक्रभाषिते वैदग्ध्यम् । (प्रकाशम्) सखि, कियति दूरे स बालाशोकः । यदि प्रत्यासन्नो भवेत् सखीजनमनपेक्ष्य तमुपसर्पावः ।]

मन्दारिका—इदो पच्चासण्णो एव्व सो तुह लोअणाइ सुहइस्सदि जहिं तुए गरुओ दंसिदो अणुराओ । [इतः प्रत्यासन्न एव स तव लोचने सुखयिष्यति, यत्र त्वया गुरुर्दर्शितोऽनुरागः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अहो पत्थुदणिव्वाहो । (प्रकाशम्) किं एसो एव्व सो मंदारतरुसंडो दीसइ । [अहो प्रस्तुतनिर्वाहः । (प्रकाशम्) किम् एष एव स मन्दारतरुषण्डो दृश्यते ।]

मन्दारिका—(आत्मगतम्) सो त्ति कहंतीए इमाए उब्भिण्णं विअ रहस्सं । जाव अहं पि उब्भेदइस्सं । (प्रकाशम्) सो त्ति को । [स इति कथयन्त्यानयोद्भिन्नमिव रहस्यम् । यावदहमप्युद्भेदयिष्यामि । (प्रकाशम्) स इति कः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) कहं मए चेअ उब्भिण्णं । होदु । एव्वं । (प्रकाशम्) जहिं सहीजणो मग्गिदो । [कथं मयैव उद्भिन्नम् । भवतु । एवम् । (प्रकाशम्) यत्र सखीजनो मार्गितः ।]

मन्दारिका—दिट्ठो खु सो । [दृष्टः खलु सः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) किं एत्थ उत्तरं । होदु । एव्वं । (प्रकाशम्) तहिं सो सहीअणो दिट्ठो । [किमत्रोत्तरम् । भवतु । एवम् । (प्रकाशम्) तत्र स सखीजनो दृष्टः ।]

मन्दारिका—ण केवलं सो जणो दिट्ठो संभासिदो अ परिप्फुडाणुराअं । [न केवलं स जनो दृष्टः संभाषितश्च परिस्फुटानुरागम् ।]

सुभद्रा—(सासूयम्) असंबद्धभासिणि, किं भणसि। [असंबद्धभाषिणि, किं भणसि।]

मन्दारिका—मुद्धे, किं दाणिं मे वाआमेत्तं विणिगूहिअ। अत्तणो दाव एक्कपदसंजाअमिलाअंतमुणालसोहाइ किसपंडुराइ अंगाइ तह तह सुणिद्धसव्वंगाइ उम्मेसमुत्ताइ पच्छादेहि। [मुग्धे, किमिदानीं मे वाङ्मात्रं विनिगुह्य। आत्मनस्तावदेकपदसंजातम्लायन्मृणालशोभानि कृशपाण्डुराणि अङ्गानि तथा तथा सुस्निग्धसर्वाङ्गाणि उन्मेषमुक्तानि प्रच्छादय।]

(सुभद्रा सवैलक्ष्यं तूष्णीमास्ते।)

मन्दारिका—पिअसहि, अलं दाणिं कण्णआजणसुलहाए लज्जाए। जइ दाव मं तुइत्तो अण्णं मुणेसि तदा खु लज्जिदव्वं। समसुहदुक्खे उण सरीरमेत्तभिण्णे सहीअणे भावणिगूहणं देइ खेदं चित्तस्स, वअणिज्जदं सिणेहस्स। अहव पिअसहि, तुह एव्व असाहारणकण्णआसुलहाए महाभाअदाए समत्थिदं खु मए। जह जहिं दाव इमाए जाअदि उक्कंठा असाहारणं खु सो पुरिसरअणं अइरादो इमाए पई भविस्सदि त्ति। ता पिअसहि, उदारचरिअं विस्संभमहुरं णिहिलमहीवेढरक्खणक्खमं च तं खत्तिअपुंगवं समत्थेहि। ण य सो अविण्णादभावो त्ति चिंतिदव्वं। जदो सिणिद्धविअसंतलोअणेहिं पिअंतेहिं विअ पेक्खिदेहिं, भावंतरगब्भेहिं पिअगहिरमहुरेहिं संभासिदेहिं परिप्फुडं तस्स वम्महपरवसं हिअअं खु। अह अ जह तुमं तद्दंसणादो पहुदि उम्मणाअंती ण दाव रमणिज्जेहिं रमेसि, ण णिसाए वि णिद्दासुहं अणुहवेसि, सअणिज्जादो वि सुण्णसुण्णं उट्ठेसि, ण कहिं वि मुहुत्तं सुत्थिदा होसि, पुणो पुणो वालासोअउत्तंतच्छलेण उम्मत्ता

---

1 A B अंगताइ; chāyā रतंगतानि. *2* Thus A B, obscure. B chāyā सुस्निग्धानि वर्णानि.

चेअ तद्दंसणभूमिं सुमरेसि, अविण्णादपुव्वे अ मणोरहस्स संचार-विसमे मअणगोअरे पडिआसि, तह् सो वि गाढुक्कंठो ण तुज्झ दंसणभूमिं उज्झिअ अण्णदो रमेदि । [प्रियसखि, अलमिदानीं कन्यकाजन-सुलभया लज्जया । यदि तावन्मां त्वत्तोऽन्यां मन्यसे तदा खलु लज्जितव्यम् । समसुखदुःखे पुनः शरीरमात्रभिन्ने सखीजने भावनिगूहनं ददाति खेदं चित्तस्य, वचनीयतां स्नेहस्य । अथवा प्रियसखि, तवैव असाधारणकन्यकासुलभया महाभागतया समर्थितं खलु मया । यथा यस्मिंस्तावदस्या जायत उत्कण्ठा, असाधारणं खलु स पुरुषरत्नमचिरादस्याः पतिर्भविष्यतीति । तत् प्रियसखि, उदार-चरितं विस्रम्भमधुरं निखिलमहीपृष्ठरक्षणक्षमं च तं क्षत्रियपुंगवं समर्थय । न च सोऽविज्ञातभाव इति चिन्तयितव्यम् । यतः स्निग्धविकसल्लोचनैः पिबद्भिरिव प्रेक्षितैः भावान्तरगर्भैः प्रियगभीरमधुरैः संभाषितैः परिस्फुटं तस्य मन्मथ-परवशं हृदयं खलु । अथ च यथा त्वं तद्दर्शनात्प्रभृति उन्मनायमाना न तावद्रमणार्थे रमसे, न निशायामपि निद्रासुखमनुभवसि, शयनीयादपि शून्य-शून्यमुत्तिष्ठसि, न कुत्रापि मुहूर्तं सुस्थिता भवसि, पुनः पुनर्बालाशोकवृत्तान्त-च्छलेनोन्मत्तेव तद्दर्शनभूमिं स्मरसि, अविज्ञातपूर्वे च मनोरथस्य संचारविषमे मदनगोचरे पतितासि, तथा सोऽपि गाढोत्कण्ठो न तव दर्शनभूमिमुज्झित्वा अन्यतो रमते ।]

सुभद्रा—(सलज्जं, बाष्पं संस्तभ्य) पिअसहि, किं अदोवरं कहइस्सं । तुमं खु मे सही अ दिट्ठी अ बंधू अ गुरू अ हिअअं च जीविअसरणं च । ता कस्स णाम अण्णस्स जणस्स एअं मे अस्सत्थदं कहेमि । पिअसहि, जदं एव्व अहं पआणुसारिणा एत्थ वणे चरंतेण तेण जणेण हिअअम्मि दिढं संलिद्धा तदो पहुदि (निःश्वस्य सलज्जम्) अहव तुमं चेअ जाणासि । [प्रियसखि, किमतःपरं कथयिष्यामि । त्वं खलु मे सखी च दृष्टिश्च बन्धुश्च गुरुश्च हृदयं च जीवितशरणं च । तस्मात् कस्य नामान्यस्य जनस्य एतां मेऽस्वस्थतां कथयामि । प्रियसखि, यदैवाहं पदानुसारिणाऽत्र वने चरता तेन जनेन हृदये दृढं संश्लिष्टा ततः प्रभृति (निःश्वस्य सलज्जम्) अथवा त्वमेव जानासि ।]

मन्दारिका—जाणामि एव्व । [जानाम्येव ।]

सुभद्रा—(सोत्कण्ठं, मन्दारतरुषण्डे दत्तदृष्टिः, आत्मगतम्) एसो खु सो मंदारतरुसंडो । जहिं सो लोअणाणंददाइजणो दिट्ठो । [एष खलु स मन्दारतरुषण्डो यत्र स लोचनानन्ददायिजनो दृष्टः ।]

मन्दारिका—(निरूप्यात्मगतम्) कहं एसा णिद्धाए दिट्ठीए तं चेअ मंदारतरुसंडं णिज्झाअदि । होदु । एव्वं (प्रकाशम्) पिअसहि, ण [1]हि दाव तस्सिं चेअ पिअदंसणरमणिज्जे मंदारतरुसंडे तुह अत्ता विणोदिदव्वो । [कथमेषा स्निग्धया दृष्ट्या तमेव मन्दारतरुषण्डं निध्यायति । भवतु । एवम् । (प्रकाशम्) प्रियसखि, नहि तावत्तस्मिन्नेव प्रियदर्शनरमणीये मन्दारतरुषण्डे तव आत्मा विनोदयितव्यः ।]

सुभद्रा—जह पिअसहीए रोअदि । [यथा प्रियसख्या रोचते ।]

(उत्थाय परिक्रामतः ।)

मन्दारिका—(कर्णं दत्त्वा) पिअसहि, पुरिसालावो विअ तहिं सुणिज्जइ । [प्रियसखि, पुरुषालाप इव तत्र श्रूयते ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अवि णाम सो भवे । [अपि नाम स भवेत् ।]

मन्दारिका—जाव इमिणा मंदाररुक्खेणंतरिदा पेक्खेमि । (तथा दृष्ट्वा सहर्षम्) सहि, दिट्ठिआ वड्ढसि । एसो खु तुह हिअअ-वल्लहो । [यावदनेन मन्दारवृक्षेणान्तरिता पश्यामि । (तथा दृष्ट्वा सहर्षम्) सखि, दिष्ट्या वर्धसे । एष खलु तव हृदयवल्लभः ।]

सुभद्रा—(सहर्षं विलोक्य, आत्मगतम्) हिअअ, एण्हिं समस्ससिहि । एसो हु तुह मणोरहभूमी जणो । [हृदय, इदानीं समाश्वसिहि । एष खलु तव मनोरथभूमिर्जनः ।]

---

1 Thus A B, obscure. Better एहि.

(राजा 'इयं सा दीर्घाक्षी' इति पूर्वोक्तं (३।१५) पठति ।)

मन्दारिका—सहि, दक्ख दाव । सहि, एस खु तुह पडिच्छंदेण अत्ताणं विणोदेदि । [सखि, पश्य तावत् । सखि, एष खलु तव प्रतिच्छन्देनात्मानं विनोदयति ।]

सुभद्रा—कुदो दे णिच्चओ । [कुतस्ते निश्चयः ।]

मन्दारिका—हं अविस्सासो । जो दाव तुहम्मि दंसिदाणुराओ सो उण मुहुत्तअं पि किं सुत्थिदो होदि । जइ उण ण मं पत्तिआअसि, उवसप्पिअ दक्ख तुव पडिच्छंदअं । [हन्ताविश्वासः । यस्तावत् त्वयि दर्शितानुरागः स पुनर्मुहूर्तमपि किं सुस्थितो भवति । यदि पुनर्न मां प्रत्याययसि, उपसृप्य पश्य तव प्रतिच्छन्दम्]

सुभद्रा—(सासूयम्) दुक्करभासिणि कुदो मं लहूकरेसि । [दुष्करभाषिणि, कुतो मां लघूकरोषि ।]

मन्दारिका—मा दाव असूइअ । एसा खु पलंबपच्छाअसाहासअवित्थिण्णा मंदारवणराई । जाव इमाए अंतरिदाओ पिट्ठदो ओसप्पिअ दक्खम्ह । [मा तावदसूययित्वा । एषा खलु प्रलम्बप्रच्छायशाखाशतविस्तीर्णा मन्दारवनराजिः । यावदनया अन्तरिते पृष्ठत उपसृप्य पश्यावः ।]

सुभद्रा—सहि, जा अहं इह एव्व इमं जणं दक्खंती ठादुं ण तीरेमि, सा कहं पासं ओसप्पिस्सं । [सखि, या अहमिहैव इमं जनं पश्यन्ती स्थातुं न शक्नोमि, सा कथं पार्श्वमुपसर्पिष्यामि ।]

मन्दारिका—तह वि ओलंबिअधीरा कहं पि आअच्छ । [तथाप्यवलम्बितधैर्या कथमप्यागच्छ ।]

सुभद्रा—पहवदि णिअस्स सहीअणस्स पिअसही । [प्रभवति निजस्य सखीजनस्य प्रियसखी ।]

(उपसृत्य पश्यतः ।)

मन्दारिका—पिअसहि, किं दाणिं तुस्ससि । एसा खु तुमं इमस्स ऊसंगे दीससि । [प्रियसखि, किमिदानीं तुष्यसि । एषा खलु त्वमस्योत्सङ्गे दृश्यसे ।]

सुभद्रा—हला, कदाइ कलाकोसलविणोदो भवे । जं खणमेत्तदिट्ठो वि जणो ण एवं आलिहिदुं तीरइ । [सखि, कदाचित् कलाकौशलविनोदो भवेत् । यत् क्षणमात्रदृष्टोऽपि जनो नैवमालिखितुं शक्यते ।]

मन्दारिका—हे असंतोसे । [हे असन्तोषे ।]

राजा—

पश्यतो मे प्रतिच्छन्दं स्वच्छन्दं हरिणीदृशः ।
साक्षात् तत्पार्श्ववर्तीव परं चेतः प्रसीदति ॥ १६ ॥

(मन्दारिका सुभद्रां पश्यति ।)

सुभद्रा—(सलज्जं सहर्षं च मुखं नमयित्वा, आत्मगतम्) असंतोससीलहिअअ, किं दाणिं पि ण तुस्ससि । (प्रकाशम्) पिअसहि, मह पडिच्छंदं पि इमस्स ऊसंगवट्टिणं पेक्खंती लज्जेमि एत्थ ठादुं । [असन्तोषशीलहृदय, किमिदानीमपि न तुष्यसि । (प्रकाशम्) प्रियसखि, मम प्रतिच्छन्दमप्यस्योत्सङ्गवर्तिनं पश्यन्ती लज्जेऽत्र स्थातुम् ।]

मन्दारिका—अदिलज्जालुए, का एसा अदिट्ठपुव्वा लज्जा । [अतिलज्जालुके, का एषा अदृष्टपूर्वा लज्जा ।]

विदूषकः—(निर्वर्ण्य) वअस्स, एसा वेलादी–(इत्यर्धोक्ते) [वयस्य, एषा वेला द–(इत्यर्धोक्ते)]

राजा—(ससंभ्रमम्) क्व देवी वैलाती ।

विदूषकः—वअस्स, मा भाआहि । एवं खु अहं वत्तुकामो । एसा वेला दीसइ आलेक्खविण्णाणस्सेत्ति । [वयस्य, मा भैषीः । एवं खलु अहं वक्तुकामः । एषा वेला दृश्यते आलेख्यविज्ञानस्येति ।]

राजा—तेन हि क्षेमेण वर्तामहे ।

सुभद्रा—(सेर्ष्यम्) कहं अण्णाए काए वि इमिणा भोइदव्वं[1] । हला, एहि दाव । किं एत्थ ठीअदि । [कथमन्यस्याः कस्या अपि अनेन भेतव्यम् । सखि, एहि तावत् । किमत्र स्थीयते ।]

मन्दारिका—हला, जस्स हिअअं तुए एव्वं हारिदं सो दाव अण्णाहिदभावो वि दक्खिण्णं रक्खदि त्ति जाणिहि । जदो ईरिसा महापुरिसा ण कदाइ वि दक्खिण्णं उज्झंति । [सखि, यस्य हृदयं त्वयैवं हृतं स तावदन्याहितभावोऽपि दाक्षिण्यं रक्षतीति जानीहि । यत ईदृशा महापुरुषा न कदाचिदपि दाक्षिण्यमुज्झन्ति ।]

सुभद्रा—अलं ते दुम्मंतेण । सा एव्व आअदुअ तं पेक्खदु । [अलं ते दुर्मन्त्रेण । सैवागत्य तं पश्यतु ।]

(परावृत्य गच्छति ।)

मन्दारिका—(उपसृत्य हस्ते गृहीत्वा ।) अदिकोवणे, पच्चक्खदो इमस्स तुवम्मि गरुअं उक्कंठं दक्खंती कहं कुविदा गच्छसि । [अतिकोपने, प्रत्यक्षतोऽस्य त्वयि गुर्वीमुत्कण्ठां पश्यन्ती कथं कुपिता गच्छसि ।]

(बलान्निवर्तयति ।)

(ततः प्रविशति देवी चेटी च ।)

चेटी—भट्टिणि, कहिअं मे पिअसहीए जित्तरिआए दाणिं खु महाराओ अय्यकच्चाअणेण सह किं पि मंतअंतो वेदीवणं गदो त्ति । [भट्टिनि, कथितं मे प्रियसख्या जित्वरिकया इदानीं खलु महाराज आर्यकात्यायनेन सह किमपि मन्त्रयमाणो वेदीवनं गत इति ।]

देवी—ण दाव कच्चाअणेण सह अय्यउत्तो अविणआदो अण्णं मंतेदि । एहि, तदो गदुअ जाणीमो । [न तावत् कात्यायनेन सह आर्यपुत्रोऽविनयादन्यन्मन्त्रयते । एहि, ततो गत्वा जानीवः ।]

---

1 B भइदव्वं, chāyā A B भावितव्यम् (=भवितव्यम्).

चेटी—जं भट्टिणी आणवेदि । इदो इदो भट्टिणी । [यद् भट्टिनी आज्ञापयति । इत इतो भट्टिनी ।]

(परिक्रामतः ।)

चेटी—पविट्ठ म्ह वेदीवणं । एसो खु अग्गदो मंदारतरुसंडो । (शाखान्तरेण विलोक्य दृष्ट्वा च) भट्टिणि, सो खु भट्टा अय्यकच्चाअणेण सह उवविट्ठो चिट्ठइ । [प्रविष्टे स्वो वेदीवनम् । एष खलु अग्रतो मन्दारतरुषण्डः । (शाखान्तरेण विलोक्य दृष्ट्वा च) भट्टिनि, स खलु भर्ता आर्यकात्यायनेन सहोपविष्टस्तिष्ठति ।]

देवी—इमिणा मंदाररुक्खेणंतरिदा पेक्खम्ह । (तथा दृष्ट्वा) हला, किं एस हत्थे किं पि कादूण णिज्झाअदि । [अनेन मन्दारवृक्षेणान्तरिते पश्यावः । (तथा दृष्ट्वा) सखि, किमेष हस्ते किमपि कृत्वा निध्यायति ।]

चेटी—चित्तफलअं विअ [चित्रफलकमिव ।]

देवी—(सशङ्कम्) किं एदं । [किमेतत् ।]

विदूषकः—वअस्स, किं दाणिं णिव्वुदं ते हिअअं । [वयस्य, किमिदानीं निर्वृतं ते हृदयम् ।]

राजा—मैवम् । कुतः

ददाति तत्प्रतिच्छन्दः प्रमोदं नेत्रयोः परम् ।
हृदयस्य तु तामेव स्मरतः परमां रुजम् ॥ १७ ॥

मन्दारिका—सहि, सुदं । [सखि, श्रुतम् ।]

देवी—हला, सुदं । ईरिसो खु इमस्स अविणओ । तुमं पुण जाणंती वि मं विमोहेसि 'ईरिसो तारिसो' त्ति । [सखि, श्रुतम् । ईदृशः खल्वस्याविनयः । त्वं पुनर्जानत्यपि मां मोहयसि । 'ईदृशस्तादृश' इति ।]

---

1 A किं दाणि वुद ते हिअअं (chāyā: किमिदानीं नन्दते हृदयम्); B किं दाणिं णंदद्धि हिअअं (chāyā: किमिदानीं नन्दते हृदयम्). Reading adopted in the text is conjectural.

राजा—सखे, पश्य ।

अस्याः स्तने निपतितः प्रतिभाति तीव्रा-
मन्तर्व्यथां पिशुनयन्मम बाष्पबिन्दुः ।
दृष्ट्वा दशां सकरुणं मम शोचनीया-
मस्या मुखादिव शुचा गलितोऽश्रुबिन्दुः ॥ १८ ॥

मन्दारिका—णिट्ठुरे, कहं ण दाणिं पि संभावेसि । [निष्ठुरे, कथं नेदानीमपि संभावयसि ।]

देवी—ण सक्क[1] म्हि अदोवरं सोदुं दट्ठुं च । [न शक्तास्मि अतःपरं श्रोतुं द्रष्टुं च ।]

(चेट्या सह सरोषमुपसर्पति ।)

(राजा दृष्ट्वा ससंभ्रमं विदूषकस्य हस्ते चित्रफलकं विसृज्योत्तिष्ठति । विदूषकः ससंभ्रममुत्तरीयेण चित्रफलकं प्रच्छाद्योत्तिष्ठति ।)

सुभद्रा—(दृष्ट्वा सेर्ष्यम्) एसा खु सा जाए इमिणा भाइदव्वं । किं दाणिं पि इह ट्ठीअदि । [एषा खलु सा यस्या अनेन भेतव्यम् । किमिदानीमपि इह स्थीयते ।]

मन्दारिका—(आत्मगतम्) ण किं पि एत्थ भणिदव्वं दक्खामि । [न किमप्यत्र भणितव्यं पश्यामि ।]

सुभद्रा—(ससंरम्भं गच्छति ।) हला, एहि हरिचंदणलआघरअं । [सखि, एहि हरिचन्दनलतागृहम् ।]

(उभे परिक्रम्य निष्क्रान्ते ।)

देवी—(सकोपम्) अय्यउत्त, किं दाणिं अंतरे उट्ठिअदि । [आर्यपुत्र, किमिदानीमन्तरे उत्थीयते ।]

राजा—न जाने किमुक्तं भवत्या ।

---

1 A B सक्कम्ह (chāyā शक्तास्मि). *2* A B भावितव्यम् (=भवितव्यम्).

देवी—ण जाणासि दाणिं तुमं इमस्स जणस्स बअणं । [न जानासीदानीं त्वमस्य जनस्य वचनम् ।]

राजा—अपरिस्फुटभाषिणि, कुतो मां कम्पयसि ।

देवी—अज्ज खु मे भासिअं। अहं चेअ तुह अपरिप्फुडा संवुत्ता । [अद्य खलु मे भाषितम्। अहमेव तव अपरिस्फुटा संवृत्ता ।]

राजा—अयि सरले, एष निर्लक्ष्यः[2] संरम्भः ।

स्फुरिताधरपल्लवं मुखं सुमुखि स्विन्नमुदश्रुलोचनम् ।
विषमोच्छ्वसितं रुषा तव स्मरयत्यद्य रतोत्सवश्रमम् ॥ १९ ॥

देवी—अलं दाणिं इमेहिं कवडचाडूहिं । (चेटीं प्रति) हला, इमस्स बडुअस्स उत्तरीअगदं दंसेहि । [अलमिदानीमेभिः कपटचाटुभिः । (चेटीं प्रति) सखि, अस्य बटोरुत्तरीयगतं दर्शय ।]

चेटी—अरे किं एअं । [अरे किमेतत् ।] (गृह्णाति ।)

विदूषकः—अत्तहोदि, एअं खु वाअणाफलअं जहिं मए संझोवासणमंतो अहिलिहिअ पढिज्जइ । [अत्रभवति, एतत् खलु वाचनाफलकं यस्मिन्मया संध्योपासनमन्त्रोऽभिलिख्य पठ्यते ।]

देवी—णं सच्चवादी खु सि । [ननु सत्यवादी खल्वसि ।]

(चेटी बलाद्गृहीत्वा दर्शयति । राजा स्तिमितस्तिष्ठति ।)

देवी—ईरिसो खु इमस्स मंतो । [ईदृशः खल्वस्य मन्त्रः ।]

विदूषकः—(आत्मगतम्) किं एत्थ सरणं । होदु । एवं । (प्रकाशम्) अत्तहोदि, मए खु आचमणत्थं गंगातीरं गदेण कहिं पि अणुवहृदे लआगुम्मब्भंतरे एअं सुणिहिदं दिट्ठं । अजाणंतेण मए उवणीअ किं एअं ति वअस्सस्स दंसिदं । वअस्सेण उण एसा कावि

[1] Thus A B, obscure. [2] Thus A B. It should be निर्लक्ष्यः.

देवदा साहत्थं केण वि विज्जाहरेण आलिहिद त्ति भणिअं । संवरणं पुण कदाइ अण्णहा विसंकेज्ज देवि त्ति कदं । [किमत्र शरणम् । भवतु । एवम् । (प्रकाशम्) अत्रभवति, मया खल्वाचमनार्थं गङ्गातीरं गतेन कस्मिन्नप्यनुपहते लतागुल्माभ्यन्तरे एतत्सुनिहितं दृष्टम् । अजानता मयोपनीय किमेतदिति वयस्यस्य दर्शितम् । वयस्येन पुनरेषा काऽपि देवता श्लाघार्थं केनापि विद्याधरेणालिखितेति भणितम् । संवरणं पुनः कदाचिदन्यथा विशङ्केत देवीति कृतम् ।]

राजा—देवि, एवमेतत् । (आत्मगतम्) वयस्य, साधु साधु ।

देवी—(अङ्गुल्या चित्रफलकं निर्दिश्य) तेण हि एसो वि ण अय्यउत्तस्स बाहबिंदू । [तेन ह्येषोऽपि नार्यपुत्रस्य बाष्पबिन्दुः ।]

विदूषकः—अत्तहोदि, किं ति असच्चं भणिज्जइ । एअं दाव दक्खंतस्स एव्व वअस्सस्स जदिच्छागअपवणविइण्णमंदारपराअदूसिआदो पडिदो एस लोअणादो । [अत्रभवति, किमित्यसत्यं भण्यते । एतत्तावत्पश्यत एव वयस्यस्य यदृच्छागतपवनविकीर्ण[1]मन्दारपरागदूषितात् पतित एष लोचनात् ।]

राजा—देवि, तथैव तत् । (आत्मगतम्) भोः सखे, साध्वी प्रतिभा ।

देवी—(विदूषकं प्रति) अय्य, जाणासि सुसंगदं भासिदुं । (राजानं प्रति) अय्यउत्त, जा तुह चित्तगदा पिआ सा तुए अहिलिहिअ चित्तगदा दक्खिअदि त्ति ण किं पि तुए एत्थ अदिक्कंतं । मए उण जहत्थं अजाणंतीए अय्यउत्तो चिरं अणुवत्तिदो त्ति लज्जेदि हिअअं । [आर्य, जानासि सुसंगतं भाषितुम् । (राजानं प्रति) आर्यपुत्र, या तव चित्तगता प्रिया सा त्वया अभिलिख्य चित्रगता दृश्यते इति न किमपि त्वया अत्र अतिक्रान्तम् । मया पुनर्यथार्थमजानत्या आर्यपुत्रश्चिरमनुवर्तित इति लज्जते हृदयम् ।]

---

1 A B °वितीर्ण°.

राजा—

यथा किलावैषि तथा तु नैतदियान् पुनर्देवि ममापराधः ।
यस्ते व्यलीकप्रतिभासयोग्ये कृत्ये ममाभूदधुना प्रवृत्तिः ॥ २० ॥

देवी—अय्यउत्त, सुदं च दिट्ठं च मए सव्वं । चिट्ठ दाणिं सेरं । एसा अहं गच्छेमि[1] । [आर्यपुत्र, श्रुतं च दृष्टं च मया सर्वम् । तिष्ठेदानीं स्वैरम् । एषा अहं गच्छामि ।] (विदूषकं निर्दिश्य) हला, एसो खु इमस्स अविणअस्स एक्कसइवो । जाव एअं उत्तरीएण पिट्ठदो बाहुजुअलं बंधिअ आअड्ढेहि । [सखि, एष खल्वस्याविनयस्य एकसचिवः । यावदेतमुत्तरीयेण पृष्ठतो बाहुयुगलं बद्ध्वा आकर्ष ।]

(चेटी तथा बद्ध्वाकर्षति ।)

विदूषकः—(आत्मगतम्) दिट्ठिआ ण गले बद्धो म्हि । [दिष्ट्या न गले बद्धोऽस्मि ।]

देवी—अहव मुंच तं वराअं । राआणुवत्तणं खु एआरिसाणं जुत्तं । [अथवा मुञ्च तं वराकम् । राजानुवर्तनं खल्वेतादृशानां युक्तम् ।]

चेटी—जं भट्टिणी आणवेदि । [यद्भट्टिनी आज्ञापयति ।] (हस्तं मुञ्चति ।)

विदूषकः—(आत्मगतम्) पच्चुज्जीविदो म्हि । [प्रत्युज्जीवितोऽस्मि ।]

(देवी गन्तुमुत्सहते । राजा पटान्तेन[2] गृह्णाति ।)

देवी—(सकोपम्) अय्यउत्त, अपगओ[3] खु सो कालो । मुंचेहि मुंचेहि । अदोवरं ण एसा वेलादी । [आर्यपुत्र, अपगतः खलु स कालः । मुञ्च मुञ्च । अतःपरं नैषा वेलाती ।]

(हस्तमवधूय चेट्या सह ससंरम्भं निष्क्रान्ता ।)

राजा—कथं कुपितैव गता कोपना ।

---

1 A आगच्छेमि. *2* A पटान्ते. *3* A अपरओ खु (=अपरः खलु); chāyā however, अपगतः खलु.

विदूषकः—वअस्स, दिट्ठिआ जीवंतो एव्व मुक्को म्हि। मोचेहि दाव दासीए धूदाए रइसेणाए कअं बंधणं। [वयस्य, दिष्ट्या जीवन्नेव मुक्तोऽस्मि। मोचय तावद् दास्या दुहित्रा रतिसेनया कृतं बन्धनम्।]

(राजा मोचयति।)

विदूषकः—(उत्तरीयं गृहीत्वा) मए खु अत्तणो बंधणत्थं एअं उत्तरीअं धारिज्जइ। [मया खल्वात्मनो बन्धनार्थमेतदुत्तरीयं धार्यते।]

राजा—तदेतद् जाकृपाणीय नाम।

विदूषकः—वअस्स, किं दाणिं करेम्ह। [वयस्य, किमिदानीं कुर्वः।]

राजा—यावद् गत्वा देवीं प्रसादयामः।

विदूषकः—वअस्स, जंणिमित्तं मए मरणसंकडो अणुहूदो तं एअं चित्तफलअहदअं कहिं मोइस्सं। [वयस्य, यन्निमित्तं मया मरण-संकटमनुभूतं तदेतच्चित्रफलकहतकं क्क मोक्ष्यामि।]

राजा—प्रियाविरहविनोदित्वान्नैषं[1] परित्यागमर्हति।

विदूषकः—तेण हि कहिं वि लआगुम्मब्भंतरे णिक्खिविअ आअच्छेमि। [तेन हि कुत्रापि लतागुल्माभ्यन्तरे निक्षिप्यागच्छामि।]

राजा—तथा कुरु।

विदूषकः—(परिक्रम्य विलोक्य च) एअं हरिचंदणलआघरअं। जाव एत्थ मोएमि। [एतद्धरिचन्दनलतागृहम्। यावदत्र मोक्ष्यामि[2]।] (परिक्रामति।)

(ततः प्रविशत्युपविष्टा विमनस्का सुभद्रा मन्दारिका च।)

विदूषकः—(दृष्ट्वा) भो भो वअस्स, एहि एहि। एअं खु तं

---

1 Thus A B. It should be नैतत्. *2* Thus A B. It should be मोचयामि or मुञ्चामि.

तुए मग्गिज्जंतं इत्थिआरअणं । [भो भो वयस्य, एहि एहि । एतत्खलु त्वया मृग्यमाणं स्त्रीरत्नम् ।]

राजा—(सहर्षम्) कासौ कासौ । (सत्वरमुपसर्पति ।)

(सुभद्रा मन्दारिका च ससंभ्रममुत्तिष्ठतः ।)

राजा—

मध्यस्ते स्तनयोर्भरेण गुरुणा सार्धं मया क्लिश्यते
श्रोणीबिम्बभरश्च खेदयति मां रम्भोरु पादाम्बुजे ।
यश्चायं न सखीजनात्तव पृथग्गण्योऽस्मि तस्मिन्नसौ
प्रत्युत्थानपरिश्रमः प्रलघुतां सख्यस्य संपादयेत् ॥ २१ ॥

(सुभद्रा सास्रमन्यतो गच्छति ।)

राजा—अयि कातरे,

विनिद्रमन्दाररजोविदूषिता वतंसपुष्पासवबिन्दुचुम्बिताः ।
कपोलपर्यन्तगतास्तवालका हृताञ्जनैरश्रुलवैः किमार्द्रिताः ॥२२॥

विदूषकः—होदि, कुदो खु अत्तहोदीए सबाहं मुहं । [भवति, कुतः खल्वत्रभवत्याः सबाष्पं मुखम् ।]

मन्दारिका—जदो[1] एव्व तुम्हाणं चित्तफलअदंसणं पि विग्घिदं । [यत एव युवयोश्चित्रफलकदर्शनमपि विघ्नितम् ।]

विदूषकः—कहं सव्वं वि इमाहि दिट्ठं । [कथं सर्वमप्याभ्यां दृष्टम् ।]

राजा—मुग्धे, दाक्षिण्यं हि नाम कापि [2]मोक्षितुमर्हति । अथ[3] च

अन्यत्र दाक्षिण्यवतोऽपि पुंसः संसक्तमेकत्र समुत्सुकत्वम् ।
कामं हि सत्यप्सरसां सहस्रे विशिष्टमिन्द्रस्य शचीपतित्वम् ॥ २३ ॥

---

1 B जदा एव्व; chāyā however यत एव. *2* Thus A B, obscure. *3* B omits अथ च.

(सुभद्रा अन्यतो गच्छति ।)

राजा—(मन्दारिकां प्रति) भद्रे, किमिति कोपनां ते प्रियसखीं न प्रसादयसि ।

मन्दारिका—सहि, कहिं गदं ते दक्खिण्णं । (राजानं प्रति) भट्टा, सअं गण्हिअ पसादेहि णं । [सखि, कुत्र गतं ते दाक्षिण्यम् । (राजानं प्रति) भर्तः, स्वयं गृहीत्वा प्रसादयैनाम् ।]

(सुभद्रा सेर्ष्यं मन्दारिकां पश्यति ।)

राजा—यथाह भवती । (सुभद्रां हस्तेन[1] गृहीत्वा) प्रिये, प्रसीद प्रसीद ।

(सुभद्रा मोचयितुमिच्छति ।)

राजा—

उन्मूल्य धैर्यसर्वस्वं यया मे चोरितं मनः ।
सेयं दैवान्मया दृष्टा कथमद्य विमुच्यसे ॥ २४ ॥

(नेपथ्ये)

सहि मंदारिए मंदारिए । [सखि मन्दारिके मन्दारिके ।]

मन्दारिका—(ससंभ्रमम्) पिअसहि, इदो सिग्घं एहि । सहिअणो खु सद्दावेइ । [प्रियसखि, इतः शीघ्रमेहि । सखीजनः खलु शब्दापयति ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) हुं असहणदा देव्वस्स । [हुम् । असहनता दैवस्य ।]

(राजा साभिलाषं मुञ्चति ।)

मन्दारिका—इदो इदो पिअसहि । [इत इतः प्रियसखि ।]

(निष्क्रान्ता सुभद्रा मन्दारिका च ।)

राजा—(तन्मार्गदत्तदृष्टिः)

---

1 B हस्ते गृहीत्वा.

गृहीता सा हस्ते कथमपि मया दुर्लभतमा
दृढो मानग्रन्थिश्चरणपतनैर्नो शिथिलितः ।
प्रमृष्टं नेत्रान्तान्न च करतलेनाश्रुसलिलं
गतैवासौ सद्यो मम निमिषतो हंसगमना ॥ २५ ॥

विदूषकः—वअस्स, समासण्णा साअंतणसंझा । एहि गच्छम्ह । [वयस्य, समासन्ना सायंतनसंध्या । एहि गच्छावः ।]

राजा—कथं प्रागेव दुर्विनोददुरतिवाहा विभावरी ।

विदूषकः—णं सिविणएसु तं दक्खिस्ससि । [ननु स्वप्नेषु तां द्रक्ष्यसि ।]

राजा—

स्वप्नेऽपि दृश्येत यदि प्रियासौ क्षणेन तुल्या क्षणदापि याति ।
स्वप्नेऽपि मे संप्रति दुर्लभा चेत् सहस्रयामा भवति त्रियामा ॥२६॥

विदूषकः—इदो इदो । [इत इतः ।]

राजा—(निर्वर्ण्य)

रक्ताशोकप्रवालश्रियमिह तनुते भूरुहाणां दलेषु
व्याकीर्णाम्भोजरेणूत्करमिव कुरुते गाङ्गमम्भश्च रक्तम् ।
सान्द्रः सन्ध्यातपोऽयं[1] प्रतिफलितरुचिः कुङ्कुमक्षोदताम्रः
सद्यः सौवर्णशोभां रचयति पतितो राजतीषु स्थलीषु ॥ २७ ॥

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ ।)

इति श्रीभट्टार[2]गोविन्दस्वामिसूनुना हस्तिमल्लेन विरचितायां सुभद्रानाटिकायां द्वितीयोऽङ्कः ।

---

1 B सान्ध्यातपोऽयम् etc. 2 A B °भट्ट°.

तृतीयोऽङ्कः[1] ।

(ततः प्रविशति चेटी ।)

चेटी—आणत्त म्हि भट्टिदारिआए सुभद्दाए । जह 'हंजे मंजरिए, एसो खु दाणि बालासोओ समंतदो विअसंतकुसुमत्थवअ-मंडणसंमाणिअजोव्वणारंभो संवुत्तो[2] । एसा अ णिरंतरुद्दलिअमउल-सअजाअंतसोहा वोलेइ[3] मुद्धभावं मालईलआ । जाव दाणिं एदाणं उव्वाहविहिं संपादेमो । ता जाव तुमं मंदाइणिं गदुअ पसण्ण-पूदाणि पदाणसलिलाणि अग्घकमलाणि अ आणिअ आअच्छ' त्ति । ता जाव मंदाइणिं गच्छेमि (परिक्रामति । पृष्ठतोऽवलोक्य) कहं पिअ-सही तरंगिआ अणुपदं आअच्छेदि । (प्रतिपाल्य तिष्ठति ।) [आज्ञप्तास्मि भर्तृदारिकया सुभद्रया । यथा 'सखि मञ्जरिके, एष खल्विदानीं बालाशोकः समन्ततो विकसत्कुसुमस्तबकमण्डनसंमानितयौवनारम्भः संवृत्तः । एषा च निरन्तरोद्दलितमुकुलशतजायमानशोभा प्रकाशयति मुग्धभावं मालती-लता । यावदिदानीमेतयोरुद्वाहविधिं संपादयावः । तद्यावत् त्वं मन्दाकिनीं गत्वा प्रसन्नपूतानि प्रदानसलिलान्यर्घकमलानि[4] चानीय आगच्छ' इति । तद्या-वन्मन्दाकिनीं गच्छामि । (परिक्रामति । पृष्ठतोऽवलोक्य) कथं प्रियसखी तर-ङ्गिका अनुपदमागच्छति ।] (प्रतिपाल्य तिष्ठति ।)

(प्रविश्य)

द्वितीया चेटी—हंजे मंजरिए, कीस तुमं चिट्ठसि । [सखि मञ्जरिके, कस्मात्त्वं तिष्ठसि ।]

प्रथमा—सहि तरंगिए, कीस तुमं पि अणुपदं आअदा । [सखि तरङ्गिके, कस्मात्त्वमप्यनुपदमागता ।]

---

1 A श्रीः । नमः सिद्धेभ्यः । अथ तृतीयोऽङ्कः । श्रीमत्प्रभेन्दुमुनये नमः । B ओं नमः सिद्धेभ्यः । श्रीमत्प्रभेन्दुमुनये नमः । अथ तृतीयोऽङ्कः । 2 A संवत्तो; B संउत्तो. 3 Thus A B. Hemacandra VIII. 4. 162 gives वोल as an आदेश for गम्. Better to render वोलेइ by अतिक्रामति. 4 A B अनर्घ्यकमलानि.

द्वितीया—हला, अहं पि भट्टिदारिआए आणत्ता । जह सहि तरंगिए, तुमं दाव गदुअ 'संफुल्लो बालासोओ मालईलआ अ । दाणिं चेअ तेसिं उव्वाहविहि' त्ति विलंविआओ सहीओ भणिअ ईह आणेहि त्ति । [सखि, अहमपि भर्तृदारिकया आज्ञप्ता । यथा सखि तरङ्गिके, त्वं तावद्गत्वा 'संफुल्लो बालाशोको मालतीलता च । इदानीमेव तयोरुद्वाहविधिः' इति विलम्बिताः सखीर्भणित्वा इहानयेति ।]

प्रथमा—सहि, अच्छेरं खु तं जं दाव हिओ दंसिदसामपाडल-मुद्धकोरओ बालासोओ ईसुब्भिण्णहरिदालपंडुरंकुरा अ मालई-लआ दाणिं विआसणिब्भरकुसुमविच्छड्डमणोहरा संवुत्ता । [सखि आश्चर्यं[1] खलु तद्, यत् तावद् ह्यो दर्शितश्यामपाटलमुग्धकोरको बालाशोक ईषदुद्भिन्नहरितालपाण्डुराङ्कुरा च मालतीलता, इदानीं विकास-निर्भरकुसुमविच्छर्दमनोहरौ[2] संवृत्तौ ।]

द्वितीया—सहि, अच्छेरं[3] एअं । जइ तुमं अप्पम्मि विस्सससि किं पि दाणिं पुच्छेमि । [सखि, आश्चर्यमेतत् । यदि त्वमात्मनि विश्वसिषि, किमपीदानीं पृच्छामि ।]

प्रथमा—सहि, विस्सद्धं भणाहि । किं ण आणासि तुमं मंजरिअं[4] । [सखि, विश्रब्धं भण । किं न जानासि त्वं मञ्जरिकाम् ।]

द्वितीया—सहि, कुदो खु एत्तिअम्मि हरिसेक्ककारणे बालासोअ-मालईलआणं आआलिअकुसुमुब्भेदकल्लाणे अण्णारिसं विअ दीणदीणं चेदो खामखामं च सरीरं लक्खिज्जइ भट्टिदारिआए । [सखि, कुतः खल्वेतावति हर्षैककारणे बालाशोकमालतीलतयोराकालिककुसुमोद्भेदकल्याणेऽन्यादृशमिव दीनदीनं चेतः क्षामक्षामं च शरीरं लक्ष्यते भर्तृदारिकायाः ।]

---

1 A B इद (=ह्यः?) *2* A °कुसुमविच्छिद्र संवृत्ते; B °विच्छिद्दे मनोहरे संवृत्ते. *3* A B अच्छले-chāyā अच्छले; obscure. Reading adopted in the text conjectural. *4* A B add अ (च) after मंजरिअं.

प्रथमा—(विचिन्त्य, सशङ्कं परितो विलोक्य) ण आणामि अहं । [न जानाम्यहम् ।]

द्वितीया—सहि, किं एअं । वत्तुकामा विअ उवक्कमिअ पुणो ण भणासि । [सखि, किमेतत् । वक्तुकामेवोपक्रम्य पुनर्न भणसि]

प्रथमा—हला, ण खु अहं तुइत्तो अहिअं जाणामि । तुमं दाव कहं समत्थेसि । [सखि, न खल्वहं त्वत्तोऽधिकं जानामि । त्वं तावत्कथं समर्थयसे ।]

द्वितीया—(सस्मितम्) सहि, जाणासि अइसंधादुं जं पुच्छिदं रहस्सं पडिपुच्छासि । तहवि ण सक्क म्हि तुमं विअ पिअसहीए अत्तणो भावं णिगूहिदुं । एसा भणामि । [सखि, जानास्यतिसंधातुं यत्पृष्टं रहस्यं प्रतिपृच्छसि । तथाऽपि न शक्ताऽस्मि त्वमिव प्रियसख्या आत्मनो भावं निगूहितुम् । एषा भणामि ।]

प्रथमा—अवहिद म्हि । [अवहितास्मि ।]

द्वितीया—हला, जह तुमं समत्थेसि तह एव्व तं ति मह वि समत्थणा । [सखि, यथा त्वं समर्थयसे तथैव तदिति ममापि समर्थना ।]

प्रथमा—(सस्मितम्) अभिजादं पआसणं संवरणं च तरसि । [अभिजातं प्रकाशनं संवरणं च शक्नोषि[1] ।]

द्वितीया—हला, को णु खु सो महाभाओ, कहं च दिट्ठिभाओ[2] । [सखि, को नु खलु स महाभागः, कथं च दृष्टिभावः ।]

प्रथमा—एत्तिअं पुण जाणामि । बालासोअसुमरणमेत्तम्मि अ मिलाअंती इमस्स उद्देसस्स कहं तदा पिअसहीए सह मंदारिआए आवत्तेदि । सहि, विहारणिरपेक्खा अ सहीअणं मोत्तूण इमस्सिं

---

1 A B तरसि (in the chāyā also); we should expect काउं तरसि =कर्तुं शक्नोषि. 2 B दिट्ठो भावो (chāyā दृष्टो भावः)

चेअ पएसे तेण तेण ववदेसेण विलंबेइ । [एतावत्पुनर्जानामि । बाला-शोकस्मरणमात्रे च म्लायन्ती अस्य उद्देशस्य कथां तदा प्रियसख्या सह मन्दारिकया आवर्तयति । सखि, विहारनिरपेक्षा च सखीजनं मुक्त्वास्मिन्नेव प्रदेशे तेन तेन व्यपदेशेन विलम्बते ।]

द्वितीया—हला, अलं एत्तिएण । गच्छेमि । [सखि, अलमेतावता । गच्छामि ।]

प्रथमा—तदो तुमं विअ अहं पि गच्छेमि । [ततस्त्वमिवाहमपि गच्छामि ।]

द्वितीया—सहि, तह । [सखि, तथा ।] (उभे निष्क्रान्ते ।)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशत्युपविष्टा सोत्कण्ठा सुभद्रा मन्दारिका च ।)

सुभद्रा—(दीर्घं निःश्वस्य सखेदमात्मगतम्) अइ मूढ हिअअ, तस्स जणस्स सुमरणं तुह एकंतसंतावइत्तअं जाणंतो वि कीस तुमं पुणो वि तं चेअ सुमरेसि । अम्मो चवलाइ लोअणाइ, जस्सिं दाव संणिहिदे संपुण्णं दंसणं पि कादुं ण पहवेह, तं चेअ दाणि दंसिदुं अहिलसंताइ कुदो मं आआसेध । हंहो दुव्विदद्ध हत्थ, जेण गहिदो तुमं दुम्माणवसणपरवंतो मोएदुकामो आसी तस्स पुणो वि फंससुहं णिल्लज्जो कहं इच्छसि । अंग वम्मह, अण्णाणुराअपराहीणे वि जणे मं खलीकरंतो किं ति तुह सराणं विणोदलक्खीकरेसि । [अयि मूढ हृदय, तस्य जनस्य स्मरणं तवैकान्तसंतापयितृकं जानदपि कस्मात्त्वं पुनरपि तमेव स्मरसि । अहो चपले लोचने, यस्मिंस्तावत्संनिहिते संपूर्णं दर्शनमपि कर्तुं न प्रभवथस्तमेवेदानीं द्रष्टुमभिलषन्ती कुतो मामायासयथः । हंहो दुर्विदग्ध हस्त, येन गृहीतस्त्वं दुर्मानव्यसनपरवान् मोचयितुकाम आसीत्तस्य पुनरपि स्पर्शसुखं निर्लज्जः कथमिच्छसि । अंग मन्मथ, अन्यानुरागपराधीनेऽपि जने मां खलीकुर्वन् किमिति तव शराणां विनोदलक्ष्यीकरोषि ।]

मन्दारिका—पिअसहि, किं चिंतेसि। [प्रियसखि, किं चिन्तयसि।]

सुभद्रा—ण किं वि। [न किमपि।]

मन्दारिका—किं तदो अण्णं। [किं ततोऽन्यत्।]

सुभद्रा—कुदो। [कुतः।]

मन्दारिका—जं तुए अविच्छिण्णं चिंतिज्जइ। [यत्त्वयाविच्छिन्नं चिन्त्यते।]

सुभद्रा—(सलज्जम्) जाणंती एव्व कुदो मं पुच्छेसि। [जानत्येव कुतो मां पृच्छसि।]

मन्दारिका—पण्हो वि तहिं विसए तुह रमइत्तओ त्ति। [प्रश्नोऽपि तस्मिन्विषये तव रमयितेति।]

सुभद्रा—हला, पराहीणे तस्सिं जणे समूसुअं कीस मं उवहसेसि। [सखि, पराधीने तस्मिन् जने समुत्सुकां कस्मान्मामुपहससि।]

मन्दारिका—सहि, दक्खिण्णमेत्तदिण्णुत्तरं, तं किं ति पुण ण पत्तेसि। (सस्मितम्) अहव विरुद्धोवण्णासच्छलेण असाहारणिं तुवम्मि तस्स बहुमइं उग्घाडेंती अत्ताणं सलाहेसि। [सखि, दाक्षिण्यमात्रदत्तोत्तरं[1] तं किमिति पुनर्न प्रत्याययसि[2]। (सस्मितम्) अथवा विरुद्धोपन्यासच्छलेनासाधारणीं त्वयि तस्य बहुमतिमुद्घाटयन्ती आत्मानं श्लाघयसि[3]।]

सुभद्रा—(सविलक्षस्मितम्) पिअसहि, एसो अंजली। मा खु मं उवहसेसि[4]। [प्रियसखि, एषोऽञ्जलिः। मा खलु मामुपहस।]

मन्दारिका—इअं म्हि तुण्हिक्का। [इयमस्मि तूष्णीका।]

सुभद्रा—(सखेदमात्मगतम्) हंत किंणु खु एअस्स मअणरोअस्स अवसाणं। जेण णिद्दअपीडिआए भारो मे सरीरं चंपणाअ पडि-

---

1 A B दाक्षिण्यमात्रमतिदत्तोत्तरं etc. *2* Thus A B. It should be प्रत्येषि. *3* Thus A B. It should be श्लाघसे. *4* Thus A B. It should be उवहसेहि (=उपहस).

भाइ। अहव कुदो मे तारिसा भाअधेआ जदो एदं कल्लाणं परिणमिस्सदि। (रोदिति) [हन्त किं नु खल्वेतस्य मदनरोगस्यावसानम्। येन निर्दयपीडिताया भारो मे शरीरं मरणाय प्रतिभाति। अथवा कुतो मे तादृशानि भागधेयानि यत एतत्कल्याणं परिणंस्यति।]

मन्दारिका—सहि, कुदो दे ओवाअसंका। अहरहं सिज्झंति णिमित्ताइ। [सखि, कुतस्तेऽपायशङ्का। अहरहः सिध्यन्ति निमित्तानि।]

सुभद्रा—पिअभासिणीओ खु सहीओ। [प्रियभाषिण्यः खलु सख्यः।]

मन्दारिका—मा तह चिंतिअ। सव्वहा ण विसंवदंति णिमित्ताइं। [मा तथा चिन्तयित्वा। सर्वथा न विसंवदन्ति निमित्तानि।]

सुभद्रा—होदु। [भवतु] (चिन्तानिःसहमास्ते।)

मन्दारिका—पिअसहि, किं ते मणो लिहइ। [प्रियसखि, किं ते मनो लेढि।]

सुभद्रा—हला, सुट्ठु भणिअं। लेक्खं चेअ खु तं। [सखि, सुष्ठु भणितम्। लेख्यमेव खलु तत्।]

मन्दारिका—किं अणंगलेहकव्वं। [किमनङ्गलेखकाव्यम्।]

सुभद्रा—(सलज्जम्) तं विअ। [तदिव।]

मन्दारिका—सहि, भणाहि भणाहि। [सखि, भण भण।]

सुभद्रा—जइ ण मं उवहसिस्ससि, एसा भणिस्सं। [यदि न मामुपहसिष्यसि, एषा भणिष्यामि।]

मन्दारिका—ण एअं उवहासट्ठाणं। [नैतदुपहासस्थानम्।]

सुभद्रा—तेण हि सुणाहि। [तेन हि शृणु।]

मन्दारिका—अवहिद म्हि। [अवहिताऽस्मि।]

सुभद्रा—(अनुस्मृत्य) लज्जदि भणिदुं जीहा । [लज्जते भणितुं जिह्वा।]

मन्दारिका—तेण हि अहिलिहिअ दंसेहि । [तेन हि अभिलिख्य दर्शय।]

सुभद्रा—सहि, तह । [सखि, तथा।]

मन्दारिका—कुदो दाणिं उयअरणाइ । [कुत इदानीमुपकरणानि ।]

सुभद्रा—हला, एकं असोअपल्लवं उवणेहि । जदो तहिं णिवडंत-बाहसलिलोल्लिएण इमिणा थणंगराअहरिचंदणरसेण णहग्गतूलिआ-धरिएण लिहिस्सं । [सखि, एकमशोकपल्लवमुपनय । यतस्तस्मिन् निपतद्बा-ष्पसलिलार्द्रितेनानेन स्तनाङ्गरागहरिचन्दनरसेन नखाग्रतूलिकाधृतेन लेखि-ष्यामि ।]

मन्दारिका—सहि, सोहणाइ अणंगलेहोवअरणाइ । ता एसा आणेमि । [सखि, शोभनान्यनङ्गलेखोपकरणानि । तस्मादेषानयामि ।]
(उत्थाय नाट्येन निकृत्योपनयति ।)

(सुभद्रा आदाय तथा विलिखति ।)

मन्दारिका—सहि देहि, वाचइस्सं । [सखि देहि, वाचयिष्यामि।]

सुभद्रा—बाहेदि मं लज्जा । जाव तुण्हिक्का मणेण वाएहि । [बाधते मां लज्जा । यावत् तूष्णीका मनसा वाचय ।]

मन्दारिका—तह करिस्सं । (लेखमादाय, निरीक्ष्य, मनसा वाचयित्वा) सहि, साहु साहु । गहीरमहुरा वाचोजुत्ती । [तथा करिष्यामि] (लेखमादाय, निरीक्ष्य, मनसा वाचयित्वा) सखि, साधु साधु । गभीरमधुरा वाचोयुक्तिः ।]

सुभद्रा—पसंसा वि उवहासो मे पडिभासइ । [प्रशंसाऽप्युपहासो मे प्रतिभासते ।]

मन्दारिका—एसा अहं ण पसंसिस्सं । सो एव्व परं पसंसेदु । [एषा अहं न प्रशंसिष्यामि । स एव परं प्रशंसतु ।]

सुभद्रा—(सलज्जम्) किं तेण वि जणेण एदं दक्खिदव्वं । [किं तेनापि जनेन एतद् द्रष्टव्यम् ।]

मन्दारिका—अण्णहा कहं अणंगलेहो भवे । [अन्यथा कथमनङ्गलेखो भवेत् ।]

सुभद्रा—हला, कुदो मं लहूकरेसि । [सखि, कुतो मां लघूकरोषि ।]

मन्दारिका—(लेखं विलोक्य) जह एदाइ अक्खराइ सुत्थिदाइ भविस्संति तह एअं करअलफंसासहं एत्थ एव्व असोअक्खंधे मुहुत्तअं पि समप्पिस्सं । [यथैतान्यक्षराणि सुस्थितानि भविष्यन्ति तथा एतं करतलस्पर्शासहमत्रैवाशोकस्कन्धे मुहूर्तमपि समर्पयिष्यामि ।] (तथा कृत्वोपविशति ।)

सुभद्रा—हला, कदमं खु सो भूमिं महाभाओ अलंकरेदि । [सखि, कतमां खलु स भूमिं महाभागोऽलंकरोति ।]

मन्दारिका—जा वा का वा होदु णिवासभूमी । किं तेण । तं पुण महाभाअं इह एव्व दक्खिस्ससि । जदो तुह दंसणादो पहुदि एसा तस्स विणोदभूमी । [या वा का वा भवतु निवासभूमिः । किं तेन । तं पुनर्महाभागमिहैव द्रक्ष्यसि । यतस्तव दर्शनात् प्रभृत्येषा तस्य विनोदभूमिः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अवि णाम पिअसहीवअणं समस्सासणमेत्तं ण हवे । [अपि नाम प्रियसखीवचनं समाश्वासनमात्रं न भवेत् ।]

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

राजा—

उद्भाव्य भावं क्षणसंनिपातात्प्रस्वेदरोमाञ्चितवेपथूनाम् ।
स्पृष्ट्वा करो मे करमायताक्ष्या नाद्यापि रोमाञ्चमसौ जहाति ॥१॥

विदूषकः—इदो इदो पिअवअस्सो। [इत इतः प्रियवयस्यः।]

(परिक्रामतः।)

राजा—

तस्याः करं सरोमाञ्चममुञ्चन्नेव तत्क्षणम्।
संक्रान्त इव रोमाञ्चो मम संस्पृशतः करम् ॥ २ ॥

अथवा न साधु कृतमनेनापि हस्तेन। कुतः
तस्या गृहीत्वापि करं विमुञ्चन्नदक्षिणोयं मम दक्षिणोऽपि।
वामत्वमङ्गीकुरुते स[1] हस्तो वामे विधौ कः खलु भो न वामः ॥३॥

(पदान्तरे स्तिमितस्तिष्ठति।)

विदूषकः—(कतिचित्पदानि गत्वा परावृत्य) कहं ठिदो वअस्सो। (उपसृत्य हस्ते गृहीत्वा) वअस्स, किं एदं। रोमंचिदसव्वंगो दरणिमीलंतलोयणो णीसहं चिट्ठसि। [कथं स्थितो वयस्यः। (उपसृत्य हस्ते गृहीत्वा) वयस्य, किमेतत्। रोमाञ्चितसर्वाङ्गो दरनिमीलल्लोचनो निस्सहं तिष्ठसि।]

राजा—सखे, आक्षिप्तोऽस्मि स्मृत्यन्तरेण। मम हि

संमोहनोऽन्तःकरणस्य विष्वक् स कोऽप्यपूर्वो विषवेग एव।
स्मृतिं गतः संप्रति रम्यमूर्च्छासखः प्रियास्पर्शसुखप्रसर्पः ॥ ४ ॥

(विचिन्त्य) भो वयस्य एहि।

हरिच[2]न्दनलताभवने विधुरं मनो विनोदयितुम्।
यत्र प्रियया दत्तश्चन्दनरसशीतलः स्पर्शः ॥ ५ ॥

---

1 Thus A B. It should be स. 2 Faulty metre in the first half of the आर्या stanza.

विदूषकः—तेण हि इदो इदो । [तेन हि इत इतः ।]

(परिक्रामतः ।)

राजा—(निर्वर्ण्य सोद्वेगम्)

वेदीवनं तदेवेदं नेत्रैकान्तविलोभनम् ।
जीर्णारण्यमिवारम्यं दृश्यते प्रियया विना ॥ ६ ॥

विदूषकः—(अग्रतो निर्दिश्य) वअस्स, दक्ख दाव णिरंतरुप्फुल्लस्स ससिरिअदं इमस्स रत्तासोअपाअवस्स । [वयस्य, पश्य तावन्निरन्तरोत्फुल्लस्य सश्रीकतामस्य रक्ताशोकपादपस्य ।]

राजा—(निर्वर्ण्य)

रक्ताशोकस्तबका निरन्तरोच्छ्वसितसुमनसो भान्ति ।
इषुधय इव कुसुमेषोः शरपूर्णाः सज्जिता मधुना ॥ ७ ॥

(निरूप्य) वयस्य स एवायं प्रियाचरणोत्तंसनमहार्हो रक्ताशोकः ।

विदूषकः—(निरूप्य) सो एव्व । [स एव ।]

राजा—वयस्य, प्रायेणात्रागन्तव्यमुद्वाहसंपत्तये प्रियया । एहि कंचित् कालमिहैवात्मानं विनोदयावः ।

विदूषकः—जं वअस्सो भणादि । (परिक्रम्य शाखान्तरे विलोक्य) वअस्स, दक्ख दक्ख । एसा खु सा इदो[1] एव्व वट्टइ अत्तहोदी । [यद्वयस्यो भणति । (परिक्रम्य शाखान्तरे विलोक्य) वयस्य, पश्य पश्य । एषा खलु सा इत एव वर्ततेऽत्रभवती ।]

राजा—(सहर्षम्) यावदनेन तमालपादपेनान्तरितः स्वैरालापमस्याः शृणोमि । (तथा दृष्ट्वा) हन्त किमपि दुरन्तचिन्तया दूयमानया भवितव्यमनया । अस्या हि

---

1 A इदं (chāyā इतः), B इद (chāyā इह).

आपाण्डुरा भाति कपोललेखा विनिष्पतद्बाष्पविभिन्नवर्णा ।
अजस्रहस्तार्पणबद्धरागा प्रभातदीनेव शशाङ्कलेखा ॥ ८ ॥

सुभद्रा—(अन्तःसंतापमभिनयन्ती मन्दारिकाया अग्रहस्तमुरसि समर्प्य) सहि, दिढं खु तवइ मे हिअअं । [सखि, दृढं खलु तपति मे हृदयम् ।]

मन्दारिका—हुं असिसिरदा फंसस्स । [अहो अशिशिरता स्पर्शस्य ।]

राजा—

तप्तस्य गाढं हृदयस्य मन्ये बाष्पाम्बुपूरः शिशिरोपचारः ।
अयत्नलभ्यः पुनरायतोऽस्या निःश्वास एव व्यजनानिलश्च ॥९॥

मन्दारिका—कहं णिरग्गलं णिहणइ एअं वम्महहदओ । [कथं निरर्गलं निहन्त्येनां मन्मथहतकः ।]

राजा—(निःश्वस्य) हन्त, निर्दयमेनां विध्यति मन्मथः । हंहो दुर्विदग्धधानुष्क कुसुमधन्वन् अनभिज्ञोऽसि यथालक्ष्यमुपक्रमितुम् । तव हि

व्यधायि शस्त्रं कुसुमं, पुरस्सरा वसन्तमन्दानिलचन्द्रचन्द्रिकाः ।
स्त्रियः प्रकृत्या ननु कोमला इति त्वया तु गाढं किमसौ निहन्यते ॥१०॥

मन्दारिका—हुं सिसिरोवकरणं वि ण दाणि संणिहिदं । [हन्त शिशिरोपकरणमपि नेदानीं संनिहितम् ।]

राजा—

स्तनांशुकं बाष्पजलावसिक्तं जलार्द्रवासः स्वयमेव कॢप्तम् ।
न्यस्तो मुहुर्वक्षसि चाग्रहस्तो धत्ते प्रवालार्पणकृत्यमस्याः ॥११॥

मन्दारिका—कहं पडिक्खणं विवड्ढंतो ण दाव उवसम्मइ इमाए संदावो । [कथं प्रतिक्षणं विवर्धमानो न तावदुपशाम्यति अस्याः संतापः ।]

---

1 A हस्ते.

राजा—

नयनसलिलस्नेहैः स्थूलैश्च निःश्वसितानिलै-
र्भृशमशिशिरैर्भूयः सोष्मस्तनद्वयघट्टितैः ।
कुवलयदृशो नूनं संधुक्षितः कुसुमोपमं
हृदयमदयः संतापाग्निर्धुनोति न शाम्यति ॥ १२ ॥

मन्दारिका—(सखेदम्) किं एत्थ करीअदु । [किमत्र क्रियताम् ।]

राजा—अहो अतिरिक्तः परितापः । अद्य हि

अन्तस्तापक्वाथादुद्वान्तैरिव निरन्तरं बाष्पैः ।
अङ्के पुनः कृशाङ्ग्याः सन्तप्ते[1] निपतितैः शुष्कम् ॥ १३ ॥

वयस्य, न युक्तमतःपरमिह स्थातुम् ।

मन्दारिका—(आत्मगतम्) दिढं खु एसा संतप्पेदि । ता एवं दाव । (प्रकाशम्) पिअसहि, सुणाहि दाव किंचि । [दृढं खल्वेषा सन्तप्यते । तस्मादेवं तावत् । (प्रकाशम्) प्रियसखि, शृणु तावत् किंचित् ।]

विदूषकः—किं एसा भणिदुं इच्छदि त्ति जाणिअ पुणो उवसप्पम्ह । [किमेषा भणितुमिच्छतीति ज्ञात्वा पुनरुपसर्पावः ।]

राजा—तथास्तु ।

सुभद्रा—एसा सुणामि । [एषा शृणोमि ।]

मन्दारिका—जदा एव्व इमस्स बालासोअस्स पिअसहीए दिण्णं चरणसंतालणदोहलं तदा एव्व तेण हि महाभाएण तुह दिण्णो दंसणूसवो। णवरिअ जह जह इमिणा दंसिदो मउलुब्भेदो तह तह तेण वि दंसिदो अणुराओ। तदो इमिणा एव्व अणुऊलेण णिमित्तेण समत्थिदं मए जदा एव्व इमस्स उव्वाहविही करीअदि तदो वरं ण तस्स समाअमो विलंबेदि त्ति । [यदैवास्य बालाशोकस्य प्रियसख्या दत्तं चरणसंताडनदोहदं

---

1 A संतेपे·; B सन्ते तापे.

तदैव तेन हि महाभागेन तव दत्तो दर्शनोत्सवः। अनन्तरं च यथा यथाऽमुना दर्शितो मुकुलोद्भेदस्तथा तथा तेनापि दर्शितोऽनुरागः। ततोऽनेनैवानुकूलेन निमित्तेन समर्थितं मया यदैवास्योद्वाहविधिः क्रियते ततः परं न तस्य समागमो विलम्बत इति।]

सुभद्रा—पिअसहि, जह किर तुए भणिदं तह एव्व इदो पुव्वं अणुभूदं विअ। परंतु पिअसही जाणादि। [प्रियसखि, यथा किल त्वया भणितं तथैवेतः पूर्वमनुभूतमिव। परंतु प्रियसखी जानाति।]

मन्दारिका—पिअसहि, जो दाव एत्तिअस्स संवादइत्तओ ण सो परं पि विसंवादइस्सदि विही। (सुभद्राया अश्रूणि प्रमार्जयन्ती) ता पिअसहि, जह एअस्स उव्वाहविही सोहणं एव्व णिव्वत्तिओ भविस्सदि तह तुमं वि पसण्णचित्ता अमिलाणमुही होहि। जेण सो एव्व सुणिव्वत्तिओ तुह उव्वाहसंपत्तिणाडिआए पुव्वरंगविही भविस्सदि। [प्रियसखि, यस्तावदेतावतः संवादयिता न स परमपि विसंवादयिष्यति विधिः। (सुभद्राया अश्रूणि प्रमार्जयन्ती।) तस्मात् प्रियसखि, यथैतस्योद्वाहविधिः शोभनमेव निर्वर्तितो भविष्यति तथा त्वमपि प्रसन्नचित्ता अम्लानमुखी भव। येन स एव सुनिर्वर्तितस्तवोद्वाहसंपत्तिनाटिकायाः पूर्वरङ्गविधिर्भविष्यति।]

विदूषकः—सुट्ठु कअं विलोहणं [सुष्ठु कृतं विलोभनम्।]

राजा—स्थाने हि सख्यः कामिनीनां शरणम्।

सुभद्रा—सहि, तेण हि एसा दाणिं सुत्थिद म्हि। [सखि, तेन हि एषा इदानीं सुस्थिताऽस्मि।]

राजा—वयस्य, एह्युपसर्पावः।

मन्दारिका—एसा आअदा एव्व पदाणसलिलग्घकुसुमहत्था पिअसही मंजरिआ। [एषा आगतैव प्रदानसलिलार्घकुसुमहस्ता प्रियसखी मञ्जरिका।]

---

1 A अणकुंमजणमुही (?) (chāyā अम्लानमुखी); B अम्मणमुही (chāyā अम्लानमुखी). Reading in the text is conjectural.

विदूषकः—(विलोक्य) वअस्स, एसा अ परा तुज्झ अणहिण्णा आअच्छइ। ता जाव एसा अण्णदो गच्छइ ताव इह एव्व ठादव्वं। [वयस्य, एषा च परा तवानभिज्ञा आगच्छति। तस्माद्यावदेषा अन्यतो गच्छति तावदिहैव स्थातव्यम्।]

राजा—युक्तमाह भवान्।

(प्रविश्य यथानिर्दिष्टा)

मञ्जरिका—भट्टिदारिए, एदाइ णलिणीपत्तधरिआइ पदाणसलिलाइ अग्घकुसुमाइं च। [भर्तृदारिके, एतानि नलिनीपत्रधृतानि प्रदानसलिलान्यर्घकुसुमानि च।]

सुभद्रा—सहि, तेण हि णिव्वत्तेमो दाणिं इमाणं उव्वाहविहिं। [सखि, तेन हि निर्वर्तयाम इदानीमनयोरुद्वाहविधिम्।]

चेटी—भट्टिदारिए, काए दिज्जउ पदाणसलिलं। [भर्तृदारिके, कया दीयतां प्रदानसलिलम्।]

सुभद्रा—सहि मंदारिए, णं तुह सुदा मालईलआ। ता तुमं चेअ पदाणसलिलं देहि। [सखि मन्दारिके, ननु तव सुता मालतीलता। तस्मात्त्वमेव प्रदानसलिलं देहि।]

मन्दारिका—तह करिस्सं। (उत्थाय प्रदानसलिलं गृहीत्वा सविलासस्मितम्) पिअसहि, दक्ख दक्ख। सअं चेअ एसा इमस्स खंधे ओलग्गा। [तथा करिष्यामि। (उत्थाय प्रदानसलिलं गृहीत्वा सविलासस्मितम्) प्रियसखि, पश्य पश्य। स्वयमेवैषास्य स्कन्धेऽवलग्ना।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) गाढो उवक्खेओ। [गाढ उपक्षेपः।] (सस्मितं पश्यति।)

राजा—(निर्वर्ण्य)

> अलसस्मितं सुदत्यास्त्रपां प्रमोदं दृढं च परितापम्।
> सूचयति म्लायन्त्या विकसितमिव कुन्दलतिकायाः॥ १४॥

मन्दारिका—अहो पत्थिवराअ, एसा मे पिअसही तुज्झ दिण्णा। (सलिलधारां पातयति ।) [अहो पार्थिवराज, एषा मे प्रियसखी तव दत्ता ।]

राजा—अहो अभिजातश्लेषोपन्यासः । एष शिरसा प्रतिगृह्णामि।

चेटी—सोहणं सोहणं । [शोभनं शोभनम् ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्) अहो वाआकोसलं । [अहो वाक्कौशलम् ।]

मन्दारिका—हंहो बालासोअ, जह एसा ण किलम्मइ, जह अ लअंतरेहि ण भेदं णीअदि तह एअं संभावेहि । [अहो बालाशोक, यथैषा न क्लाम्यति, यथा च लतान्तरैर्न भेदं नीयते, तथैतां संभावय ।]

चेटी—सुट्ठु भणिअं । [सुष्ठु भणितम् ।]

सुभद्रा—सहि, सोहणा अब्भत्थणा । [सखि, शोभनाऽभ्यर्थना ।]

राजा—अभिरूपोऽयमन्यापदेशः ।

मन्दारिका—एसा दाणि जामादुणो अग्घं उवहरेमि । [एषा इदानीं जामातुरर्घमुपहरामि ।] (उपहरणं नाटयति ।)

राजा—सुसंगतमेतद् वधूवरम् । तथा हि

अशोकः पुष्पितो भाति मालत्या स्मेरपुष्पया ।
व्यतिकीर्ण इवाम्भोदः सान्ध्यो नक्षत्रमालया ॥ १५ ॥

विदूषकः—वअस्स, एसो खु मे अवसरो, जाव उवसप्पामि । (उपसृत्य) सोत्थि होदीए । एसो खु दुग्गओ को वि बम्हणो गंगा-तीरे णिअमं करेमि । अज्ज उण एअस्सिं तुम्हाणं ऊसवे सोत्थिवाअणं पडिगण्हिदुं आअदो म्हि । [वयस्य, एष खलु मेऽवसरो, यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) स्वस्ति भवत्यै । एष खलु दुर्गतः कोऽपि ब्राह्मणो गङ्गातीरे नियमं करोमि । अद्य पुनरेतस्मिन् युष्माकमुत्सवे स्वस्तिवाचनकं प्रतिग्रहीतु-मागतोऽस्मि ।]

---

1 A B पुष्पत्तः. Reading in the text is conjectural.

सुभद्रा—(सहर्षं परितो विलोक्य । सविषादमात्मगतम्) कहं एसो असहाओ आअदो । [कथमेषोऽसहाय आगतः ।](मन्दारिकामीक्षते ।)

मन्दारिका—(अपवार्य) पिअसहि, तेण वि आअदेण होदव्वं । मंजरिअं पुण दट्ठूण ण पविट्ठं ति तक्केमि । [प्रियसखि, तेनाप्यागतेन भवितव्यम् । मञ्जरिकां पुनर्दृष्ट्वा न प्रविष्टमिति तर्कयामि ।]

सुभद्रा—(अपवार्य) तह होदव्वं । [तथा भवितव्यम् ।]

मन्दारिका मञ्जरिका च—अय्य, किं तुए इच्छीअदि । [आर्य, किं त्वया इष्यते ।]

विदूषकः—किं अण्णं । आअलं भोअणं । [किमन्यत् । आगलं भोजनम् ।]

उभे—(सस्मितम्) अय्य, तह संपादइस्सम्ह । [आर्य, तथा संपादयिष्यामः ।]

विदूषकः—ण विस्ससेमि । करेहि दाव मम हत्थे सलिलप्पदाणं । [न विश्वसिमि । कुरु तावन्मम हस्ते सलिलप्रदानम् ।]

मन्दारिका—तेण हि तह करेमि । (सलिलप्रदानं नाटयति ।) अय्य, पूरइस्सं तुह समीहिदं । [तेन हि तथा करोमि । (सलिलप्रदानं नाटयति) आर्य, पूरयिष्यामि ते समीहितम् ।]

(सर्वे सस्मितं पश्यन्ति ।)

सुभद्रा—सहि मंजरिए, तुमं दाव गदुअ णिव्वुत्तं बालासोअमालईलआणं उव्वाहकल्लाणं ति भणिअ, तरंगिआए सह आअच्छंतीओ सहीओ णिव्वट्टिअ पुण्णपत्तं आहरसु । [सखि मञ्जरिके, त्वं तावद्गत्वा, निर्वृत्तं बालाशोकमालतीलतयोरुद्वाहकल्याणमिति भणित्वा, तरंगिकया सहागच्छन्तीः सखीर्निवर्त्य पूर्णपात्रमाहर ।]

चेटी—तह । [तथा ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

(प्रविश्य)

राजा—(मन्दारिकां प्रति) भद्रे,

एषा तव प्रियसखी स्वयमेव दत्ता
यस्मै त्वया ननु स एष परं कृतार्थः ।
अभ्यर्थनं तु तव तत् पुनरुक्तमासी-
दस्मै यदित्थममुनाऽपि च दत्त आत्मा ॥ १६ ॥

(मन्दारिका सस्मितं सुभद्रामीक्षते ।)
(सुभद्रा सलज्जं मुखं नमयति ।)

राजा—

इयं परिम्लानमृणालकोमला तवाङ्गयष्टिर्भृशमद्य ताम्यति ।
तदेहि लज्जाव्यसनं विमुञ्चती ममावलम्बस्व करं नितम्बिनि ॥१७॥

(हस्ते गृह्णाति ।)
(सुभद्रा सलज्जं मन्दारिकामवलम्बते ।)

मन्दारिका—(सस्मितम्) सो एव्व दाणि अवलंबेदव्वो । [स एवेदानीमवलम्बितव्यः ।]

सुभद्रा—(अपवार्य) सहि, अत्थि वा इमस्स पराहीणस्स जणस्स एत्तिअं वेलं एत्थ ठादुं पहुत्तणं । [सखि, अस्ति वास्य पराधीनस्य जनस्यैतावतीं वेलामत्र स्थातुं प्रभुत्वम् ।]

राजा—(मन्दारिकां प्रति) भद्रे, किं ते सखी वदति ।

मन्दारिआ—अत्थि वा इमस्स पराहीणस्स जणस्स एत्तिअं वेलं एत्थ ठादुं पहुत्तणं ति । [अस्ति वास्य पराधीनस्य जनस्यैतावतीं वेलामत्र स्थातुं प्रभुत्वमिति ।]

राजा—न खलु गृहीतो वाचिकस्यार्थः ।

विदूषकः—णं देवी-आअमणादो भाइदव्वं । [ननु देव्यागमनाद्भेतव्यम् ।]

राजा—कथमीर्ष्यालुस्ते प्रियसखी।

(ततः प्रविशति देवी चेटी च।)

चेटी—भट्टिणि, जो दाव असाहारणं तुवंमि अणुराअं दंसेइ, सो दे खमं चेअ अरिहेदि भट्टा। अहव सव्वदो णिवडंति पुरिसाणं दिट्ठीओ। विसेसदो उण राआणं। ता तं चेअ इत्थिआए वल्लहत्तणं जा अवरद्धे अ पसादं दंसेइ। ता ण जुत्तं तत्तिएण तह कोविदुं। अदिकोवणाए वल्लहा वि उव्विज्जंति पुरिसा। सुदं च मए दे कोवादो दिढं विसण्णो भट्टेत्ति। ता एहि, सअं उवसप्पम्ह भट्टिणं। जदो कुविदाए वल्लहाए सअं वि उवसप्पणं चेअ पसादो। [भट्टिनि, यस्तावदसाधारणं त्वय्यनुरागं दर्शयति स ते क्षमामेवार्हति भर्ता। अथवा सर्वतो निपतन्ति पुरुषाणां दृष्टयः। विशेषतः पुना राज्ञाम्। तस्मात् तदेव स्त्रिया वल्लभत्वं या अपराद्धे च प्रसादं दर्शयति। तस्मान्न युक्तं तावतैव तथा कोपितुम्। अतिकोपनाया वल्लभा अपि उद्विजन्ते पुरुषाः। श्रुतं च मया ते कोपाद् दृढं विषण्णो भर्तेति। तस्मादेहि, स्वयमुपसर्पावो भर्तारम्। यतः कुपिताया वल्लभायाः स्वयमप्युपसर्पणमेव प्रसादः।]

देवी—परवदी खु अहं पिअसहीए। तह करिज्जउ। [परवती खल्वहं प्रियसख्या। तथा क्रियताम्।]

चेटी—सुदं मए वेदीवणं गदो भट्टो त्ति। ता इदो इदो भट्टिणी। [श्रुतं मया वेदीवनं गतो भर्तेति। तस्मादित इतो भट्टिनी।]

(परिक्रामतः।)

चेटी—पविट्ठ म्ह वेदीवणं वि अत्तहोदि। [प्रविष्टे स्वो वेदीवनमपि अत्रभवति।] .

विदूषकः—अहं पि एदं जाणामि। [अहमप्येतज्जानामि।]

चेटी—(कर्णं दत्त्वा) भट्टिणि, इमस्स एव्व असोअपाअवस्स

---

1 B तत्तीएण; chāyā in A B तात्विकेन. तत्तिअ on the analogy of एत्तिअ should be taken to stand for तावद् or तावन्मात्र.

पादे अय्यकच्चाअणो मंतिअदि । ता इह एव्व भट्टिणा वि होदव्वं। [भट्टिनि, अस्यैवाशोकपादपस्य पादे आर्यकात्यायनो मन्त्र्यते । तस्मादिहैव भर्त्रापि भवितव्यम् ।]

देवी—हला, इमिणा बउलपाअवेण अंतरिआओ पेक्खम्ह (तथा दृष्ट्वा सकोपम् ।) अइभूमिं गओ इमस्स अविणओ । [सखि, अनेन बकुलपादपेनान्तरिते पश्यावः । (तथा दृष्ट्वा सकोपम् ।) अतिभूमिं गतोऽस्याविनयः ।]

विदूषकः—णं भणामि । अहं वि एअं जाणामि तुवम्मि चेअ असाहारणो अत्तहोदो अणुराओ । देवीए उण दक्खिण्णमेत्तं ति । [ननु भणामि । अहमप्येतज्जानामि त्वय्येवासाधारणोऽत्रभवतोऽनुरागः । देव्यां पुनर्दाक्षिण्यमात्रमिति ।]

चेटी—(सकोपम्) अम्मो दुट्ठदा बम्हबंधुणो । [अहो दुष्टता ब्रह्मबन्धोः ।]

देवी—जाणादि खु सो जहत्थं । [जानाति खलु स यथार्थम् ।]

(चेट्या सह ससंरम्भमुपसर्पति । सर्वे दृष्ट्वा संभ्रान्ताः ।)

(राजा देवीं[1] विलोक्य सभयं हस्तं शिथिलयति ।)

विदूषकः—आ कहं अआलसंहारो । [आः कथमकालसंहारः ।]

(सुभद्रा सासूयं हस्तमाक्षिप्यान्यतो गच्छति ।)

मन्दारिका—पिअसहि, इदो गदुअ हरिचंदणलआघरए सहीअणं पडिवालेम्ह । [प्रियसखि, इतो गत्वा हरिचन्दनलतागृहे सखीजनं प्रतिपालयावः ।]

(उभे परिक्रम्य हरिचन्दनलतागृहं प्रविश्योपविशतः ।)

देवी—अय्यउत्त, दिट्ठं जं पेक्खिदव्वं । इअं पुण दाणि मह अब्भत्थणा । मा दाव तुमं असच्चसंवादेहिं अविलोभअंतो मं विणो-

---

1 A B add सुभद्रां च after देवीं. 2 A B read अविलोभअंतो (chāyā अविलोभयन्).

दपत्तं करेहि । [आर्यपुत्र, दृष्टं यद् द्रष्टव्यम् । इयं पुनरिदानीं ममाभ्यर्थना । मा तावत्त्वमसत्यसंवादैश्च विलोभयन् मां विनोदपात्रं कुरु ।]

राजा—प्रिये विलातराजपुत्रि,

का नाम संप्रति मम प्रतिपत्तिरत्र
प्रत्यक्षमेव तव योऽस्मि कृतापराधः ।
भूयोऽनुभूतमनुपात्तविलोभनं ते
दाक्षिण्यमेव शरणं मम शिष्टमास्ते ॥ १८ ॥

देवी—किं ति विवरीअं भणिज्जइ । एसो खु तुह पिअवअस्सो जाणाइ मइ दाव तुज्झ दक्खिण्णं ति । [किमिति विपरीतं भण्यते । एष खलु तव प्रियवयस्यो जानाति मयि तावत्तव दाक्षिण्यमिति ।]

(विदूषकः सभयं राज्ञः पृष्ठतो भवति ।)

देवी—अय्यउत्त, परमत्थदो तुह हिअअं अजाणंतीए जं जं मए अदिक्कंतं तं तं सव्वं दक्खिणत्तणेण[1] तुए खंतव्वं । एसो वेलादीए पच्छिमो पणामो । [आर्यपुत्र, परमार्थतस्तव हृदयमजानत्या यद्यन्मयाऽतिक्रान्तं तत् तत् सर्वं दाक्षिण्येन त्वया क्षन्तव्यम् । एष वैलात्याः पश्चिमः प्रणामः ।]

(प्रणम्य सेर्ष्यं गन्तुमिच्छति ।)

राजा—सुन्दरि, कोऽयं प्रत्युत प्रणामः । (अग्रतो भूत्वा) देवि,

स्प्रष्टुमद्य चरणौ बिभेमि ते नूतनाविनयजातसाध्वसः ।
एष केवलमहं तवाग्रतस्ताडयामि शिरसा महीतलम् ॥ १९ ॥

(प्रणमति ।)

देवी—अय्यउत्त, जेण तुए फंसो वि मे परिहरिज्जइ ण दाव तुमं फंसिदुं खमामि । ता सअं चेअ उट्ठेहि । एसा दाणि अहं

---

1 A दक्खिण्णभणेण (chāyā दाक्षिण्यभणनेन).

गच्छामि । [आर्यपुत्र, येन त्वया स्पर्शोऽपि मे परिह्रियते, न तावत् त्वां स्प्रष्टुं क्षमे । तस्मात् स्वयमेवोत्तिष्ठ । एषा इदानीमहं गच्छामि ।]

(चेट्या सह ससंरम्भं निष्क्रान्ता ।)

विदूषकः—वअस्स, किं आआसे पणमीअदि । [वयस्य, किमाकाशे प्रणम्यते ।]

राजा—(उत्थाय) कथमप्रसन्नैव गता ।

विदूषकः—अकिदण्णअ, एसो खु देवीए सुमहंतो पसादो जं सजीविदा मुक्क म्ह । [अकृतज्ञ, एष खलु देव्याः सुमहान् प्रसादो यत् सजीवितौ मुक्तौ स्वः ।]

राजा—कथमतिभूमिं गतो मन्युर्मानिन्याः । तथा हि

न्यस्यन्त्या गमने पदं मम मुखात् प्रत्याहरन्त्या दृशौ
निःश्वासस्खलिताक्षराणि च वचांस्यन्तर्निगृह्य क्षणम् ।
मूर्ध्ना किंचिदिवानतेन निभृतं संदर्शितः सुभ्रुवा
सोत्कर्षां प्रणयस्थितिं प्रकटयन्नीर्ष्याप्रणामक्रमः ॥ २० ॥

(विचिन्त्य) हन्त देवीप्रसादनं प्रति निराश एवास्मि । यत्पुनः प्रणत एव मयि सा प्रस्थिता[1] तदेवैमात्रमवलम्बनम्[2] । कुतः

अतिक्रमं प्रेयसि बद्धकोपा विधाय पूर्वं विहितव्यलीके ।
स्त्रियो हि किंचित्परिवृत्तकोपा भवन्ति जातानुशयाः क्रमेण ॥ २१ ॥

(परितो विलोक्य सविषादम्) कथं प्रियतमापि सकोपं तिरोहितैव । तथा हि

स्रस्तस्तनांशुकसमर्पणनिर्व्यपेक्षं
तिर्यग्विलोकननिरुत्सुकजिह्मनेत्रम् ।
भ्रूभङ्गभिन्नमुखविभ्रमया नताङ्ग्या
मन्दस्खलच्चरणमन्थरमत्र यातम् ॥ २२ ॥

(निःश्वस्य) कथमुभयतो व्याहताः स्मः ।

---

1 A स्थिता. 2 A तदेव मात्रमवलम्बनम्.

विदूषकः—एदं खु तं आमंतणलालसाए विमुक्कभिक्खापरिब्भमणस्स आमंतणसालम्मि गलहत्थणं। [एतत् खलु तद् आमन्त्रणलालसया विमुक्तभिक्षापरिभ्रमणस्य आमन्त्रणशालायां गलहस्तनम्।]

राजा—हन्त, क्व नु खलु तिरोहिता स्यात्।

विदूषकः—(विलोक्य) किं एअं असोअक्खंधसमप्पिअं पत्तं दीसइ। (आदाय विलोक्य च) वअस्स, अक्खराइ विअ कुडिलकुडिलाइ दीसंति। [किमेतद् अशोकस्कन्धसमर्पितं पत्रं दृश्यते। (आदाय विलोक्य च) वयस्य, अक्षराणीव कुटिलकुटिलानि दृश्यन्ते।]

राजा—तेन हि वाच्यताम्।

विदूषकः—को जाणइ अक्खराइ। तुमं चेअ वाएहि। [को जानात्यक्षराणि। त्वमेव वाचय।]

राजा—(गृहीत्वा वाचयति।)

दिट्ठेण जेण सअलं रमणिज्जं मह कअं अरमणिज्जं।
सो अरमणिज्जविरहो अवि णाम रमेज्ज णअणाइ॥ २३॥
[दृष्टेन येन सकलं रमणीयं मम कृतमरमणीयम्।
सोऽरमणीयविरहोऽपि नाम रमयेत नयने॥]

कथं प्रिययैव विलिखितम्।

विदूषकः—अहो अत्तहोदो मेहावित्तणं जेण खणदंसणादो पत्तगदाइ अक्खराइ मुखे संकमिदाइ। मह उण सुइरं पेक्खंतस्स जीहा वि ण परिप्फंदिआ। [अहो अत्रभवतो मेधावित्वं येन क्षणदर्शनात्पत्रगतान्यक्षराणि मुखे संक्रमितानि। मम पुनः सुचिरं पश्यतो जिह्वाऽपि न परिस्पन्दिता।]

(राजा पुनः पुनर्वाचयति।)

सुभद्रा—(स्वगतम्) अइ णिल्लज्ज हिअअ, कहं दाणिं पि ण विवज्जसि। [अयि[1] निर्लज्ज हृदय, कथमिदानीमपि न विपर्यसे।]

---

1 A B अतिनिर्लज्ज. 2 A B विवजेसि (?).

मन्दारिका—(स्वगतम्) हुं, बलिअं खु विसण्णा पिअसही। को वा एत्थ आसासो। [हन्त, बलवत् खलु विषण्णा प्रियसखी। को वाऽत्राश्वासः।]

(प्रविश्य)

मञ्जरिका—भट्टिदारिए, आअच्छइ तरंगिआए सह सव्वो सहीअणो। अहं पुण पिअणिवेअणत्थं अग्गदो तुरिअं आअदा। [भर्तृदारिके, आगच्छति तरङ्गिकया सह सर्वः सखीजनः। अहं पुनः प्रियनिवेदनार्थमग्रतस्त्वरितमागता।]

मन्दारिका—हला, किं तं। [सखि, किं तत्।]

चेटी—एसा खु भट्टिदारिआ महाराअणमिणा चक्कवट्टिणो महाराअभरहस्स पदिज्जदि त्ति। [एषा खलु भर्तृदारिका महाराजनमिना चक्रवर्तिनो महाराजभरतस्य प्रदीयत इति।]

सुभद्रा—(सविषादमात्मगतम्) हंत किं एदं। [हन्त किमेतत्।] (वैचित्त्यं नाटयति।)

मन्दारिका—(स्वगतम्) एदं खु विसण्णाए पिअसहीए समस्सासणं। [एतत्खलु विषण्णायाः प्रियसख्याः समाश्वासनम्।]

सुभद्रा—(स्वगतम्) अइ णिट्ठुर हिअअ, दाणिं णिस्संकं विवज्जसु। [अयि[1] निष्ठुर हृदय, इदानीं निःशङ्कं विपर्यस्व।]

मन्दारिका—(स्वगतम्) का वा इह पडिवत्ती। (प्रकाशम्) हला, अहं पुण पुण्णपत्तं धारेमि। तुमं दाव अग्गदो गदुअ इह एव्व सहीअणं आणेहि। जेण सह एव्व उव्वाहसंमाणिअं असोअं मालईलअं च दक्खिस्सम्ह। [का वा इह प्रतिपत्तिः। (प्रकाशम्) सखि, अहं पुनः पूर्णपात्रं धारयामि। त्वं तावदग्रतो गत्वा इहैव सखीजनमानय। येन सहैव उद्वाहसंमानितमशोकं मालतीलतां च द्रक्ष्यामः।]

---

1 A B अतिनिष्टर. 2 A B विवजैस्स (?)

चेटी—जं पिअसही भणाइ। [यत् प्रियसखी भणति।] (निष्क्रान्ता।)

सुभद्रा—(सखेदम्) हला, देहि मे ऊसंगं। अण्णारिसं खु दाणि मे सरीरं। [सखि, देहि म उत्संगम्। अन्यादृशं खल्विदानीं मे शरीरम्।]

मन्दारिका—तेण हि इह एव्व सआहि। [तेन हि इहैव शेष्व।]

(सुभद्रा मन्दारिकाया उत्संगमधिशेते।)

मन्दारिका—अहवा किं एत्थ समस्सासणं। [अथवा किमत्र समाश्वासनम्।]

(सुभद्रा पारवश्यमभिनीय मुह्यति।)

मन्दारिका—(सशङ्कं सुभद्राया अंगानि स्पृष्ट्वा सशोकम्) हा हा हद म्हि, कहिं मे पिअसही। (ससंभ्रमम्) परित्ताअध। [हा हा हताऽस्मि, कुत्र मे प्रियसखी। (ससंभ्रमम्) परित्रायध्वम्।]

(राजा विदूषकश्च आकर्णयतः।)

राजा—कुतोऽत्र स्त्रीजनाक्रन्दनम्।

विदूषकः—(सभयम्) अविह अविह। रक्खेहि मं वअस्स, रक्खेहि। [अवत अवत। रक्ष मां वयस्य, रक्ष।]

(उभौ सत्वरमुपसर्पतः।)

राजा—(दृष्ट्वा सविषादम्) कथमन्यामेव दशां गता प्रियतमा।

विदूषकः—कहं अवत्थंतरगदा तत्तहोदी। [कथमवस्थान्तरं गता तत्रभवती।]

मन्दारिका—(दृष्ट्वा) हंत परित्तायहि। [हन्त परित्रायस्व।]

राजा—(विदूषकस्य हस्ते लेखं दत्त्वा, सुभद्रामुत्संगे समर्प्य) प्रिये, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

विदूषकः—समस्ससिहि अत्तहोदि, समस्ससिहि। [समाश्वसिहि अत्रभवति, समाश्वसिहि।]

मन्दारिका—सहि, समस्ससिहि समस्ससिहि। [सखि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।]

(सुभद्रा किंचिदाश्वसिति।)

राजा—(सहर्षम्)

जातश्चकोरदृशि मोहमुपागतायां
तीव्राभिषङ्गबहुलो मम कोऽपि मोहः।
लब्धं समाश्वसनमद्य समाश्वसत्या-
मस्यां मया च विधुरेण च मन्मथेन ॥ २४ ॥

(सुभद्रा राजानं दृष्ट्वा सलज्जमुत्थाय सेर्ष्यमन्यतो गन्तुमिच्छति।)

(राजा उत्थाय हस्ते गृह्णाति।)

सुभद्रा—(सासूयम्) मुक्को एव्व हत्थो किं ति पुणो वि घेप्पइ। [मुक्त एव हस्तः किमिति पुनरपि गृह्यते।]

राजा—ननु त्वयैव कोपपरवत्या मोचितः।

सुभद्रा—अमुंचंती वा अहं कहं चिट्ठेमि। [अमुञ्चन्ती वा अहं कथं तिष्ठामि।]

विदूषकः—गदं गदं। गंतव्वं दाणि चिंतिज्जउ। [गतं गतम्। गन्तव्यमिदानीं चिन्त्यताम्]

राजा—भद्रे, किं ते सख्या मोहकारणम्।

मन्दारिका—(सविषादमात्मगतम्) हुं, कहं किर भणिस्सं। [हन्त, कथं किल भणिष्यामि।]

(नेपथ्ये)

सुरपरिवृढो वारांपत्या[1] वसन्नपि मागधौ[2]
गुणगणकथाऽशक्तो यस्याभवत्स च मागधः।
जलधिवसनामेनां भुञ्जन्नसौ भरतावनीं
जयति भरतः श्रीमानिक्ष्वाकुवंशशिखामणिः ॥ २५ ॥

---

1 B वारां पत्यौ. *2* A वसन्नपिमागदो. The line is obscure.

(पुनर्नेपथ्ये)

वृषभतनयः पूर्वश्चक्रायुधश्चरमो मनु-
र्नवनिधिपतिः पायात्पृथ्वीं चिरं भरतेश्वरः ।
वृषभशिखरिप्रान्तोत्कीर्णानधीत्य शचीपतेः
सदसि च गुणान्यस्योद्गायन्ति किन्नरयोषितः ॥ २६ ॥

(सर्वे आकर्णयन्ति ।)

विदूषकः—(विलोक्य) वअस्स, पेक्ख पेक्ख । इह वि कण्डप्पवादकंदरमुहवट्टिणं तुह एव्व दिसाविजयभोआवलिं गाअंतं किंणरमिहुणं । [वयस्य, पश्य पश्य । इहापि काण्डप्रपातकन्दरमुखवर्ति ननु तवैव दिशाविजयभोगावलीं गायत् किन्नरमिथुनम् ।]

(सर्वे पश्यन्ति ।)

सुभद्रा मन्दारिका च—(सहर्षमात्मगतम्) किं एसो एव्व सो । [किमेष एव सः ।]

सुभद्रा—(आत्मगतम्)—हिअअ, एण्हिं समस्ससिहि । [हृदय, इदानीं समाश्वसिहि ।]

मन्दारिका—जिदं अम्हेहिं । कहं एस एव्व चक्कवट्टी । [जितमस्माभिः । कथमेष एव चक्रवर्ती ।]

(सुभद्रा ससाध्वसमन्यतो गन्तुमिच्छति ।)

विदूषकः—जस्स दाव चउरुदहिपरिअंताए महीए समुइदो करो दिज्जइ, तस्स कहं तुए करो ण दिज्जइ । [यस्य तावच्चतुरुदधिपर्यन्तया मह्या समुचितः करो दीयते तस्य कथं त्वया करो न दीयते ।]

राजा—भद्रे, किमेतत् ।

मन्दारिका—भट्टा, महाराअणमिणा चक्कवट्टिणो अत्ताणं पदिच्छिदं सुणिअ अण्णं चेअ किर चक्कवट्टिणं मुणंतीए दिढाभिसंगादो

---

1 A किंणरमुहअणं; B किंणरमहुणं.

मम ऊसंगे मुच्छिदं पिअसहीए । [भर्तः, महाराजनमिना चक्रवर्तिन आत्मान प्रदित्सितं श्रुत्वा, अन्यमेव किल चक्रवर्तिनं जानत्या दृढाभिषङ्गान्ममोत्सङ्गे मूर्छितं प्रियसख्या ।]

विदूषकः—ही[1] ही । [ही ही ।]

राजा—(सहर्षम्) किमियमेव विद्याधरराजस्य नमेर्भगिनी मातुलतनया सुभद्रा नाम स्त्रीरत्नम् ।

मन्दारिका—अह इं । [अथ किम् ।]

विदूषकः—संघडेइ हु सुसरिसं मिहुणं विही । [संघटयति खलु सुसदृशं मिथुनं विधिः ।]

राजा—आकाश एवोत्पन्नं रत्नम् ।

मन्दारिका—(विदूषकस्य हस्ते लेखनं दृष्ट्वा) पिअसहि, एसो हु सो लेहो । [प्रियसखि, एष खलु स लेखः ।]

सुभद्रा—(सलज्जम्) किं सो वि इमिणा दिट्ठो । [किं सोऽप्यनेन दृष्टः ।]

राजा—सुन्दरि, अयमेव त्वद्विरहविह्वलानामस्माकमियतीं वेलां विलोभनमभूत् । कुतः

प्रत्यक्षमन्मथार्ति[2]प्रकाशनादपि मृगीदृशः प्रायः ।
र[3]मयत्यनङ्गलेखः समुत्सुकं कामिनश्चेतः ॥ २७ ॥

मन्दारिका—(कर्णं दत्त्वा) कहं पदसद्दो (पुनः कर्णं दत्त्वा) कहं सहीअणालावो । पिअसहि, संपुण्णा खु अम्हाणं मणोरहा । ता एहि दाव । पुणो वि दक्खिस्ससि । [कथं पदशब्दः । (पुनः कर्णं दत्त्वा) कथं सखीजनालापः । प्रियसखि, संपूर्णाः खल्वस्माकं मनोरथाः । तस्मादेहि तावत् । पुनरपि द्रक्ष्यसि ।]

---

1 A हे हे (chāyā हा हा). *2* A °मन्मथार्थि°; B °मन्मथार्थी. Reading in the text is conjectural. *3* A B रतयति.

(सुभद्रा साभिलाषं राजानं पश्यन्ती मन्दारिकया सह निष्क्रान्ता ।)

राजा—(सोत्कण्ठम्)

आमूलोन्नमितस्तनैः प्रविकसन्नेत्रैश्चिरं पूरितै-
रुच्छ्वासैः प्रचुराभिलाषपिशुनैः कच्छात्मजाया मुहुः ।
अर्धस्रंसितपक्ष्मभिर्गुरुतरैर्मन्दोच्छ्वसन्नीविभि-
र्निःश्वासैश्च दृढाभितापसुलभैः पीतोऽस्मि धूतोऽस्मि च ॥ २८ ॥

किं च बहुना ।

व्यत्यस्तांससमर्पिताननमुरःसंघट्टमग्नस्तनं
गण्डस्पृष्टकपोललेखमवशप्रत्यर्पितालिङ्गनम् ।
दत्तोत्संगनिवेशितालसतनोस्तस्याः समाश्वासन-
व्याजेन प्रथमं मनोरथपदं प्राप्तं समाश्लेषणम् ॥ २९ ॥

वयस्य, येनैव मार्गेण गता कच्छराजदुहिता तत्रैव कांचिद्वेलामात्मानं विनोदयावः । तदेहि तावत् ।

विदूषकः—इदो इदो पिअवअस्सो । [इत इतः प्रियवयस्यः ।]

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ ।)

इति श्रीभट्टार[1]गोविन्दस्वामिसूनुना हस्तिमल्लेन विरचितायां सुभद्रानाटिकायां तृतीयोऽङ्कः ।

[2]चतुर्थोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति कञ्चुकी ।)

कञ्चुकी—अये, वार्द्धकं च किंचिदनुशासकमनिसर्गधीराणाम् । तथा हि

यदेव मे वैषयिकेषु पूर्वं सुखेषु दुःखाभिमुखेषु सक्तम् ।
तदेव संप्रत्युपजातपश्चात्तापं तपस्यां विचिनोति चेतः ॥ १ ॥

---

1 A B °भट्ट°. 2 A B श्रीः । अथ चतुर्थोऽङ्कः । श्रीचन्द्रप्रभजिनाय नमः ।

अथवा मनोरथैकविषय एष परपरिचरणपराधीनस्य मादृशो जनस्य नैराश्यसुखरसास्वादः। सर्वथा धिगेनामेनःप्रणालिकां सेवानियन्त्रणाम्। कुतः

सद्य सेव्याद्भीतिः परपरिभवास्वादलघुता
परिक्लेशो भूयान्धनलवकृतोन्मादजडता।
अवृत्तिर्वृत्तेष्वप्यनवसरलाभाद्विमुखता
विहन्त्येवं सेवा तदियमिह चामुत्र च सुखम्॥ २॥

(विभाव्य) ममासौ प्रकृत्यरमणीयाऽपि सेव्यगुणोत्कर्षान्न जातु पुरुषार्थव्यपायः। यदेष चक्रपाणिः

श्रोता पुराणपुरुषाद्बहुशः श्रुतीनां वर्णाश्रमस्थितिषु तत्प्रथमोपदेष्टा।
साक्षाच्चराचरगुरोर्वृषभस्य सूनुरन्त्यो मनुश्चरमदेहधरः स्वयं च॥३॥

(विचिन्त्य) नन्वाज्ञप्तोऽस्मि महाराजचक्रवर्तिना। आनीयतामयोध्य इति। यावत्सेनापतेरयोध्यस्य भवनं गच्छामि। (परिक्रामन्) अहो चक्रवर्तिनश्चभूपतेः प्रभविष्णुता।

येन दिग्जैत्रयात्रायां जित्वा खण्डचतुष्टयम्।
जितखण्डद्वयश्चक्री षट्खण्डविजयी कृतः॥ ४॥

(पुरो विलोक्य) अये प्रविष्ट एव सेनापतिः। य एष

बद्धप्रणामाञ्जलिना समन्तात्सामन्तचक्रेण समं समेत्य।
आयाति दूरादनुगम्यमानो जैत्रं प्रभोश्चक्रमिव द्वितीयम्॥ ५॥

यावदागतं सेनापतिं महाराजाय निवेद्य स्वमेव नियोगमशून्यं करोमि। (इति निष्क्रान्तः।)

शुद्धविष्कम्भः।

(ततः प्रविशति सेनापतिः ।)

सेनापतिः—अहो न्यक्कृतपरचक्रश्चक्रवर्तिनः पराक्रमः । यतोऽस्माभिरपि

वहद्भिराज्ञां शिरसा महीयसीं महीयसस्तस्य महीभृतां प्रभोः ।
प्रविश्य कार्त्स्न्यादपरैर्दुरासदं सुदुर्जयं खण्डचतुष्टयं जितम् ॥ ६ ॥

अथवा कः पुनरलमेतावति भारते वर्षे चक्रवर्तिनः परचक्राभिमानितामुद्वोढुम् । यद्वा मर्त्येषु नास्ति जेतव्यपक्ष इत्यपर्याप्तिर्बहुमानस्य । कुतः

प्रथमः कुलभूभृतां हिमाद्रिर्लवणोदः प्रथमः पयोनिधीनाम् ।
द्वयमेव हि दिग्जयप्रयाणे गतमस्य क्षणलक्ष्यतां शरस्य ॥ ७ ॥

अद्य पुनर्विद्याधराणां दर्शनदानमेव देवस्यावशिष्टम् । प्रेषितश्च मया तदर्थमेव विजयार्धं प्रति विद्याधरदूतमुख्यस्तार्क्ष्यदत्तः । यावदिदानीं महाराजस्य प्रत्यनन्तरीभवामि । (परिक्रम्य विलोक्य च) इदं प्रतीहारस्थानम् । कोऽत्र भोः । (कर्णं दत्त्वा) (आकाशे) किं ब्रवीषि । एषोऽस्मि कञ्चुकी पुरुषदत्त इति । आर्य, निवेद्यतामस्मदागमनं देवाय । किं ब्रवीषि । निवेदितं पूर्वमेव रत्नवलभिवर्तिने महाराजाय । प्रवेशयितव्य इति च देवादेश इति । तेन रत्नवलभिमनुसरामि (परिक्रामति ।)

(ततः प्रविशति राजा ।)

राजा—(मदनावस्थामभिनीय) कथमविच्छिन्नसन्तानः सदैवायं मन्मथव्यथावेगः । तथा हि

तस्या वियोगे च समागमे च समं मनो मे मदनो धुनोति ।
एकत्र सांनिध्यमपेक्षमाणमन्यत्र बिभ्यत्सहसा वियोगात् ॥ ८ ॥

विशेषतः पुनरधुना

स्तनांशुकं विश्लथमीषदंसात्तया ग्रहीतुं किल दत्तदृष्ट्या ।
दूतीव यान्त्या प्रहिता तदा मां प्रलोभयन्त्येवमपाङ्गदृष्टिः ॥ ९ ॥

अतश्च पुनराम्रेडितमाकल्यकम् ।

अविज्ञायैव[1] दृष्टायां तस्यामुत्थापितः पुरा ।
स्मरो मातुलपुत्रीति विज्ञातायां[2] विशेषतः ॥ १० ॥

इदं च पुनरस्य चापलं, यदसौ

मह्यं प्रदास्यति नमिर्भगिनीं सुभद्रा-
मित्यन्तरङ्कुरितनिर्वृति चेत एतत् ।
कुर्वन् मनोरथगत[3]क्षुभितं निकामं
कामो मुहूर्तमपि न क्षमते विलम्बम् ॥ ११ ॥

(विचिन्त्य) देव्यास्तु पुनः परावस्थां गतो मन्युरिति चैकतश्चेतोऽनु-तप्यते । कुतः

आदौ युक्तोत्तरवितरणाद्यत्कृतं त्यक्तशङ्कं
कोपारम्भात्किमपि कलुषं यच्च पश्चादकारि ।
चेतस्तस्यास्तदनु च कृतं तत्तथा बद्धरोषं
प्रत्यापत्तौ गणयति यथा नाभ्युपायान्मतिर्नः ॥ १२ ॥

सेनापतिः—(पुरो विलोक्य) अये देवः । य एष
तिरस्कृतप्रौढविरोचनेन विलोचनानां च सुखप्रदेन ।
विभाति तेजःप्रसरेण साक्षात्पितुः पुरोरंश इवावतीर्णः ॥ १३ ॥

यावदुसर्पामि । (उपसृत्य) विजयतां देवः ।

राजा—उपविश्यताम् ।

सेनापतिः—यथाज्ञापयति देवः । (उपविशति ।)

राजा—आर्य, जितमुत्तरार्धम् । कुत इदानीं दक्षिणार्धगमनं प्रति विलम्ब्यते ।

---

1 A B अनिज्ञायैव. 2 A B निज्ञातायाम्. 3 B °रत°. Could it be °रथ° ?

सेनापतिः—देव, किमुच्यते जितमिति । पश्य

अश्रुतप्रतिपक्षं तज्जितं नाम कथं भवेत् ।
उत्तरार्धपरिभ्रान्तं मर्यादेतीह केवलम् ॥ १४ ॥

अद्य तु विद्याधराणां दर्शनदानमेव प्रतिपाल्यते ।

राजा—कस्तत्र विलम्बः ।

सेनापतिः—प्रेषित एव तत्र ताक्ष्यर्दत्तः ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेउ महाराओ । विज्जाहरलोआदो तक्खदत्तो आअदो ।
[जयतु महाराजः । विद्याधरलोकात् ताक्ष्यर्दत्त आगतः ।]

राजा—जित्वरिके, सत्वरं प्रवेशय ।

प्रतीहारी—जं महाराओ आणवेदि । [यन्महाराज आज्ञापयति ।]

(निष्क्रम्य ताक्ष्यर्दत्तेन सह प्रविश्योपसर्पति ।)

ताक्ष्यर्दत्तः—जयतु देवः ।

सेनापतिः—कथय किं तत्र वृत्तम् ।

ताक्ष्यर्दत्तः—इतस्तावदहं विजयार्धमुत्प्लुत्य महाराजनमेरास्थान-भुवमवगाह्य सेनापतेरादेशमुच्चैरवोचम् । यथा

यस्मै कृताञ्जलिरदाद्विजयार्ध एव
सेनानिनादचलितः स्वयमभ्युपेत्य ।
एकातपत्रमवते भरतं समस्तं
सिंहासनं चमरजद्वयमातपत्रम् ॥ १५ ॥

येन च

गाम्भीर्येणैव जलधिः स्थैर्येणैव हिमाचलः ।
जितावेव शरेणापि पुनरुक्तमुभौ जितौ ॥ १६ ॥

---

1 B आस्थानभुवनमवगाह्य.

तस्यायोऽयं इति प्रतीतमहिमा सेनापतिष्वग्रणी-
र्जेता खण्डचतुष्टयस्य विजयी बाहुः प्रभोर्दक्षिणः ।
दण्डेनैव गुहाकवाटपुटयोर्विद्याधराणां गिरे-
र्भेत्ता दर्शयितुं दिशामधिपतिं त्वामाह्वयद्गम्यताम् ॥ १७ ॥

इति ।

राजा—ततस्ततः ।

तार्क्ष्यदत्तः—देव, मदाह्वानानन्तरमेव यथापिनद्धाभरणपारितोषिकप्रदानेन संभाव्य मामास्थानपीठान्ममैव हस्तमवलम्ब्य देवदर्शनकुतूहली सहर्षमुत्थितो महाराजनमिः ।

सेनापतिः—जानाति नमिर्देवस्य पराक्रमवत्ताम् ।

राजा—ततस्ततः ।

तार्क्ष्यदत्तः—ततश्च तत्[1] स्त्रीरत्नप्राभृतकं पुरस्कृत्य गन्तुमुच्चलितः ।

राजा—(सहर्षमात्मगतम्) अयि भोः

तृप्तिविश्वासदूराय लघुने हृदयाय नः ।
प्रियागमनवृत्तान्तं पुनः पुनरुदीरय ॥ १८ ॥

(प्रकाशम्) ततः ।

तार्क्ष्यदत्तः—ततश्च

तं तत्क्षणेन[2] परिवृत्य परेऽपि सर्वे
विद्याधराधिपतिमन्वयुरन्वयज्ञाः ।
विद्याधराः सरभसं च सकौतुकं च
सप्रश्रयं च सभयं च सविस्मयं च ॥ १९ ॥

सेनापतिः—ततः[3] ।

---

1 A तच्च; B drops तत्. 2 B तत्क्षणेऽपि. 3 B ततस्ततः.

ताक्ष्र्यदत्तः—ततश्च

श्रेणिद्वयादुच्चलिते बलेऽस्मिन्विद्याधराणां विजयार्धशैलः ।
द्रष्टुं भयेन स्वयमद्य देयमुड्डीय गच्छन्निव लक्षितोऽभूत् ॥ २० ॥

सेनापतिः—ततस्ततः ।

ताक्ष्र्यदत्तः—ततश्च

व्याप्य व्योमतलं विरोचनकरान्व्याहृत्य विश्वा दिशो
व्यारुध्य क्षणदामकाण्डजनितां कृत्वा क्षमावर्तिनाम् ।
क्षुण्णैरेव शरत्पयोधरलवैरुत्थाप्य सेनारजः
प्रस्थातुं सकलं प्रवृत्तमचिराद्विद्याधराणां बलम् ॥ २१ ॥

सेनापतिः—ततस्ततः ।

ताक्ष्र्यदत्तः—ततश्चाहमागच्छन्तं विद्याधरलोकमावेदयितुमग्रत एवाहिण्डितः ।

राजा—साधु । दीयतामस्मै दूताध्यक्षाधिकारः ।

सेनापतिः—यथाज्ञापयति देवः ।

ताक्ष्र्यदत्तः—(प्रणम्य) अनुगृहीतोऽस्मि ।

राजा—जित्वरिके, दीयतामस्मै सुवर्णभार इति कोशाध्यक्षं ब्रूहि ।

प्रतीहारी—जं महाराओ आणवेदि । [यन्महाराज आज्ञापयति ।]

ताक्ष्र्यदत्तः—(जानुभ्यां स्थित्वा) अनुगृहीतोऽस्मि मूलदासः ।

(उभौ निष्क्रान्तौ ।)

राजा—(आत्मगतम्)

प्रत्यागतां प्रियतमामाकर्ण्य परां धृतिं प्रपन्नाऽपि ।
देवीप्रसादनं प्रति मतिः प्रकामं परिभ्रमति ॥ २२ ॥

---

1 B अप्रपन्नाऽपि.

कथं वयस्योऽपि देवीकोपात्परं नष्टः। मन्ये देवीकोपात् क्वापि पलायितो वराकः।

(प्रविश्य हृष्टः)

विदूषकः—जेदु जेदु पिअवअस्सो। [जयतु जयतु प्रियवयस्यः।]

राजा—सखे, उपविश।

विदूषकः—जं वअस्सो आणवेदि। [यद्वयस्य आज्ञापयति।]

(उपविशति।)

राजा—सखे, किमपि हर्षोत्फुल्लमिव ते मुखम्।

विदूषकः—सुणादु सोत्तसुहं वअस्सो। [शृणोतु श्रोत्रसुखं वयस्यः।]

राजा—अवहितोऽस्मि।

विदूषकः—अहं खु देवीकोवादो वअस्सस्स पासं ओसप्पिदुं भाअंतो एत्तिअं वेलं दिवा कोसिओ विअ कहिं पि तिरोहिअ एकाई ठिदो। दाणिं पुण विवित्तासणदो राइं जादभओ चोरअंतो विअ चोरओ भीदभीदं आअच्छंतो सव्वं वि चलिदं देवि त्ति संकमाणो दिट्ठो जदिच्छोवणदाए सअं विअ देवीए रइसेणाए। तं च दट्ठूण सज्झसादो पदं पि चालेदुं असक्कंतं अप्पम्मि भएण घेप्पंतं हत्थे गण्हिअ मं च मा भाआहि त्ति आसासिअ विअसिअमुही सा भणिदुं उवक्कंता। जह। अय्य, सुणाहि दाव। अज्ज खु विज्जाहराहिवइणो महाराअणमिणो पासदो आअदेण हंसदत्तणामहेअकंचुइणा विण्णत्ता भट्टिणी देवी। अहं खु तुह जिट्ठभादुणो जुवराअचक्कसेणस्स देवीए तुह वि विवित्तेण मित्तएण महाराअणमिणा तुह सआसं पेसिओ कंचुई हंसदत्तो णाम। आदिसइ अ महाराअणमी। जाणादि वच्छा वअस्सस्स चक्कसेणस्स मह अ चिरबद्धं

असाहारणिं मेत्तिं । इदो तादस्स अ महाराअविलादस्स वअस्स-चक्कसेणे ममम्मि अ णिव्विसेसो पुत्तसिणेहो। ता तुमं च सुभद्दा अ दोण्णि मे कणीअसीओ भगिणिआओ। सुभद्दा पुण चक्कवट्टिणो महिसी भविस्सदि त्ति णं सिद्धादेसा भणंति। दाणिं च सेणावइणा अओज्झेण तं चेअ संबंधं संपादेदुं अम्हे आहूदा। मह उण जहिं वेलादी वट्टइ णाहिघरअं चेअ तं वच्छाए सुभद्दाए त्ति णिच्चिंतं हिअअं ति। इत्थं च मं पुरदो पेसिअ आअच्छइ सअं पि भट्टि-दारिअं सुभद्दं अग्गदो कदुअ महाराअणमि त्ति। तं च सोऊण किं बहुणा विमुक्कणाहिघरआए भइणिअं सुभद्दं पाविअ एअं च मे दाणि णाहिघरअं संवुत्तं, ता तुमं चेअ अग्गदो गदुअ इह एव्व भइणिअं मे आणेहि त्ति भट्टिणीए भणिदं। तदो सो वि तहेत्ति गदुअ सप-रिअणाए सह तत्तहोदीए सुभद्दाए पुण आअदो। तदो अ भट्टिणीए वेलादीए तत्तहोदीए अ सुभद्दाए अण्णोण्णदंसणादो कहं एसा एव्व सेत्ति संजादवेलक्खाहिं कहं कहं पि कदं परोप्परालिंगणं। तदो ताए सह एक्कासणोवविट्ठाए भट्टिणीए भइणीलाहेण तूसंतीए तं वेलं खणं विअ अदिक्कमिअ अत्तहोदीए सुभद्दाए पिअसही मंदारिआ कहिआ। सहि, तुम्हेहिं वंचिअ लघूकदा वाअं पि दाणि दाउं लज्जेमि। अय्यउत्तो उण मं भइणिआकारणादो दंसिदादिक्कमं इमं किं मुणइ त्ति। तदा मंदारिआए कहिअं, ण खु एत्थ अविण्णादपरमत्था देवी अवरज्झइ। ण अ अम्हे। सच्छंदविहाइणा विहिणा एव्व अवरद्धं ति। एअं पुण तुम्हाणं हरिसेक्ककारणं उत्तंतं णिवेदिदुं तुमं अण्णेसंती उवत्थिद म्हि। ता देहि पारितोसिअं ति। मए पुण हरिसणिब्भरेण अंगु-लिदो दब्भगंठिअं मोचिअ उवहसंतीए ताए पारितोसिअं दाऊण

हरिसभरादो उण मए अमाअंतेण पिअवअस्सो उवसप्पिओ।
[अहं खलु देवीकोपाद्भयस्यस्य पार्श्वमुपसर्पितुं बिभ्यदेतावतीं वेलां दिवा कौशिक इव कुत्रापि तिरोधायैकाकी स्थितः। इदानीं पुनर्विविक्तासनाद्राज्यां जातभयश्चोरयन्निव चोरो भीतभीतमागच्छन् सर्वमपि चलितं देवीति शङ्कमानो दृष्टो यदृच्छोपनतया स्वयमिव देव्या रतिसेनया। तां च दृष्ट्वा साध्वसात्पदमपि चालयितुमशक्नुवन्तमात्मनि भयेन गृह्यमाणं हस्ते गृहीत्वा मां च मा बिभेहीति आश्वास्य विकसितमुखी सा भणितुमुपक्रान्ता। यथा। आर्य शृणु तावत्। अद्य खलु विद्याधराधिपतेर्महाराजनमेः पार्श्वादागतेन हंसदत्तनामधेयकञ्चुकिना विज्ञप्ता भट्टिनी देवी। अहं खलु तव ज्येष्ठभ्रातुर्युवराजचक्रसेनस्य देव्या तवापि विविक्तेन मित्रेण महाराजनमिना तव सकाशं प्रेषितः कञ्चुकी हंसदत्तो नाम। आदिशति च महाराजनमिः। जानाति वत्सा वयस्यस्य चक्रसेनस्य मम च चिरबद्धामसाधारणीं[1] मैत्रीम्। इतस्तातस्य च महाराजविलातस्य वयस्यचक्रसेने मयि च निर्विशेषः पुत्रस्नेहः। तस्मात् त्वं च सुभद्रा च द्वे मे कनीयस्यौ भगिन्यौ। सुभद्रा पुनश्चक्रवर्तिनो महिषी भविष्यतीति ननु सिद्धादेशा भणन्ति। इदानीं च सेनापतिनाऽयोध्येन तमेव संबन्धं संपादयितुं वयमाहूताः। मम पुनर्यत्र वैलाती वर्तते नाभिगृहमेव तद्वत्सायाः सुभद्राया इति निश्चिन्तं हृदयमिति। इत्थं च मां पुरतः प्रेष्य, आगच्छति स्वयमपि भर्तृदारिकां सुभद्रामग्रतः कृत्वा महाराजनमिरिति। तच्च श्रुत्वा किं बहुना विमुक्तनाभिगृहाया भगिनीं सुभद्रां प्राप्य, एतच्च म इदानीं नाभिगृहं संवृत्तं, तस्मात् त्वमेवाग्रतो गत्वा इहैव भगिनीं म आनयेति भट्टिन्या भणितम्। ततः सोऽपि तथेति गत्वा सपरिजनया सह तत्रभवत्या सुभद्रया पुनरागतः। ततश्च भट्टिन्या वैलात्या तत्रभवत्या च सुभद्रयाऽन्योन्यदर्शनात्कथमेषैव सेति संजातवैलक्ष्याभ्यां कथं कथमपि कृतं परस्परालिङ्गनम्। ततस्तया सहैकासनोपविष्टया भट्टिन्या भगिनीलाभेन तुष्यन्त्या तां वेलां क्षणमिवातिक्रम्यात्रभवत्याः सुभद्रायाः प्रियसखी मन्दारिका कथिता। सखि, युवाभ्यां वञ्चित्वा लघूकृता वाचमपीदानीं दातुं लज्जे। आर्यपुत्रः पुनर्मां भगिनीकारणाद्दर्शितातिक्रमामिमां किं जानातीति। तदा मन्दारिकया कथितम्, न खल्वत्राविज्ञातपरमार्था देवी अपराध्यति। न चावाम्। स्वच्छन्दविधायिना विधिनैवापराद्धमिति। एतं पुन-

---

1 B चिरकालबद्धाम्.

युवयोर्हर्षैककारणं वृत्तान्तं निवेदयितुं त्वामेवान्विष्यन्ती उपस्थिताऽस्मि। तस्माद्देहि पारितोषिकमिति। मया पुनर्हर्षनिर्भरेणाङ्गुल्या दर्भग्रन्थिं मोचयित्वा उपहसन्त्यै तस्यै पारितोषिकं दत्त्वा हर्षभरात् पुनर्मया भ्रमाता प्रियवयस्य उपसर्पितः।]

राजा—(सहर्षम्) प्रियं प्रियं नः।

श्रुत्वा सुभद्रां स्वगृहं प्रविष्टां विलातपुत्रीमपि सुप्रसन्नाम्।
न माति दुष्प्रापमवाप्य योगं देहे ममास्मिन्नयमद्य हर्षः॥ २३॥

सेनापतिः—कथं दृष्टपूर्वमेव देवेन स्त्रीरत्नम्। अहो वयमपि विधिना पुनरुक्तप्रयत्नाः। अथवा यत्नान्तरनिरपेक्षैव महाभागानां समीहितसिद्धिः। तथा हि

स्वैरं फलानि वितरत्प्रविहाय दैवं
यत्नान्तरं किमिति तत्र गवेषणीयम्।
आक्रान्तविश्वपरचक्रममुष्य चक्रं
येन प्रविष्टमभवत्स्वयमस्त्रशालाम्॥ २४॥

राजा—अस्मिन्नेव देव्याः प्रसादसमये वयमपि प्रियं विदध्मः। तत्क्रियतामस्य मध्यमस्योत्तरखण्डस्य पतिर्महाराजविलातः, पश्चिमस्य युवराजचक्रसेनः।[1]

सेनापतिः—यथाज्ञापयति देवः। कोऽत्र भोः।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—जयतु महाराजः। एषोऽस्मि कञ्चुकी पुरुषदत्तः।

सेनापतिः—[2]भोः पुरुषदत्त, मध्यमस्योत्तरखण्डस्य पतिः कृतो देवेन महाराजविलातः, पश्चिमस्य युवराजचक्रसेन इत्याक्षपटलिकेभ्यः कथयित्वा लेखहस्तान् दूतान् प्रस्थापय।

---

1 B adds: इत्याक्षपटलिकेभ्य कथयित्वा लेखहस्तान् दूतान् प्रस्थापय. 2 B drops the whole of this speech of the सेनापति.

कञ्चुकी—एष गच्छामि। (इति निष्क्रान्तः।)

विदूषकः—सव्वं सज्जं। महाराअणमिस्स आअमणं दाणि णिव्वहणे पडिवालिज्जइ। [सर्वं सज्जम्। महाराजनमेरागमनमिदानीं निर्वहणे प्रतिपाल्यते।]

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु महाराओ। विज्जाहरमहत्तरेहि सहिदो देवदंसणं इच्छदि महाराअणमी। [जयतु महाराजः। विद्याधरमहत्तरैः सहितो देवदर्शनमिच्छति महाराजनमिः।]

राजा—अविलम्बितं प्रवेशय।

प्रतीहारी—जं महाराओ आणवेदि। [यन्महाराज आज्ञापयति]

(निष्क्रान्ता।)

सेनापतिः—(विलोक्य) देव, पश्य पश्य।

विनमिप्रमुखैर्विश्वैर्विद्याधरमहत्तरैः।
अभ्युपैति समं दूरं नमिर्नमितमस्तकः॥ २५॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो नमिः प्रतीहारी च।)

प्रतीहारी—इदो इदो महाराओ। [इत इतो महाराजः।]

(परिक्रामतः।)

नमिः—अहो लोकोत्तरः प्रभावश्चक्रपाणेः। तथा हि

ज्वलत्यस्य प्रतापाग्निः सर्वत्रैव विशृङ्खलः।
आवर्जिता महीपृष्ठे येन विद्याधरा अपि॥ २६॥

अथवा कियानमुष्य क्षुद्रविद्याधरजयः।

येनैक एव विशिखश्चतसृष्वपि दिक्षु दिग्जये मुक्तः।
एकत्र तुषाराद्रावितरत्र तु यादसां पत्यौ॥ २७॥

प्रतीहारी—(पुरो निर्दिश्य) महाराअ, पेक्ख पेक्ख । एसो चक्कवट्टी । [महाराज, पश्य पश्य । एष चक्रवर्ती ।]

नमिः—(दृष्ट्वा) कथमसौ भगवतः स्वयंभुवो लब्धात्मलाभो यशस्वतीनन्दनः सुगृहीतनामा महाराजभरतः ।

यस्यानुजो भगवतो गणनायकोऽभूत्
सुभ्रातरश्च शतमात्मसमानवीर्याः ।
आज्ञा सुरैरपि शिरोभिरुपासनीया
कीर्तिः प्रसर्पति गुणाभिरतां त्रिलोकीम् ॥ २८ ॥

आकीर्णां च पुनरवस्थामिदानीमनुभवामि । कुतः

आ बाल्यात्सहवर्धनात्सुहृदिति प्रेम्णा सुतः स्वामिनो
लोकानामिति गौरवान्मम पितुः स्वस्रीय इत्यादरात् ।
जामातेति च संमदाच्चरमश्चक्रीति चान्तर्भया-
च्चेतो नैकरसाकुलं भवति मे संप्रत्यमुं पश्यतः ॥ २९ ॥

(उपसृत्य) विजयतां भरतेश्वरः । (प्रणमति ।)

राजा—(हस्ते गृहीत्वा) सखे, इतो निषीद ।

(नमिरुपविशति ।)

सेनापतिः—जित्वरिके, त्वमेव नियोगमशून्यं कुरु ।

प्रतीहारी—अय्य, तह । [आर्य, तथा ।] (निष्क्रान्ता ।)

राजा—अपि कुशलं विद्याधरलोकस्य ।

नमिः—अद्य नः कुशलं संवृत्तं देवदर्शनात् । (अञ्जलिं बद्ध्वा) एष पुनरतिचारमात्मनः स्वयमालोचयामि ।

यदैव वृत्तं विजयार्द्धदर्शनं तदैव देवं न वयं यदागताः ।
प्रमादजातं प्रणयादतिक्रमं क्षमाधनः क्षन्तुममुं ममार्हसि ॥ ३० ॥

---

1 B हस्तेन. 2 A B स्वमालोचयामि.

अथवा न भवानत्र मम[1]ात्रासहेतुः । कुतः

अनाहूताः स्वयं द्रष्टुं षट्खण्डायाः पतिं भुवः ।
निर्विशेषाः पदातिभ्यः के नाम क्षुद्रका वयम् ॥ ३१ ॥

सेनापतिः—देव, साधु विज्ञप्तं महाराजनमिना ।

नमिः—अन्यच्च, ज्ञायत एव देवेन भगवत एव स्वयंभुवः पर्युपासात् तत्प्रसादचोदितेन फणिपतिना मह्यमिदं वितीर्णं विजयार्धदक्षिणश्रेणीपतित्वं, विनमये च तदुत्तरश्रेणीपतित्वम् । तत्प्रागेवायं युष्मदीयो विद्याधरलोकः । वयं तु केवलमत्राधिकृताः ।

सेनापतिः—देव, यथावृत्तं विज्ञप्तं महाराजनमिना भवतु । पितुरेव प्रसादादनेन लब्धं विद्याधरपतित्वम् । अतः प्रथममेव युष्मदीयेऽस्मिन्नपरमापद्यमानमन[2]वद्यं पश्यामः ।

नमिः—देव, किमत्र बहुना ।

पितुः प्रसादं तव भोगकाङ्क्षिणि प्रभुः परिज्ञाय फणाभृतां मयि ।
न्यदत्त विद्याधरराज्यवैभवं तदद्य रक्षा त्वयि तस्य तिष्ठ[3]ति ॥ ३२ ॥

विदूषकः—वअस्स, जुत्तं खु विण्णत्तं महाराअणमिणा ।
[वयस्य, युक्तं खलु विज्ञप्तं महाराजनमिना ।]

सेनापतिः—विद्याधरपते, नात्र भवत्प्रार्थनमपेक्षणीयम् । यतोऽखण्डस्येव षट्खण्डस्यैव जगतः प्रागेव देवायत्तौ योगक्षेमौ ।

नमिः—एवमेतत् । तथापि परिजनसुलभं चापलं मां मुखरयति । अथवा कुतो मितभाषिता लघुचेतसाम् ।

राजा—अलमत्र बहु ज[4]ल्पितेन ।

---

1 Thus A B. It should be मम त्रासहेतुः. 2 Both A B अवद्यम्. 3 A B तिष्ठते. 4 A बहुजल्पनेन.

नमिः—आस्तामेतत् । इयं पुनरद्य नः प्रार्थना । अस्ति खलु मे कनीयसी भगिनी सुभद्रा नाम कन्यका । तामद्य देवाय प्रदाय नवीकृतप्राक्तनसंबन्धः स्पृहयामि पुनरात्मानं श्लाघ्यतां नेतुम् ।

सेनापतिः—श्लाघ्य एवैष संबन्धः । परं तु देवः प्रमाणम् ।

विदूषकः—सुसरिसो एसो संबंधो । [सुसदृश एष संबन्धः ।]

राजा—(आत्मगतम्) वयमेवात्र प्रार्थयितारः । (प्रकाशम्) तथास्तु ।

नमिः—कृतार्थाः स्मः । इयमेव च शोभना प्रदानवेला । तद् आर्य कात्यायन, इदानीमेव गत्वाऽऽत्मनो ज्येष्ठभगिन्या वत्साया वैलात्याः पार्श्वे वर्तमानां वत्सां सुभद्रामिहानय ।

विदूषकः— (उत्थाय) जं महाराओ आणवेदि । [यन्महाराज आज्ञापयति] (निष्क्रान्तः ।)

राजा—(आत्मगतम्) दिष्ट्या चिरान्निर्वापितो ममान्तःसंतापः ।

संप्रति हि

आ दर्शनादस्थिरदर्शनायाः समागमैस्तत्क्षणदृष्टनष्टैः

विवर्धिताः स्वैरममी स्मरेण मनोरथाः सिद्धिपदं व्रजन्ति ॥ ३३ ॥

(ततः प्रविशति सुभद्रामन्दारिकाभ्यां सहिता यथोचितपरिवारा देवी विदूषकश्च ।)

देवी—(सुभद्राया आभरणानि सजन्ती) पिअसहि मंदारिए, भणाहि दाव किं सुसंगदं इमाए अलंकरणं । मह पुण सिणेहपरवसाए ण साहु पेक्खइ बाहपुण्णा दिट्ठी । [प्रियसखि मन्दारिके, भण तावत् किं सुसंगतमस्या अलंकरणम् । मम पुनः स्नेहपरवशाया न साधु पश्यति बाष्पपूर्णा दृष्टिः ।]

मन्दारिका—किं एत्थ भणिदव्वं, जत्थ सअं चेअ देवी अलंकरेदि । [किमत्र भणितव्यं, यत्र स्वयमेव देव्यलंकरोति ।]

देवी—सहि, मा तह भणिअ। एवं पुण भणिज्जउ। सयं चेअ मे भइणिआए सोहेत्ति। [सखि, मा तथा भणित्वा। एवं पुनर्भण्यताम्। स्वयमेव मे भगिन्याः शोभेति।]

विदूषकः—किं एत्थ विवादेण। उभअं पि कारणं होदु। [किमत्र विवादेन। उभयमपि कारणं भवतु।]

मन्दारिका—अय्य, सुट्ठु भणिअं। [आर्य, सुष्ठु भणितम्।]

देवी—दिढं खु मे उत्तम्मइ मणं। तादो अंबा अ ण एत्थ संणिहिद त्ति। [दृढं खलु म उत्ताम्यति मनः। तातोऽम्बा च नात्र संनिहिताविति।]

मन्दारिका—सव्वं पि सुविहिदं देवीए संणिहिदाए। [सर्वमपि सुविहितं देव्या संनिहितया।]

विदूषकः—इदं पि अपरं तुह अ हरिसकारणं। अज्ज खु चक्कवट्टिणा उत्तरस्स मज्झिमखंडस्स एकाहिवई कओ महाराअविलादो, पच्छिमस्स अ जुवराअचक्कसेणो। [इदमप्यपरं तव च हर्षकारणम्। अद्य खलु चक्रवर्तिना उत्तरस्य मध्यमखण्डस्यैकाधिपतिः कृतो महाराजविलातः। पश्चिमस्य च युवराजचक्रसेनः।]

मन्दारिका—[1]जेदु जेदु चक्कवट्टी। एआरिसं चेअ अम्हाणं पुण्णं पिअं करेदु। [जयतु जयतु चक्रवर्ती। एतादृशमेवास्माकं पुण्यं प्रियं करोतु।]

देवी—(सहर्षम्) पिअं पिअं मे। अहं पुण अय्यउत्तस्स भइणिअं मे दाऊण पिअं करिस्सं। [प्रियं प्रियं मे। अहं पुनरार्यपुत्रस्य भगिनीं मे दत्त्वा प्रियं करिष्यामि।]

विदूषकः—जुत्तं खु पिअं करंतस्स सअं पि पिअं कादुं। [युक्तं खलु प्रियं कुर्वतः स्वयमपि प्रियं कर्तुम्।]

मन्दारिका—अय्य, एव्वं। [आर्य, एवम्।]

---

1 A B add आकाशे as stage-direction before जेदु जेदु.

विदूषकः—पच्चासण्णा पदाणवेला । ता एदु एदु अत्तहोदी । [प्रत्यासन्ना प्रदानवेला । तस्मादेतु एतु अत्रभवती ।]

देवी—तेण हि गच्छेमो । (सुभद्रां हस्तेन[1] गृहीत्वा) इदो एदु भइणिआ । [तेन हि गच्छावः । (सुभद्रां हस्तेन गृहीत्वा) इत एतु भगिनी ।]

विदूषकः—(पुरो निर्दिश्य) एसो खु महाराअणमी पडिवालेइ । जाव उवसप्पम्ह । [एष खलु महाराजनमिः प्रतिपालयति। यावदुपसर्पामः ।]

सुभद्रा—(विलोक्य, राजानं दृष्ट्वा, सलज्जं मुखं नमयन्ती आत्मगतम्) कहं अय्यउत्तो । [कथमार्यपुत्रः ।]

राजा—(दृष्ट्वा आत्मगतम्) अयमपरो मे समाश्वासो यदनया

सलज्जमुन्नम्य मुखारविन्दं यदृच्छया मां प्रति चोदिताभ्याम् ।
विनिद्रनीलोत्पलसोदराभ्यां विलोचनाभ्यामहमस्मि पीतः ॥ ३४ ॥

(सुभद्रा लज्जां नाटयन्ती तिष्ठति ।)

देवी—अदिलज्जालुए, मई[2] चेअ अंतरिदा इदो एहि । [अतिलज्जालुके, ममैवान्तरिता इत एहि ।]

(सुभद्रा तथा करोति ।)

विदूषकः—(उपसृत्य) जेदु पिअवअस्सो । [जयतु प्रियवयस्यः ।]

देवी—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो । (नमिमुपसृत्य) अय्य, वंदामि । [जयतु आर्यपुत्रः । (नमिमुपसृत्य) आर्य, वन्दे ।]

नमिः—वत्से, कल्याणिनी भव । इतस्तावद्भगिनीं तवानय ।

देवी—अय्य, तह । [आर्य, तथा ।] (तथा करोति ।)

नमिः—भृङ्गारस्तावत् ।

विदूषकः—एसो संणिहिदो रअणभिंगारओ । [एष संनिहितो रत्नभृङ्गारकः ।] (उपनयति ।)

नमिः—(गृहीत्वा)

---

[1] B हस्ते. [2] Thus A B. It should be मए.

प्रदीयते मया तुभ्यं सारो विद्याधरौकसः ।
त्रिजगत्सारभूताय सुभद्रा भद्रशासनम्[1] ॥ ३५ ॥

(राज्ञो हस्ते सलिलधारां पातयति ।)

मन्दारिका—सोहणं सोहणं । [शोभनं शोभनम् ।]

देवी—(सुभद्रां हस्ते गृहीत्वा, सस्मितम्) अय्यउत्त, एसा मे भइणिआ पडिगण्हिज्जा । [आर्यपुत्र, एषा मे भगिनी प्रतिगृह्यताम् ।]

राजा—(सस्मितम्) यदाज्ञापयति देवी । (सुभद्रां हस्ते गृह्णाति ।)

देवी—(सुभद्रामुद्दिश्य सस्नेहं बाष्पं विधारयन्ती) अय्यउत्त, विज्जाहरलोओ इमाए णाहिघरअं, तुम्हे उण अओज्झाउरिआ ता जह ण एसा णाहिघरअं सुमरिअ खिज्जइ तह एअं अप्पमत्तो संभावेहि । [आर्यपुत्र, विद्याधरलोकोऽस्या नाभिगृहं, यूयं पुनरयोध्यापुरिकाः, तस्माद्यथा नैषा नाभिगृहं स्मृत्वा खिद्यति तथैतामप्रमत्तः संभावय ।]

राजा—देवि, किमेतदपि तव प्रार्थनीयम् ।

सेनापतिः—सैषा स्नेहोद्रेकसुलभा कातरता ।

(आकाशे पुष्पवृष्टिः क्रियते ।)

सर्वे—आश्चर्यमाश्चर्यम् ।

नमिः—देव, भवतोऽस्मिन्परिणयनोत्सवे कुर्वन्त्यमी कुसुमवृष्टिं विद्याधराः ।

(सर्वे ऊर्ध्वं पश्यन्ति ।)

नमिः—देव, किं ते भूयः प्रियमुपहर्तव्यम् ।

राजा—

अपश्चिमं रत्नमियं तवानुजा
वयस्य लब्धा मम मातुलात्मजा ।
कनीयसीं प्राप्य च निर्वृता प्रिया
त्वयोपहार्यं किमतः परं प्रियम् ॥ ३६ ॥

---

1 Thus A B. It should be भद्रशासन (Vocative).

तथाऽप्येतदस्तु ।

पृथ्वी सुखानि भजतादकुतोभयैषा
भूयात्सतामकृतको गुणपक्षपातः ।
पात्रे धनानि धनिनो विसृजन्तु नित्यं
भद्रं चिराय भवताज्जिनशासनाय ॥ ३७ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

**इति श्रीभट्टारगोविन्दस्वामिनः सूनुना श्रीकुमारसत्य-
वाक्यदेवरवल्लभोदयभूषणानामार्यमिश्राणामनुजेन,
कवेर्वर्धमानस्याग्रजेन महाकविना हस्तिमल्लेन
विरचितायां सुभद्रानामनाटिकायां
चतुर्थोऽङ्कः ।**[1]

॥ समाप्ता चेयं सुभद्रा नाम नाटिका ॥

---

1 A B read the following stanza after this : हस्तिमल्लस्य गोविन्द-नन्दनस्य महीयसः । सूक्तिरत्नाकरस्यैषा सुभद्रा नाम नाटिका ॥. A reads after this :–कृतिरियं भट्टहस्तिमल्लस्य । नमः सिद्धेभ्यः । श्रीशान्तिनाथाय नमः । सर्वज्ञो जगदेकनाथभगवान् कैवल्यबोधोदयः । प्रत्यक्षाद्यविरुद्धतत्त्ववचनः कन्दर्पदर्पापहः ॥ लोकालोकविभुः परार्थचरितः स्याच्छब्दसंवर्धकः । पायाच्छन्नपुरेश्वरः स्थिरतरं वश्चन्द्रनाथः सदा ॥ १ ॥ भो भो भाट्ट जहाहि मानमतुलं रत्नत्रयालंकृतिः । स्याद्वादार्णवकौमुदीसहचरो मारप्रमोदापहः ॥ भव्यौघार्चितपादपद्मयुगलः सद्धर्मसंवर्धको । बाभाति प्रबलः प्रमेन्दुमुनिपः श्रीजैनयोगी भुवि ॥ २ ॥ श्रीमान् सर्वकलाविदो भुवि सदा सद्भव्यसस्योद्भवः । शास्त्रार्थी गुणवार्धिवर्धनविधुः सद्धर्मचिन्तामणिः ॥ रागद्वेषविवर्जितः शुभतरं जैनेन्द्रमुद्राङ्कितो । भाति श्रीमुनिराट् प्रमेन्दुसुगुरुर्भव्याब्जकल्पद्रुमः ॥ ३ ॥ समाप्तोयं ग्रन्थः । शुभं भूयात् ।. B सम्यक्त्वस्य परीक्षार्थं मुक्तं मत्तमतङ्गजम् । यः सरण्यापुरे जित्वा हस्तिमल्लेति कीर्तितः ॥ १ ॥ कविकुलगुरुणा तेन हि रचितेयं नाटिका सुभद्राख्या । लिखिता सुसार्थरम्या बुधजनपदसेविना शशिना ॥ २ ॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः । वैशाखशुक्ला प्रतिपत् वीरसं० २४५८.

INDEX OF STANZAS

(in the Four Plays of Hastimalla)

Abbreviations: AP = Añjanāpavanaṃjaya, SU=Subhadrā Nāṭikā; MK Maithilīkalyāṇa; VK = Vikrāntakaurava. The Roman figure indicates the Act and the Arabic one indicates the number of the Stanza.

अस्पष्टैरव	AP	II. 5
अस्मादृशो	MK	I. 12
अस्माभिः शिशि	MK	III. 16
अस्मिन्नभू	SU	I. 15
अस्य हि	AP	III. 9
अस्याः कामः	VK	II. 29
अस्याः स्तने	SU	II. 18
अस्या मदन	MK	V. 25
आकाशं मूर्ध्न	VK	VI. 52
आगच्छति वपुः	AP	IV. 16
आगुल्फदीर्घ	VK	III. 28
आगुल्फलंबा	MK	V. 3
आघ्राणव्य (	VK	I. 26
आज्ञाक्षराण्येव	VK	III. 63
आत्मन्येकम	AP	VII. 7
आत्मा वै पुत्र	VK	VI. 39
आ दर्शनाद	SU	IV. 33
आदाय दाम	VK	V. 27
आदौ यस्य	AP	I. 1
आदौ युक्तो	SU	IV. 12
आनाभिलंबि	VK	VI. 22
आपाण्डुरा	SU	III. 8
आपातालनलात	AP	II. 22
आपादयन्तो	MK	I. 13
आबद्धचंडा	VK	III. 17
आ बाल्यात्	SU	IV. 29
आभिजात्य	AP	V. 19
आमुक्तकंकण	VK	VI. 45
आमूलोन्नमित	SU	III. 28
आमोदलोलुप	VK	VI. 16
आरोप्य मौर्वी	MK	V. 32
आरोप्याग्र	MK	V. 39
आर्हन्तीम	SU	I. 1
आलिंगनाय	AP	II. 15
आलिंगन्त्यबलां	VK	V. 20
आवाति गंगा	SU	II. 10
आश्लिष्यैव	MK	V. 20
आसणसलिस	MK	III. 2
आसवैरनिल	VK	V. 68
आसादिता	SU	I. 5
आस्तामप्रति	VK	IV. 8
आहूय शाठ्यान्	VK	IV. 4
इतः किंचित्	AP	VI. 39
इतश्चेतश्चैवं	AP	VI. 6
इतश्चोली	VK	V. 39
इतस्तावत्सर्वाः	MK	I. 16
इतस्त्वया	AP	I. 18
इतो धुन्वन्नेलां	AP	III. 8
इत्थीहिं पुलिसे	MK	III. 5
इदं तावच्चिन्त्यं	AP	IV. 17
इदं दर	MK	II. 31
इदानीमंगानि	AP	VI. 48
इदानीमप्यस्ति	VK	IV. 91
इमानि विद्या	AP	VI. 50
इयं च रात्रौ	VK	V. 84
इयं चेत्	VK	I. 22
इयं तनूजा	VK	IV. 18
इयं नु तमा	VK	V. 61

Alphabetical Index of Stanzas occurring in the Pras'astis in the Four plays of Hastimalla. Pr=Pras'asti.